....उस दिन पूरी रात कल्याणी को नींद न आयी; वह करवटें ही बदलती रही। उसकी सारी उज्ज्वल परिकल्पनाओं पर जैसे काले-काले घनघोर बादल घिर आये। नींद में निमग्न मिलू-बिलू के ऊपर जितनी बार उसकी आँखें पड़ीं, उतनी ही बार उसे लगा जैसे उनके जीवन के साथ अनाप-शनाप खिलवाड़ करने का उसे जरा भी अधिकार नहीं है। पुनः वही दारिद्र्य और क्षुधार्त मलिन मुख, वही अंधकारपूर्ण संकीर्ण जीवन! उस जीवन की ज्वाला को कल्याणी ने शिवशंकर के अंतिम दिनों में तथा उनकी मृत्यु के बाद उत्पन्न हुए संकटों से अच्छी तरह अनुभव किया है। पुनः उसी दम घुटानेवाले जीवन की ओर लौट जाना—इस कल्पना से ही कल्याणी का सारा शरीर झनझना उठता है!........

....कुछ देर बाद रुक गयी वंशी। फिर भी कान लगाये रही कल्याणी। बगल के कमरे से हलके अन्धकार के ही समान एक निराला गुँजन...रह-रह कर हो रही बातों के स्वर इस कमरे में आकर जैसे साकार हो उठते हैं। कल्याणी की धुँधली आँखों में धीरे-धीरे चमक उठता है, न जाने कैसा एक अतृप्त उन्माद! दबे पाँव वह आगे बढ़ी और अन्धकारमे एक जगह ठिठक कर खड़ी हो गयी। दिखाई पड़ रहा है भीतर का कमरा—कृपण के समान न जाने कहाँ से आकर एक ज्योत्सना-सी घर में झाँक रही है! उसी धीमी-धीमी रोशनी में उसने देखा चिर-परिचित एक युगल मानव-मानवी को—अनन्त रहस्य के आविष्कार में, छन्दो से उद्वेलित काव्य के समान, स्वप्न के समान!.........

: १ :

इस सभा का इतिहास है—

शहर से सटे एक ग्रामीण
सूर्य-भ्रमण का इतिहास।

एक साथ इतने मुख—प्राचीन
से नवीन युग तक, मुग्ध चकित
दृष्टि से शिवशंकर ने निहार-निहार
कर देखे। कोई ख्याति सम्पन्न है,
कोई धन के कारण समाज में गण्य-
मान्य है, तो कोई विद्वान और सुप्रतिष्ठित
है। ये सभी उसके जीवन की लम्बी साधना
के जैसे एक-एक स्तम्भ हैं। ये उनके छात्र
थे—यह बात मन में आते ही उसका हृदय
भर उठता है। सभा में इधर-उधर बिखरे एक-
एक मुख के साथ एक-एक वर्ष गुंथा हुआ है।
वह पहली पंक्ति में जो अधेड़ मुख वाले हैं—ये
उनके पुराने छात्र हैं—मोक्षदा सुन्दरी हाई स्कूल के
प्रथम वर्ष के छात्र। तब यह अञ्चल शहर के एक
पड़ोसी के अतिरिक्त और कुछ भी न था। स्कूल के
सामने का यह पार्क तालाब था—इसके बाद आमों का एक

विशाल बगीचा था। उसके किनारे-किनारे फूस-फास की छवनी वाली बस्ती थी। उसके बीच में, तनिक साफ-सुथरी जगह से सटे अनेक संभ्रान्त परिवार बसे थे। स्कूल प्रारंभ हुआ था उस दिन, केवल पचास छात्रों को लेकर।

इसके बाद वर्ष पर वर्ष बीतते गये किसी तरह—बच्चे तरुण हुए, हुए दस आदमी में एक आदमी। इसी अवधि मे शहरांचल का ग्रामीण रूप बदल गया। यह अञ्चल शहर का सुन्दर अञ्चल बन गया। गड्ढे गड्ढियों वाली जमीनें भर कर रहने योग्य बना ली गईं, इनके आम के बगीचों की नीरवता को चीर कर नगर की सभ्यता का राजपथ बन गया। पचास छात्रों की संख्या पहले पाँच सौ हुई, इसके बाद हजार और इसके बाद शाम-सुबह हजारों हजार विद्यार्थियों की भीड़ जमने लगी। टीन की छवनी पक्की हो गई—एक तल्ला, दो तल्ला—तीन तल्ला। एक दिन का यह शहर से सटा गांव अंधकार हरण करने वाली किसी ज्योति की बाढ़ से उद्भासित हो उठा, नथिया और नथुनी अब लड़कियों की नाकों पर नहीं रही—वे भी विश्वविद्यालय तक दौड़ने लगीं···।

इस पूरे परिवर्तन के साथ शिवशंकर का जीवन गुंथा हुआ है। एक छोटे-से विद्यालय के माध्यम से एक बार जिस रोशनी की किरण फैल उठी थी—वहाँ उसके जीवन का भी सर्वस्व दान था।

अन्तिम क्षण में उनका आवेग भी उमड़ पड़ा। वे कुछ बोलने के लिए उठे। लेकिन बोल न पाये। आवेग के एक महापिण्ड ने मानो उनका गला धर दबाया। वे रो पड़े। सिर मानो चक्कर खा गया।

'पकड़िये—पकड़िये!'

पूरी अभिनन्दन-सभा में हाहाकार मच गया। शिवशंकर गिर पड़े हैं। यहाँ तक कि चेतना भी खो बैठे हैं।

सभा यहीं समाप्त कर दी गई। कुछ तरुण छात्र उन्हें संभाल कर ले आये स्कूल में। कुछ देर तक सेवा शुश्रुषा करने के बाद वे उठ बैठे।

स्कूल के सेक्रेटरी और मालिक रायबहादुर अक्षयकुमार उनका एक हाथ अपने हाथ में लेकर बोले—'भयभीत हो उठा था। हम लोगों का समय जो हो गया है—अब बुलावा आने ही वाला है। खैर, अब कोई कष्ट तो नहीं है?'

शिवशंकर ने केवल सिर हिला दिया: समझा नहीं सकेंगे, वे समझा नहीं सकेंगे—कष्ट क्यों—आज उनके हृदय में अपार आनंद है!

राय बहादुर बोले—'मेरी मोटर आप को घर पहुँचा आयेगी। कष्ट उठा कर पैदल मत जाइये।'

शिवशंकर उठ बैठे। उन्हें घर तक पहुँचा आने के लिए कितने ही छात्र उनके साथ गये।

हाथ का लिखा हुआ विदाई का एक अभिनंदन-पत्र, मालाओं की एक राशि और प्राविडेंट फंड के प्रायः दो हजार रुपये लेकर मोक्षदा सुन्दरी हाई स्कूल के सेकंड-मास्टर शिवशंकर मुखर्जी अवसर-प्राप्त जीवन के साथ अपने घर में आ बैठे। स्कूल छोटा ही था—इस अंचल को शहर की हवा तब तक न लग सकी थी, तभी से इस स्कूल के साथ जुट गये थे। इसके बाद यह अंचल शहर का रूप लेने लगा—उत्तर-दक्षिण-बड़े-बड़े स्कूल बन गये हैं लेकिन उनका छोटा जीवन छोटा ही रह गया है। हालाँकि श्रमशक्ति और बुद्धि प्राणपन से खर्च कर दी है। इसके बाद जीवन में ही छुट्टी का घंटा बज गया। उम्र उस समय सत्तर के करीब थी। सामने अनिश्चित अस्पष्ट दिन। आँखों के सामने घनीभूत हो उठी संध्या के ही समान!

छात्र उन्हें घर के दरवाजे तक पहुंचा गये—तब संध्या हो चली थी। उनकी आखें और मुंह क्लांत हो उठे थे—जैसे अस्वस्थ हों।

फिर भी घर में प्रवेश किया हँसते हुए। अभी तक हृदय विदा-अभिनंदन में लिखी भाषा और खोखली बातों से भरा हुआ था। किन्तु मकान का वह तल्ला जिस तरह निर्जन—उसी तरह शान्त। यहां अभिनंदन-सभा की न तो चहलपहल है और न वैसे भाषण-संभाषण ही। गली के एक तरफ केवल छोटे-छोटे कई बच्चे-बच्चियां उछल-कूद रहे हैं। ठीक उनको नहीं—उनके हाथ की मोटी माला को देखकर गली के उस कोने से दो बच्चे उनके पास दौड़े आये।

'कितनी सुन्दर माला है बाबू जी!' मिलू ने हाथ बढ़ा दिया।

'उसे मुझे दो।' बिलू उछल पड़ा।

'ना—मुझे दो बाबूजी।'

अतर्कित आक्रमण और खींचातानी से माला लगभग टूट ही गई। दोनों हाथों से भी उसकी रक्षा न की जा सकी—बिखर ही गई पट से।

चट से बच्चे के गाल पर थप्पड़ जड़ दिया। टूटी माला और कितने ही गिरे फूलों को यत्नपूर्वक चुन लिया—शिवशंकर ने पुकारा:

'कल्याणी!'

उत्तर नदारद।

'ओ अवनी!'

अवनी भी नहीं।

'शान्ता!'

उसकी स्पष्ट आवाज सुनाई पड़ी—किन्तु कोई उत्तर न आया।

'सुनती हो?'

इस बार कुछ क्षण बाद उत्तर मिला। घर अत्यन्त मितभाषी—यहाँ संभाषण की बात तो दूर—नाराज होकर उत्तर देने वाला भी

मानो कोई नहीं। माला के टूट जाने से शिवशंकर का मुख तो विरक्ति से लटका हुआ था ही—घर के वातावरण से और भी लटक गया।

उत्तर देने के काफी देर बाद रसोईघर से हाथ पोंछते-पोंछते महामाया निकल आयीं। अवाक हो शिवशंकर को देखकर बोलीं—'गला क्यों फाड़ रहे हो?'

'देखो न, बन्दरों ने खींच-खींचकर माला को तोड़ दिया।'

माला महामाया की ओर बढ़ाकर शिवशंकर बोले 'दो—कुछ फूलों को गूँथकर अच्छी तरह गिरह देकर ही, देखूँ।'

'हूँ, मैं बूढ़ी औरत अब माला गूँथने बैठूँ!' 'महामाया ने मानो बरफ का पानी छिड़क दिया। बोली, बुढ़ापे में तुम्हारा सिर खराब तो नहीं हो गया?' किन्तु कहकर ही वह शिवशंकर के मर्माहत मुँह की ओर देख जैसे स्तब्ध हो उठीं।

शिवशंकर ने केवल पूछा, 'कल्याणी कहाँ है?'

'इस समय किसी दिन वह रहती है!' महामाया ने भारी गले से याद दिला दी, 'वह गई है, वही अपनी टाइप सीखने—जहाँ रोज जाती है।'

'शान्ता?'

'रसोईघर में है।'

शिवशंकर इसी बीच मन ही मन जैसे शांत हो चुके हैं। चुपचाप पाकेट से प्राविडेंट फंडवाला चेक निकाल लिया—महामाया के हाथ पर रख दिया और बोले, 'यही प्राविडेंट फंड का चेक है।'

अब जैसे महामाया को सब कुछ याद हो आया—कल से दस बजे अब स्कूल जाने की इन्हें जल्दीबाजी नहीं: स्कूल में आज विदा-अभिनंदन समाप्त हो चुका। यह बात जैसे उन्हें याद ही न थी। शिवशंकर के खिन्न तथा करुण मुँह की ओर देखकर अचानक महामाया का मुँह भी मलीन हो उठा। आज से इनकी ठीक घड़ी की सुई के साथ-साथ

काम करने की जल्दीबाजी का अन्त हो गया। खिन्न बूढ़े मन को देख-कर भी क्या मालूम उनके मन में माया जागी या नहीं। फिर भी गले की रुखाई को दबाकर एक सहज स्वर उनके मुँह से निकला, कह रहे थे—'तुम्हारी बिदाई में अभिनंदन-समारोह होगा—वह हो गया ?'—

'हाँ हुआ।' शिवशंकर के गले में अब जलन नहीं है। धीरे-धीरे कुर्ता निकाल कर महामाया के हाथ में थमा दिया।

महामाया ही अब क्या बोलेंगी—जैसे सोच न सकीं, ठठकी खड़ी रह गईं। संभव है, उनको तनिक अफसोस हुआ—इस बात से कि मुँहजली के मुँह से पहले मीठी बात न निकली। गरीबी के साथ लड़ाई करते-करते मुँह की भाषा भी न जाने कैसी कर्कश-टेढ़ी हो गयी है। कोमलता का स्पर्श ही जैसे किसी तरह लगना नहीं चाहता।

स्वागत-सभा में बेलून के समान फूला शिवशंकर का मन एकबारगी संकुचित, स्तब्ध हो उठा है। इस स्तब्ध नीरवता के सामने महामाया केवल खड़ी ही रह गईं—इस निस्तब्धता को वह भंग न कर सकीं।

घर की इस निस्तब्ध नीरवता को कल्याणी ने आकर भंग कर दिया। घर में घुसते ही उसकी दृष्टि मोटी माला पर पड़ी। उल्लसित होकर बोली, 'यही शायद फेयरवेल में उन्होंने तुम्हें दी है बाबूजी ?—कितनी सुन्दर है ! अहा, इसी बीच इसे तोड़ भी डाला ?' माला हाथ में लेते ही दोनो किनारे दो तरफ झूल गये।

इतनी देर बाद निःश्वास फेंककर जैसे शिवशंकर ने मुक्ति पायी। माला टूट जाने का विक्षोभ बच्चों की तरह मानो फिर सिर पर चढ़ बैठा। फिर भी हँसकर बोले, 'मिलू-बिलू ने खींचातानी करके तोड़ डाला। दो बेटी, देखूँ, कुछ फूलों को गूँथ गिरह देकर दो तो।' महामाया की ओर एकबार एक क्षण तक देखकर शिवशंकर बोले, 'जो भी हो, श्रद्धा के साथ उन्होंने दिया है।'

'निश्चय ही, श्रद्धा के साथ तो दिया ही है। श्रद्धा किये बिना रह ही कैसे सकते हैं!' कल्याणी बोली—'इस स्कूल के लिए तुमने क्या नहीं किया है। टीन की उस छवनी से लेकर आज के तिनतल्ला मकान तक, न खाने का नाम न सोने का—खटते-खटते जान दी है, लेकिन वेतन में मिले ही कितने रुपये हैं!

सम्पूर्ण जीवन के संचित प्राविडेंट फंड का चेक अब भी महामाया के हाथ में ही था। कल्याणी की बात सुनकर एकबार उनकी आँखें उस पर जा टिकीं। धीरे-धीरे एक दीर्घ निःश्वास खींचकर महामाया उस घर से चली गईं।

कल्याणी उत्साह के साथ बोली—'इसके बाद उन लोगों में से किसने क्या कहा बाबूजी—बताओ मुझे सब?'

महामाया की अनुपस्थिति से शिवशङ्कर का दबा हुआ उत्साह जैसे पुनः उमड़ पड़ा। बाप-बेटी के उत्साह की अब सीमा न थी। किसने क्या कहा है—एक-एक बात जैसे जान लेने की कल्याणी की इच्छा की भी सीमा नहीं, उसी तरह शिवशंकर को भी जैसे एक-एक बात याद है। जिस भावावेग से आज शिवशंकर का हृदय भरा हुआ है—वह नवीन उत्साह से जैसे उमड़ उठा। जी भर कर बातें कीं उन्होंने।

बात-चीत चल ही रही थी कि बड़ा लड़का अवनी आ पहुँचा। मिलू-बिलू सुन रहे थे चिहाकर-घर संसार का काम-काज शेष कर महामाया और शांता भी कब से ही आ बैठी हैं। छोटा-सा वह स्कूल आज कितना बड़ा हो गया है—अपनी संचित सम्पत्ति और अर्थ से। और इस उन्नति के पीछे शिवशंकर की कितनी चिन्ता और चेष्टा निहित है!—पूरी बात की यही एक मर्म बात है।

शिवशंकर बोले—'आज मीटिंग में स्कूल के सेक्रेटरी रायबहादुर मुक्तकण्ठ से यह सब बोल गये। बात-वितंडा जितना भी हो—समझते

तो हैं ही सब, कितना परिश्रम किया है स्कूल के लिए।'

कल्याणी ने कौतुहल के साथ पूछा, 'क्या कहा उन्होंने ?'

'रायबहादुर बोले—'मेरी माँ के नाम पर स्कूल है—परन्तु उसकी स्मृति को उज्वल किया है आपने—आपको खो कर स्कूल का नुकसान ही हुआ।'

कल्याणी हँसकर बोली—'यह बात सुन कर तुम्हारे यदुबाबू का मुँह निश्चय ही काला हो गया होगा ?'

'नहीं-नहीं बेटी,—ऐसा नहीं हुआ।' जल्दी-जल्दी सिर हिलाते-हिलाते शिवशंकर एकदम चंचल हो उठे। बोले, 'कौन जानता था यदु मन ही मन मेरी इतनी श्रद्धा करता है। इसके पहले तो एक दिन के लिए भी ऐसा अनुमान नहीं हुआ! झगड़ा-टंटा हुआ है, दलबन्दी हुई है, बात-बात में सेक्रेटरी के कान भी फूँके हैं—इससे मेरी ग्लानि की भी सीमा न थी; किन्तु यदु ने तो मात दे दी। यदु ने मुझे कसकर पकड़ लिया और बोला, 'भाई, मैं सब तरफ से छोटा हूँ—बहुत ही छोटा, मुझे क्षमा कर दो।' यदुबाबू के इस कांड से शिव शंकर की आँखों में उमड़ आये आँसुओं ने सबको और भी अवाक कर दिया।

लड़के-लड़कियाँ—यहाँ तक कि महामाया भी क्षण भर के लिए असीम श्रद्धा से शिवशंकर की सहज सरल आवेगमयी मूर्ति को एकटक देखती रह गईं।

आँखें पोंछ कर शिवशंकर बोले, 'कितनी बड़ी गलती से भगवान ने आज रक्षा कर ली—कितने ही सहकर्मियों के ही साथ तो ऐसी अनबन हुई है। किन्तु आज उनके हृदयों के प्रत्यक्ष दर्शन हुए हैं। वही तो पड़ा है अभिनंदन-पत्र, पढ़कर देखो न। पढ़ो तो अवनी, देखूँ, तू अच्छा पढ़ लेता है।'

अभिनन्दन-पत्र पर अब तक किसी की नजर ही न पड़ी थी।

कहने पर भी उसे पढ़ने का उत्साह कम से कम अवनी में अधिक न था, फिर भी गंभीर होकर उसने टेबुल पर से उसे उठा लिया। और उसे आँखों के सामने कर लिया।

अवनी के उत्साहहीन भाव को समझते ही कल्याणी ने झपट कर उसके हाथ से अभिनंदन-पत्र छीन लिया। बोली, 'मैं भी अच्छी तरह पढ़ सकती हूँ, बाबू जी! सुन ही लो न।' कह कल्याणी ने पढ़ना शुरू कर दिया :

सुधिवर!

आज बिदाई के क्षणों में अतीत के पचास वर्षों की बातें स्वतः ही याद आ रही हैं। इस विद्यालय की ईंट-ईंट के साथ, दुर्दिन के प्रत्येक टूटे क्षण के साथ, एवं सुदिन की कीर्ति के साथ आपका नाम अविच्छिन्न रूप में जुड़ा हुआ है, अतः आज विदाई की इन घड़ियों में हम लोगों के हृदय अश्रुविल हैं, शतधाविंदीर्ण हैं।

'बाप रे!' पढ़ते-पढ़ते ही कल्याणी बोल उठी, 'किसने लिखा है बाबू जी?'

शिवशंकर बोले, 'सुन कर अवाक हो उठोगी—लिखा है उसी यदुनाथ ने।'

'यदु बाबू।'

'हाँ बेटी।' कल्याणी के विमुग्ध युगल नयनों की ओर देख कर हँसते हुए शिवशंकर ने कहा, 'आदमी को इसी तरह हमलोग गलत समझ बैठते हैं।'

बात ऐसी अप्रत्याशित है कि जैसे उनके सामने सभी अवाक होकर बैठे ही रह गये। कल्याणी ने अभिनंदन-पत्र को चुपचाप पढ़ उसे टेबुल पर रख दिया।

महामाया के मुँह से अब तक एक बात भी न निकली थी—किन्तु इस बार बोलने की चेष्टा करते ही उनके जले-झुलसे मुँह से फिर टेढ़ी

बात निकल ही पड़ी। बोलो, 'यदि यही बात है तो छुट्टी लेने के समय यदुबाबू की फिर इतनी खुशामद क्यों अथवा जिस-तिसके जरिये अनुरोध उपरोध ही की क्या जरूरत ? क्या जानूँ बाबा !'—

क्षण भर में ही शिवशंकर क्रोधित हो उठे ! बोले, 'दाँत हीन मुँह से अब मैं पढ़ा नहीं पाता, क्लास में सोता हूँ, हिसाब जोड़ने में भूलें कर बैठता हूँ, मैं खूसट बूढ़ा हूँ—बोलो, जितनी तीखी बातें बोल सकती हो सब बोलो। तुम्हारे लिये यही सब सच है, समझीं। और वह बेचारा—केवल उसी को क्या कहूँ, वे सभी जो आज हाय-हाय कर रहे हैं, वह जैसे कुछ भी नहीं ?'

कहाँ की बात कहाँ चली गई। अवनी ने भौंहें टेढ़ी कर लीं—कल्याणी डर-सी गई।

महामाहा विमूढ़ा के समान सहज सरल स्वर में बोली—'अहा, मैं क्या यही कहती हूँ—मैं तो केवल बात जानना चाहती हूँ।'

'तुम ठहरो न माँ !' कल्याणी प्रायः बलपूर्वक ही ठेल-खींच कर माँ को बाहर ले गई।

अवनी भी गंभीर होकर उठ गया—उसके साथ ही शांता, मिलू और बिलू भी। शिवशंकर लेट गये, उन्होंने एक ही दीर्घ निःश्वास फेंकी। समझेंगे नहीं—ये समझेंगे नहीं कि पचास वर्ष के अविच्छिन्न कर्ममय जीवन के बाद नवीन रूप में जो परिचय आज पुराने आदमियों के साथ हुआ—उसमें अगाध आनंद है, अपरिमेय सुख है। अहा, अपने बहुत दिनों के सुख-दुख के साथिय—कितने ही कर्म-सहयोगियों को जैसे कहाँ छोड़ आये आज वे इतने दिनों के बाद !

घर में केवल कल्याणी थी। उसकी ओर अपने क्लान्त असहाय मुँह को उठा कर शिवशंकर बोले, 'तुम लोग समझोगी नहीं—तुम लोग समझोगी नहीं कल्याणी।'

'मैंने समझा है बाबू जी ! माँ ने नहीं समझा—और वह आपकी

बात समझेगी ही कैसे ?' पिता के सिर के नीचे के तकिये को ठीक करते हुए कल्याणी बोली, 'उन सब बातों को ले कर अब और सिर गर्म न करो बाबू जी ! तुम बहुत थके जान पड़ते हो ।'

'ना-ना—थकूँगा क्यों । यों ही मन तनिक खराब हो गया है ।'

कल्याणी आँखें नचा कर बोली,—

'थकोगे नहीं ! मीटिंग के बीच में ही तुम्हें मूर्च्छा आ गई थी—सच-सच बताओ बाबू जी ?'

कल्याणी को यह खबर किसने दी । निश्चय किसी छात्र ने कहा है । कल्याणी के कारण शिवशंकर बोले, 'हाँ, आई थी कल्याणी ! रायबहादुर की बातें सुनते-सुनते जैसे मेरे हृदय की साँस बंद होती जा रही थी । सिर चकरा गया, अचानक-जब सभी ने मुझसे कुछ बोलने को कहा ।'

कल्याणी तर्कमयी भाव-भंगिमा बना कर बोली, ' गिर पड़े थे ! इसके बाद छात्र गाड़ी से तुम्हें यहाँ पहुंचा गये ।'

'सच बेटी ।'

'हाँ, अब चुपचाप सोये रहिये । बात भी मत करिये ।'

कल्याणी के इस शासन के सामने स्नेहमय विस्फारित युगल नयनों से एक टक उसे देखते रह गये दुर्बल बूढ़े शिवशंकर ।

—:*o*:—

:२:

अभिनंदन-पत्र और विदा-समारोह की उत्फुल्लता मन पर कितने दिन रहती ही है। बार-बार पुनरावृत्ति करते रहने पर भी अब वह पुरानी हो चली। आप की गौरव-गाथा की अथक श्रोता थी कल्याणी—वह भी अब शिवशंकर के सहज-सरल-रिक्त मन को सँभाल न सकी। शारीरिक दृष्टिकोण से भी शरदऋतु के प्रथम आक्रमण से ही शिथिल हो पड़े शिवशंकर। बूढ़े आदमी—कफ की शिकायत। दूसरे, अभिनंदन-सभा में मूर्च्छित हो जाने के दिन से जो शारीरिक दुर्बलता शुरू हो गई है वह जैसे किसी तरह भी दूर तो होती ही नहीं वरन् बिछौने पर सोये-सोये उसे खींचे लिये जा रहे हैं।

इस संसार के एकमात्र उपार्जनशील व्यक्ति के जीवन को छुट्टी मिल चुकी है—इस मर्मान्तक सत्य को हजारों झूठ से भी अब छिपा कर रखा नहीं जा सकता। इससे भी अधिक

मर्मान्तिक है नन्हें मिलू-बिलू की माँग—सयानी हो गयी शान्ता की माँग। और बेकार अवनी! वर्ष भर तक कानून की शिक्षा पढ़ने की चेष्टा कर छोड़ दिया—विद्यालय से एक डिग्री प्राप्त कर नौकरी की खोज में भटकता फिर रहा है— कर कुछ भी नहीं पा रहा है। संसार की पूँजी है अब यही प्राविडेंट फंड के सिर्फ दो हजार रुपये!

मन की खोखली अवस्था में पहले तो शिवशंकर ने महामाया की सारी चिन्ताओं को दबाकर कह दिया है—'इतनी चिन्ता करने की कोई जरूरत नहीं—ठहरो। तुम्हीं सिर्फ अपने दुर्भाग्य को देखती हो और दूसरे उस पर ईर्षा करते हैं। कहते हैं—बेटा एम० ए० पास है, एक बड़ी सयानी लड़की को भी बी० ए० पास कराकर बैठा रखा है।'

'अवनी तो कुछ कर नहीं पाता, और तुम्हारी बेटी क्या नौकरी करेगी?' महामाया का क्रोध और विरक्ति उभर पड़ती है।

'हरगिज नहीं, हरगिज नहीं।' बात सुविधाजनक नहीं हो पाती यह समझकर शिवशंकर ने तनिक जोर देकर ही सिर हिला दिया है। इसका कारण यह है कि कल्याणी की पढ़ाई-लिखाई को लेकर, उसकी ऊँची शिक्षा को लेकर कितनी ही अप्रिय घटनाएँ घट चुकी हैं महामाया के साथ। किन्तु सबमें तीक्ष्ण बुद्धि बालिका ने रोकर जीत हासिल कर ली है—केवल, बाप से माँ से नहीं। लेकिन उसी को लेकर बात ही बात में फिर न जाने कैसी बंधनहीन बात निकल पड़ी। जल्दी-जल्दी उसे सुधार कर शिवशंकर बोले—'धरो—धीरज धरो, दो चार दिन। ट्यूशन करके भी तो कुछ हद तक तुम्हारे कष्टों को दूर कर ही सकूँगा। स्कूल से भले ही छुट्टी मिल गई—शिवशंकर मुखर्जी जितने दिन जीवित रहेंगे उतने दिन छात्र और उनके अभिभावक उनको मुक्ति थोड़े ही देंगे! मैट्रिक के दरवाजे को पार करने के लिए उन्हें शिवशंकर के दरवाजे पर धरना देना ही पड़ेगा।'

इन सारी बातों की घोषणा शिवशंकर ने भी गले की आवाज तेज करके की है और महामाया ने भी ऐसा ही कुछ तब समझ लिया था। लेकिन दिन गुजरते गये—ट्यूशन एक भी न मिली। उल्टे शिवशंकर को खबर मिलने लगी कि ऊँची श्रेणी के छात्र और उनके अभिभावक नये मास्टरों को ही अधिक महत्व देने लगे हैं। पुराने युग के इस बूढ़े मास्टर के पास भी कोई नहीं फटकता। पहले क्रोध, इसके बाद अभिमान और इसके बाद क्षोभ और दुख से शिवशंकर का मन फटने लगा। उनमें समयोपयोगी योग्यता नहीं—यह पुरानी बात ज्यों-ज्यों उनके कानों में पड़ने लगी त्यों-त्यों उनका मन निराशा से भरने लगा—वे खिन्न-मन होते गये।

फिर भी इस खिन्न-मन और दुर्बल शरीर को लिये एक दिन वे स्फूर्तिवान हो उठ बैठे।

अन्त में एक ट्यूशन मिल गया। स्वयं अभिभावक ही उनके दरवाजे पर आ उपस्थित हुए। करीब उनके ही समवयस्क हों—अथवा उनसे कुछ कम उम्र के, वेशभूषा से धनवान। दुर्बल शरीर को तनिक ढांक कर शिवशंकर ने उन्हें गंभीर होकर बैठाया।

आगन्तुक बोले, 'मेरी नन्हीं-नन्हीं बच्चियों की जिम्मेदारी आपको लेनी पड़ेगी। इसीलिये आपको कष्ट देने के लिए आना पड़ा।'

क्या कहा? नन्हें बच्चे-बच्चियों को तो मैं पढ़ाता नहीं? कुछ क्षण तक शिवशंकर सचिकत देखते रह गये। किन्तु शिवशंकर समझ रहे हैं—महामाया कान लगाकर दरवाजे की ओट में खड़ी है। शिवशंकर ने तनिक जोर से सम्मति सूचक हँसी हँस दी। बोले—'निश्चय लूँगा, यही करते-करते तो जिन्दगी कट गई।'

आगन्तुक फिर बोले—'लड़कियों में एक ने अभी चौदहवें में पैर रखा है—और दो अभी छोटी-छोटी हैं। लेकिन उनमें बड़ी को ही

लेकर विशेष चिन्ता है—उसे तुरन्त सुशिक्षा देनी होगी तो! नये-नौजवान मास्टरों पर मेरा विश्वास नहीं महाशय, यह स्पष्ट बात है।'

शिवशंकर मन ही मन नाराज होने लगे—यौवनवती तरुणी की शिक्षा के लिए बूढ़े मास्टर की तलाश!

वे तब और अधिक नाराज हो उठे जब कि आगन्तुक ने पुनः खुद ही कहा कि 'मैं तो इस बड़ी लड़की को लेकर बड़ी ही दुश्चिंता में पड़ गया था, महाशय! इसके बाद यदुनाथ बाबू ने आपके बारे में कहा। मेरा एक लड़का मैट्रिक देगा—वह उन्हीं से पढ़ता है। उसी से आपके बारे में मालूम हुआ। सुना—बूढ़े आदमी हैं, स्कूल भी छोड़ दिया है'···

इसके आगे वे बोल न सके—क्रोध से शिवशंकर लाल हो उठे। बोले—मैं नहीं पढ़ा सकूँगा।'

'यह क्या! पहले तो आपने...'

'जाइये आप, जाइये यहाँ से।'

आगन्तुक चकित से देखते रह गये।

शिवशंकर उठ खड़े हुए—वे काँप रहे थे। जैसे-तैसे बोल उठे—'अपने उस यदुनाथ से कह देंगे—हाँ, कह देंगे, नीचे श्रेणी की लड़कियों को मै नहीं पढ़ाता। हाँ, कह देंगे।' कहते-कहते शिवशंकर काँपते हुए बाहर के कमरे से जल्दी-जल्दी अन्दर चले गये।

आगन्तुक अवाक और विरक्त हो चले गये। किन्तु उनको टालकर भाग आने से ही तो शिवशंकर की रक्षा नहीं। सामने महामाया की मूर्ति! लेकिन महामाया के बोलने के पहले ही शिवशंकर बरस पड़े, 'मेरा अपमान! मेरा अपमान! मैं जैसे कुछ समझता ही नहीं।'

'हुआ क्या!' महामाया ने पूछा।

शिवशंकर बोले—'यह उसी यदु का षड्यंत्र है।'

महामाया धीमे स्वर में बोलीं, 'सुनती हूँ, तुम्हारा यदुनाथ बड़ा अच्छा आदमी है, फिर यह क्या···!'

'समझ नहीं सका, हत्भागे यदु की शैतानी मैं समझ न सका। नीच! मैट्रिक पढ़ाने के वक्त तुम और ऐरे गैरे को पढ़ाने के वक्त मैं!'

'तो भले आदमी को तुमने इस तरह भगा दिया! मैं तो फिर चाय भेज रही थी।'

'चाय, फिर चाय पियेगा! गले में धक्का नहीं लगा सका, यही गनीमत है—'

'छिः छिः। भला आदमी—'

'हुं, भला आदमी! लड़की की उठती जवानी से डरकर आया है बूढ़े शिवशंकर के पास, यदु के पास फटकने भी नहीं गया, नीच!

शोरगुल सुनकर लड़के-लड़कियाँ वहाँ आ जुटे—अवनी भौंहें टेढ़ी कर कमरे से निकल गया। कमरे में कल्याणी के प्रवेश करते ही शोर-गुल शान्त हो गया।

'हुआ क्या बाबूजी?'

'देखो न बेटी—हतभागा यदुनाथ....!'

कल्याणी बाप को जबर्दस्ती खींचकर बाहर वाले कमरे की ओर ले गई—मैं जानती हूँ पिताजी, मैं सब जानती हूँ।'

शिवशंकर सहसा चुप हो गये। बोले—'तू जानती है!'

'हाँ, बाबूजी, जानती हूँ, तुमसे कहा नहीं, यह सोचकर कि तुम्हें कष्ट होगा।'

'यह देखो, तू जानती है, किन्तु तेरी मां नहीं जानती।'

बाहर कहां क्या होता है यह मा कैसे जान सकेगी बाबूजी! छिः छिः अब तुम कांप रहे हो। एक तो तुम्हारा शरीर अच्छा नहीं। उल्टे यह हाल! चलो, सो रहो चुप चाप, बाप को खाट पर सुला शांत करती हुई कल्याणी बोली, ट्यूशन-फ्यूशन अब तुम्हें नहीं करनी होगी बाबूजी! अब तुम्हारी छुट्टी हो गयी—बस चुपचाप

सोये रहो।'

शिवशंकर क्षणभर चुप रहे। कल्याणी चुपचाप उनके सिर पर हाथ फेरने लगी। न जाने क्या सोचते-सोचते शिवशंकर अपने आप में ही खो-से गये—उनकी युगल आँखें जैसे—सपनों से भर गई हों। संभव है ये सपने उनके अतीत के सपने हों जब कि उनका जीवन आशाओं से ओत-प्रोत था, अथवा यह भी हो सकता है कि इन सपनो का सम्बन्ध उनके बुढ़ापे से हो जब कि उनके सारे सपनों का अन्त हो गया है। शिवशंकर ने एक लम्बी साँस फेंकी लेकिन उसका पता उनको खुद न चला।

कल्याणी हँसकर बोली, "अब तक तुम वही आलतू-फालतू सोच हो बाबू जी!"

इस लड़की के वेदना-कातर अन्तर को मानों हमेशा ही शिवशंकर ने हाथों से स्पर्श कर अनुभव कर सकते हैं। दुख और आघात पाये बूढ़े-जीर्ण मुख पर जबर्दस्ती हँसी खींच कर बोले, "आलतू-फालतू क्यों सोचूँगा बेटी, सोच रहा था तुम्हीं लोगों के बारे में—हाँ, तुम्हीं लोगों के बारे में।"

'मेरे कारण आपको और भी चिन्ता है, ना बाबू जी?'

'चिन्ता तो है ही बेटी।' शिवशंकर तनिक म्लान हँसी हँस कर बोले, 'सोचता हूँ, तुम्हारे ही समान सबों को बना न सका, और समय भी शेष हो चला।' एक लम्बी साँस खींच तनिक रुक कर शिवशंकर फिर बोले, 'फिर भी मैं जितना कर सका हूँ किया हूँ—तुम्हीं लोगों के लिए। कोशिश की है तुम लोगों को आदमी बनाने की।'

'किया ही तो है, जितना तुम्हें करना था किया है। अब जो करना है, हम लोगों को करने दो।' कहकर कल्याणी अचानक जैसे सचेत होकर क्षण भर के लिए रुक गई। क्षुब्ध, विषण्ण कंठस्वर में वह फिर बोली, 'तुम्हारे ऋण को चुका सकूंगी—यह मेरे भाग्य में नहीं

है बाबूजी! संभव है, भैया कुछ कर सकें—बड़ा होकर बिलू भी करेगा। लेकिन मैं, शांता, मिलू—तुम्हारी लड़कियाँ, ऋण के बोझ को केवल भार ढोकर जायेंगी। कभी-कभी अपनी अयोग्यता पर रुलाई भी मुझे आती है। काश मैं तुम्हारा बेटा होती बाबू जी!'

इस लड़की की सहज-सरल बातें—उसका क्षोभ, और उसकी आशायें, शिवशंकर के दिल में जैसे छुरी की धार की तरह चुभती है। उसकी बातों में व्यक्तिगत दुख का खिचाव है—जो शिवशंकर के कानों को बहुत कठोर लगता है। जितने लड़के लड़कियाँ हैं, उनमें सबसे विशिष्ट स्थान अर्जन किया है कल्याणी ने, शिवशंकर के हृदय में। शिवशंकर ने गंभीर आँखों से बेटी को देखा, जैसे उसके हृदय की बातें अपने अन्तर की दृष्टि से देख लेना चाहते हों, जैसे उसके हृदय के कोने में कोई अन्तर्वेदना छिपी हो। एक ही झलक में इस अभागिनी कन्या का सम्पूर्ण जीवन उनको आँखों के सामने नाच उठता है। उनके हृदय में केवल एक ही बात गूँजती रहती है—वे कुछ नहीं कर सके, उसे लिखना-पढ़ना सिखाया चाहे जो किया—उसकी अन्तर्वेदना को धोने के लिए वे कुछ भी नहीं कर सके। घोर पंडित की बेटी महामाया के साथ बहुत दिनों तक लड़ाई-झगड़ा कर इस कन्या को बी० ए० तक पढ़ाया है—और आगे न पढ़ा सके—उनकी छुट्टी हो गई। फिर भी जितना किया है, प्राणपन से किया है। किन्तु अचानक आज उसके विषण्ण-उदास मुख को देख और उसकी बातें सुन उनको लगा जैसे—उनकी सारी चेष्टा ही व्यर्थ हो गई है। उस शिक्षा-दीक्षा से केवल कन्या को ही नहीं—अपने को भी भुलाना चाहा है उन्होंने और कुछ भी नहीं कर पाये हैं। नन्हीं बच्ची समझ कर उसे चाहे जितने अच्छे कपड़े पहनाएँ हों, जितना भी भुलाना चाहा हो शिक्षा में—अच्छी तरह रखने में—यह वही उनकी विधवा कन्या है, जिसका विवाह किया था उन्होंने चौदह वर्ष की उम्र में और जो विधवा हो गयी पन्द्रह वर्ष की उम्र में प्रवेश

करते ही। उनके मन में बार-बार यही बात गूंजने लगी—शिक्षा दें चाहे जो भी देकर उसे भुलावें, उसके वैधव्य के दुख को वे भुला नहीं सकते।

सुरंग के समान सुदीर्घ गली सांध्य-तम से अब आच्छन्न हो उठी है। महामाया के साथ एक मामूली कलह और शोरगुल के बाद इस मकान का सर्द निचला तल्ला, उसके अन्धकारमय दो-एक घर और छोटा-सा बरामदा जैसे—सब भायँ-भायँ कर रहे हैं। क्रुद्ध महामाया, परिश्रमी शान्ता, मिलू और बिलू—सब जैसे इसमें खो गये हैं कहीं। हलके अंधकार के आंचल से ढकी नीरव निस्तब्धता में केवल विषण्ण कल्याणी बैठी है मूर्तिवत-सी।

'अवनी है?'

इसी समय बाहर से किसी ने पुकारा।

कल्याणी भटपट घबड़ा कर उठ खड़ी हुई। शिवशंकर के ध्यान-मग्न विषण्ण मुख की ओर देखकर वह बोली, 'शायद नरेन भैया आये आये हैं, बाबू जी!'

'नरेन! कहाँ? कमरे की घोर नीरवता में जैसे अचानक शिवशंकर बहुत उत्साहित हो उठे। जैसे साँस फेंक कर प्राण बचे। बोले, 'उसे बुला दो कल्याणी!' शिवशंकर सोये थे—उठ बैठे।

नरेन के कमरे में घुसते ही शिवशंकर का क्षोभ पुनः जाग उठा। बोले, 'यदु के कांड को सुना है नरेन!'

'बाबू जी!' कल्याणी ने केवल भौंहें टेढ़ी कर लीं।

शिवशंकर जैसे लज्जित हो उठे। बोले, 'अच्छा जाने दो—जाने दो वह सब बातें। जाने दो उस हतभागे की बातें।'

नरेन अवनी का मित्र है—शिवशंकर का पुराना छात्र भी। अतः यदुनाथ के नाम से वह पहले से ही परिचित है। नरेन शिवशंकर के क्षोभ से फट पड़ने के स्वभाव से भी परिचित है। कल्याणी की भौंहों

और शिवशंकर के गुस्से से उसे सहज ही वास्तविकता का कुछ आभास मिल गया। तनिक हँस कर बोला, 'आपको छुट्टी मिल गई—बस! उनसे अब आपका सम्बन्ध ही क्या ?'

'ठीक ही तो, सम्बन्ध क्या।' —शिवशंकर सिर हिला कर बोले, 'ठीक कहते हो।'

'स्कूल की किसी भी बात में अब आपके पड़ने की जरूरत नहीं मास्टर साहब!' नरेन बोला, 'दलबंदी में पड़ कर आप अकारण ही कष्ट पायेंगे।'

'ठीक कहते हो नरेन—जानबूझ कर जैसे वे सब मुझे चोट पहुचाते हैं।' शिवशंकर बोले, 'तुम मेरे छात्र हो, तुम तो जानते हो, कि इस स्कूल के लिए मैंने क्या नहीं किया है। अपना जीवन तक दे दिया है।'

'अब नहीं देना पड़ेगा—अब आपको मुक्ति मिल गई। प्राविडेंट फंड के रुपये तो मिल गये ?'

'हाँ, फेयर-वेल के ही दिन मिल गये।' शिवशंकर एक लम्बी साँस फेंक कर बोले, 'यही मेरे सम्पूर्ण जीवन का संचित धन है।'

इस वृद्ध पुरुष के विषण्ण गले से यह बात इस तरह सुनाई पड़ी कि नरेन के मुँह से कोई बात ही न निकल सकी। कुछ क्षण चुप रह कर वह धीरे-धीरे बोला, 'दूसरे की चिन्ता दूसरे आदमी को—कुछ लड़के-लड़कियों को भी अब सोचने दीजिये मास्टर साहब!

'अभी कुछ देर पहले कल्याणी भी यही बात कह रही थी। किन्तु क्या करेगी वह ?' कह तनिक जोर से शिवशंकर हँस पड़े।

'क्यों नहीं करेगी ?' नरेन बोला, 'फिर पढ़ाया-लिखाया क्यों ? स्टेनोटाइप का कोर्स फिर सिखाया क्यों ?'

'तुम लोगों ने कहा—इसीलिये। यानी, 'शिवशंकर हिचक-हिचक कर बोले—'वह नौकरी करेगी—यह मैंने सोचा भी नहीं। इसने भी

उस समय जिद्द की—सीखेगी ही। और जानते तो हो—उसकी कोई भी साध मैंने अधूरी नहीं रहने दी।'

'यह तो आपके शौक को पूरा करने की बात है मास्टर साहब! मैं तो जरूरत की बात पूछ रहा हूँ, जीवन-संग्राम की बात!'

तुम लोगो की यह इस युग की बात नहीं समझता—ऐसी बात नहीं, अच्छी तरह समझता हूँ।' शिवशंकर धीरे-धीरे बोले, 'किन्तु इस संग्राम में क्या लड़कियों को भी लगायेगा तू! घर से किस कोने में सुख शान्ति रहेगी तब?'

'इस युग की जिन्दा रहने की भावना ही उनको खींच कर जीवन-संग्राम में ला खड़ा कर देती है मास्टर साहब! हमारे भेजने न भेजने की बाट वे नहीं देखती।' नरेन बोला—'लेकिन मैं लड़कियों की आर्थिक मुक्ति की बात ही विशेष रूप से कह रहा हूँ। उनकी कोई भी शिक्षा, कोई दीक्षा तब तक पूरी न होगी जब तक कि वे आत्मनिर्भर होना नहीं सीखेंगी।'

इस तर्कवीर छात्र के साथ तर्क करने में शिवशंकर को मजा आता है, प्रेरणा मिलती है उन्हें और इसीलिये बुला-बुला कर तर्क करते हैं। आज भी तर्क की वही टेढ़ी-मेढ़ी धारा चल पड़ी—साधारण रूप में। नरेन की अनेक बातें वे मान भी लेते हैं किन्तु सबको जब कल्याणी के जीवन से मिला कर देखते हैं, तब सब के पहले ही जो भयंकर मुख उनकी आँखों के सामने नाच उठता है वह है घोर पण्डित की बेटी महामाया का मुख। और आगे वे सोच ही नहीं पाते हैं। नरेन के चीत्कारपूर्ण तर्क को सुन शिवशंकर बोले—'धीरे नरेन, धीरे। तुम्हारी काकी सुन लेगी।'

नरेन एकबारगी चुप हो गया।

अभी कुछ देर पहले कल्याणी की जो विषण्ण मूर्ति शिवशंकर के सामने बैठी थी—वह मूर्ति अब भी उनकी आँखों के सामने जैसे नाच

रही है। नरेन की बात सोचते-सोचते शिवशंकर बोले—'संभव है, तुम्हारी ही बात ठीक है नरेन, शिक्षा से ही सारे अंधकार का अन्त नहीं होता, काम भी चाहिए। संभव है अंधकार के पहचान लेने की शिक्षा हो जाने से विद्या का अन्त हो जाता है—किन्तु उसको धक्का दे कर निकाल देने से उत्तरदायित्व का अन्त नहीं होता है। इसलिये मुमकिन है, कल्याणी को इतना दुःख लगा था। वह दुःख ठीक क्या है, पता नहीं। किन्तु कुछ दुःख है यह समझा हूँ।'

व्यक्तिगत बात में नरेन तनिक संकोच अनुभव करता है। संभव है यह उसके हृदय की दुर्बलता भी है। वह चुप बैठा रहा।

शिवशंकर बेमन होकर बोले—'तो तुम कल्याणी के नौकरी करने का समर्थन करते हो?'

'जरूर करता हूँ मास्टर साहब!' नरेन ने अपनी बात पर बल देकर कहा।

शिवशंकर तक दीर्घ निःश्वास फेंक कर बोले—'क्या जाने ठीक से समझ नहीं पा रहा हूँ। किन्तु यह समझा है—इस युग में चिता-सजाकर मरने के लिए तो उन्हें नहीं ही भेज सकता; किन्तु तिल-तिल कर मरती ही हैं—शिक्षा-दीक्षा चाहे जो भी दीजिये।'

शिवशंकर जैसे अपनी आँखों के सामने अपनी विधवा कन्या को देख ही रहे हैं—चिरंतन के उस भाग्यहीन एक अंध जीवन-पथ पर अवरुद्ध निःसंग!

इसी समय दो कप चाय लेकर कल्याणी कमरे में आ पहुँची। चाय देकर बाप से एकदम सट कर वह बैठ गई—चुपचाप।

शिवशंकर धीरे-धीरे बोले—'जानते हो नरेन, मेरे वंश में एक बड़ा भारी दोष है? घोर पण्डित की कन्या महामाया के साथ विवाह करने के समय उस दोष को लेकर भीषण गोलमाल उठ खड़ा हुआ।

विवाह जैसे अब टूटा, तब टूटा। जानते ही हो—ऐसी घटनाएँ तब अक्सर घटती थीं। साक्षी प्रमाण के साथ मेरे वंश का दोष प्रकट हो गया। मेरी एक परदादी सती होने गई थीं—तब उनके पैरों में महावर लगी ही थी। किन्तु यह खबर खोटी नहीं है। उन्हें चिता पर बैठा, रस्सी-फस्सी से बाँध, ढोलक-झाँझ बजाकर चिता में आग लगाते ही आ गया प्रचंड तूफान—कहते हैं वह समय था शायद काल-वैशाखी का। वर्षा-तूफान के डर से चिता छोड़ कर सभी भाग चले। किन्तु वर्षा-तूफान के शांत हो जाने पर लोगों ने जाकर देखा—बहू न थी, चिता धू-धू जल रही थी।'

कल्याणी ने कौतुहल वश पूछा—'रस्सी से बाँधा क्यों पिताजी ?

'नहीं बाँधने से आग की जलन से यदि भाग जातीं ? हाँ इसके पहले उसे दुलहिन की तरह सजाते, पैर में महावर और पायजेब पहनाते, मांग में सिन्दूर की बिन्दियाँ लगा देते।'

'ओह कितना दर्दनाक !' कल्याणी जैसे सिहर उठी—'लेकिन कहते हैं सती होने हँसते-हँसते जाती थीं।'

'जाने पर भी शरीर रहने से उसकी यंत्रणा कहाँ जायेगी बेटी !' शिवशंकर बोले,—'इसी लिये यंत्रणा के उस चीत्कार को ढोलक-झाँझ बजा कर डुबा देने के लिए उत्सव का ताण्डव किया जाता था।'

'ओ माँ !'

'इसी चीत्कार को ही तो सुन कर राममोहनराय का हृदय पिघल गया था बेटी ! हमारे घोर पण्डितों के गाँव में दौड़ पड़े थे वे। उनके आकर्षण से मेरे एक दादा ब्राह्म हो गये थे।'

कल्याणी का मन जैसे किसी ऐसी ही चिता के आस-पास चक्कर काट रहा हो। बोली—'अपनी उस परदादी की कहानी कहो बाबू जी ! क्या अन्त तक वह जल कर मरी नहीं ?'

'नहीं बेटी !' शिवशंकर बोले,—'सोचकर देखो—किस यंत्रणा से भाग खड़ी हुई वह लड़की। रस्सी से बाँध दिया था—फिर भी चिता छोड़ कर भाग खड़ी हुई। ढोलक-झाँझ बजाते--फिर भी उसका आर्तनाद सुना जाता—जरूरत पड़ने से मुर्दा खोदने वाले बाँस से खोदते भी—यह भी सुना है।'

'ओ माँ !' कल्याणी फिर सिहर उठी।

'लेकिन चिरंतन काल से मकान की बहुएँ उसके महावर मण्डित पदचिह्न को श्रद्धा के साथ स्पर्श करती आई हैं। उत्ताराधिकार के रूप में परदादी को सौंप गई है, दादी माँ को और माँ महामाया को। मकान की बहुएँ जानती आई हैं—वह सती हो कर ही मरी है।'

'तब झूठी बात है !' कल्याणी के स्वर में जैसे अदम्य कौतुहल भरा हो।

'ठीक ही तो।' शिवशंकर बोले—'शत्रुपक्ष के लोग कहते हैं—उस अधजली लड़की ने अपना शेष जीवन एक गोरे के आश्रम में काट डाला।'

वेदनाभिभूत कल्याणी की युगल आँखें जैसे किसी सुदूर अतीत के ऊपर जा अटकी हैं। नरेन एकबारगी मौन है। उसकी बोझिल आँखों में जैसे एक दबी उत्तेजना मुस्करा रही हो।

शिवशंकर नरेन की ओर देखकर बोले—'इसी तरह की कितनी ही अप्रिय घटनाओं के बाद अन्त में कानून द्वारा सतीदाह-प्रथा बन्द कर दी गई।'

नरेन उत्तेजित स्वर में बोला—'इसी से क्या हमारी नारियों के दुखों का अन्त हो गया है मास्टर साहब ? उसके बाद से आज तक क्या प्रतिदिन वे जीवित जलाई नहीं जा रही हैं ?'

उसकी बातें, उसका उत्तेजित कथन एक आदमी को बेचैन कर देता है—वह आदमी है कल्याणी।

शिवशंकर बोले—'जलाई जा रही हैं नरेन—प्रत्येक दिन ही सती के समान जलाई जा रही हैं, अपने वैधव्य की आग में जलाई जा रही हैं। उनके वैधव्य की यंत्रणा सुनाई पड़ी थी विद्यासागर को। तब की डाँवाडोल अवस्था में कानून भी बना किन्तु बस कानून ही भर। वर्तमान युग में संभव है, समस्या कुछ पुरानी हो गई है किन्तु उसका अन्त नहीं हुआ है, समाधान नहीं हुआ है उसका।'

'क्या समाधान नहीं होना चाहिए मास्टर साहब?'

शिवशंकर एक लम्बी साँस फेंककर बोले—'होना क्यों नहीं चाहिए नरेन—हमारे घरों के अंधकार में चिताओं की ज्वाला का आज भी अन्त नहीं हुआ है, अन्त तो होना ही चाहिए।'

नरेन बोला—'पुरुषों की इसी प्रकार की शुभेच्छाओं से क्या किसी दिन भी पर्दे के अन्दर रहनेवाली नारियों की चिताएँ बुझेंगी मास्टर साहब?'

शिवशंकर विषण्ण स्वर में बोले—'बुझी तो नहीं हैं।' क्षण भर के लिए उनकी आँखें कल्याणी पर जा अटकीं।

नरेन उत्तेजित स्वर में बोला—'जिनको जीवित रहना है, वही यदि जीवित रहना नहीं चाहेंगी, जीवित रहने के आनंद और सम्मान के लिए जब तक वे उठकर खड़ी न हो जायेंगी तब तक हजार शुभेच्छाओं और कानूनों से कुछ भी नहीं होगा।'

नरेन की एक-एक बात, उसकी बातों की एक-एक तरंग जैसे कल्याणी के हृदय के स्पंदन को उद्वेलित कर देती है, उसकी आँखों में न जाने कैसी एक दीप्ति मुस्कुरा उठती है—शायद जीवित रहने की दीप्ति!

शिवशंकर क्लांत स्वर में बोले—'उसी बात पर आज विचार कर रहा था नरेन! इसीलिए कह रहा था...'

वे क्या कहने जा रहे थे लेकिन रुक गये, कह न सके। मुँह जैसे बन्द हो गया।

'कल्याणी!' भीतर से ही महामाया के गले की कर्कश आवाज सुनाई पड़ी, क्या कर रही हो तुम वहाँ?'

सभी जैसे चकित हो उठे, उत्कंठित-से। कल्याणी चुपचाप कमरे से चली गई। नरेन चंचल हो उठा। शिवशंकर भी जैसे अपने को असहाय समझने लगे। मन ही मन उन्होंने समझा—महामाया ने उन लोगों की सारी बातें सुन ली है। इसके बाद बातचीत जम नहीं पायी।

नरेन विदा लेकर चला गया।

महामाया कमरे में आईं। शिवशंकर ने आँखें बन्द कर लीं।

इस बार शिवशंकर महामाया के सामने अकेले पड़ गये। अपनी असहायता को छिपाने के लिए स्वाभाविक रूप में महामाया की बातों के प्रत्युत्तर में केवल तनिक शोरगुल मचाकर अपनी बातों की बाढ़ में महामाया को डुबा सकते हैं। लेकिन अब शोरगुल मचाने की इच्छा नहीं करती—वे काफी क्लांत हो गये हैं। सम्पूर्ण जीवन ही तो उनका खड़े-खड़े शोरगुल करते बीता है—फल तो कुछ नहीं हुआ। उनके हृदय में बार-बार यही एक बात उद्वेलित होने लगी।

महामाया ने शांति भंग की—'तो बेटी के लिए नौकरी ठीक कर रहे हो?'

'नहीं, ऐसी कोई बात तो अब तक टीक नहीं हुई। लेकिन नौकरी कर ही लेगी तो क्या होगा!'

'उसके बाद?'

'उसके बाद क्या?'

'इस विधवा बेटी का सर्वनाश और कितने प्रकार से करोगे?'

शिवशंकर के हृदय को एक भारी आघात लगा। वे अचानक विमूढ़-से हो गये।

'बहुत बर्दाश्त किया, अब मुझसे बर्दाश्त नहीं होता।' महामाया ने कठोरता के साथ कहा—'उसके उस टाइप-फाइप सीखने के पीछे नरेन का जो उद्देश्य था—यह मैंने उसी समय समझ लिया था।'

'तुम क्या कह रही हो महामाया!' लज्जा और उत्तेजना से जैसे शिवशंकर चीत्कार कर उठे।

'हाँ, मैं ठीक कह रही हूँ। तुम्हारे इस छात्र की आवाजाही मुझे नहीं सुहाती—नहीं सुहातीं मुझे उसकी बातें। मैं सीधी बात कहती हूँ।'

शिवशंकर एक गंदगी के भय से चुप हो गये।

महामाया क्रुद्ध स्वर में बोलीं—'तुम्हें शर्म नहीं आती—उस भाग्यवती महावरमंडिता पद-चिह्नों वाली सती के बारे में विधवा बेटी के सामने झूठ बताकर बातें बनाने में? अपने वंश का दोष बताकर उसे प्रकट करने में घृणा भी नहीं आती! चूल्हे में जाय तुम्हारे वंश की बात—विधवा बेटी के सामने ऐसी गंदी बातें कहने में तुम्हें संकोच भी नहीं होता!'

शिवशंकर स्तब्ध!

जो महामाया वंश की पुनीत परम्पराओं को उत्तराधिकार के रूप में अपने साथ वहन करती आ रही हैं, आज उन्हीं विश्वासों को आघात लगा है। क्रुद्ध स्वर में वह फिर बोलीं—'बेटी को विधवा की साड़ी पहनने को न दी—बोले, अहा, नन्हीं बच्ची है, शौक-साध से अच्छे कपड़े पहने। स्कूल-कालेज में पढ़ाने लगे—बहाना कि पढ़ने-लिखने में भूली रहेगी। तब भी चुप रह गई। नरेन ने आकर कान भर दिया—टाइप-फाइप सीखे—कुछ न बोली। शेष सर्वनाश तक पहुँचा देने के लिए आज तुम पुण्यवती की कहानी सुनाने बैठ गये!'

आघात पर आघात खा कठोर होने की इच्छा रखते हुए भी शिवशंकर कठोर न हो सके। हाँ, उनकी बेटी विधवा है, भाग्य उसका

अवरुद्ध है, कहीं पथ नहीं....है भी नहीं। चिरंतनकाल से अवरुद्ध दरवाजे को खोल धक्का लगाकर कहाँ चली जायेगी ? दुविधा, द्वन्द्व, भय और संशय से कल्याणी का अतीत, भविष्य सब जैसे एकाकार हो जाता है। नरेन की कोई बात––कोई युक्ति पुनः मस्तिष्क में नहीं आती। समस्त युक्तियों और तर्कों के सामने शिवशंकर अपने को केवल अत्यंत दुर्बल समझने लगते हैं।

—:*०*:—

: ३ :

क्या मन क्या शरीर, शिवशंकर दिन प्रतिदिन दुर्बल ही होते जा रहे हैं। काम की दुनिया जैसे दिन पर दिन दूर ही होती जा रही है—क्रमशः काफी दूर! एक उदासीनता का एक सूक्ष्म अन्तराल जैसे उनके चारों ओर घेरा डालता जा रहा है। अब जैसे महा-माया के साथ झगड़ा भी करना नहीं चाहते। इस परिवर्तन को महामाया भी समझने लगी हैं। सब कुछ जैसे विपरीत प्रतीत हो रहा है जिससे वह भयभीत होती हैं।

इसी से महामाया उद्विग्न हो उठती हैं। एक दुर्जेय भवितव्य, जैसे महाअमंगल के समान, धीरे-धीरे छाता जा रहा है इस परिवार के ऊपर। अवनी से एक दिन पूछा—'क्या करोगे अवनी—कोई नौकरी नहीं करने से तो अब चलने का नहीं। उनके प्राविडेंट-फंड के रुपये में से अब बच ही कितने रहे हैं।'

अवनी भौंहें सिकोड़ कर बोला—'ठीक-ठीक बताओ, और कितने हैं?'

अवनी के इस प्रश्न को सुन महामाया मानो घबड़ा उठीं। तनिक हिचकिचा कर बोलीं—'अन्न है ही कितना। तुम्हारे सिर पर तुम्हारी एक बहन भी तो है। उसके ऊपर से इतने लोगों की चिन्ता।'

'ठीक है—सबको मैं मैनेज कर लेता हूँ, तुम देखती रहो।' अवनी बोला—'नौकरी करने से क्या होगा, समझ नहीं पाता हूँ माँ! मैं सोचता हूँ, छोटा-मोटा एक व्यवसाय करना। नौकरी-फौकरी तो सभी करते हैं।'

महामाया डरती-डरती बोली—'क्या व्यवसाय करोगे? कितने रुपये लगेंगे उसमें?'

'एक हजार, यदि दो तो।'

हालाँकि अवनी ने मजाक में ही कहा, फिर भी महामाया का मुँह जैसे सूख गया। बोलीं 'अन्त में सर्वस्व देकर मँझधार में डूबना तो नहीं पड़ेगा!'

'मैनेज करने की अक्ल होनी चाहिए।' अवनी बोला—'एक धोबीखाना और उसके साथ-साथ दर्जीखाना। सब को खुद देखूँगा-सूनूँगा।'

'क्या जाने क्या होगा बेटा!' महामाया बोली—'जो भी हो, कुछ करो।-

अवनी बोला—'तब तुम पिताजी को सब समझा कर कहो न।'

'तुम्हीं कहो।'

इसके बाद अवनी के व्यवसाय को लेकर शिवशंकर के कमरे में परिवार की एक मीटिंग एक दिन शुरू हो गई।

बेकार अवनी ने अपनी सुचिंतित योजना को अच्छी तरह समझा-समझा कर बताया। वह बोला—'एक धोबीखाना और उसके साथ-साथ दर्जीखाना होने से कम से कम इस मुहल्ले के लोगों को तो पाऊँगा ही। उसी से चल जायेगा।'

'चलेगा क्या!' शिवशंकर संदेह के स्वर में बोले—'एक सिलाई जानने वाले आदमी को तुम्हें वेतन देकर रखना पड़ेगा। उसकी तनखाह कितनी होगी?'

अवनी बोला—'एक आदमी सिर्फ कुछ महीनों के लिए रखूँगा। कल्याणी और शान्ता तो घर में बैठीं ही हैं, ये यदि कुछ महीनों में सिलाई-कटाई सीख लेंगी तो आदमी को हटा दूँगा। तब सिर्फ एक धोबी रह जायेगा।'

कल्याणी और शान्ता के काम में लग जाने की बात शिवशंकर को अच्छी लगी। वे बोले—'कल्याणी और शान्ता यदि काम में लग जायेंगी तब तो कोई बात ही नहीं।'

'तब इस माने में कोई खर्च-वर्च भी नहीं, वरन लाभ ही लाभ है। सोलह-आना लाभ! कल्याणी यह टाइप-स्टेनोग्राफी सीखकर करेगी क्या?' कल्याणी की ओर देखकर अवनी बोला—'क्या कहती हो कल्याणी? तुम्हें और शांता को सिलाई-कटाई सीखने में लगेंगे ही कितने दिन!'

कल्याणी मुख बोझिल कर बोली—'तुम जो अच्छा समझो वही करो भैया।'

कल्याणी की भाव-भंगिमा अवनी को अच्छी न लगी। तनिक निरुत्साहित होकर उसने शिवशंकर की ओर देखा। अवनी ज़ानता है, कल्याणी के मत को शिवशंकर कितना महत्व देते हैं।

शिवशंकर अब तक आँखें बन्द किये सोच रहे थे। सोच रहे थे कल्याणी के उस विषण्ण उदास मुख के बारे में, सोच रहे थे नरेन की कही उस आत्मनिर्भरता की बात के बारे में, सोच रहे थे शान्ता के बारे में भी।

अवनी का प्रस्ताव सचमुच ही उन्हें बहुत अच्छा लगा है। डर है, तो सिर्फ महामाया का। आँखें बन्द किये ही क्लांत स्वर में बोले

'कल्याणी और शान्ता सिलाई के इस कामकाज को करेंगी—इसके बारे में तुम्हारी माँ की क्या राय है, पूछ कर देखो।'

दुर्बल क्लांत स्वर में बोलने पर भी यह महामाया के प्रति उनका कटाक्ष है यह समझते महामाया को देर न लगी। वह बोली, 'तो उसी से क्या लड़कियाँ दूकान में बैठकर सिलाई करेंगी !'

अवनी झट से बोल उठा, 'इसकी जरूरत ही क्या है ? घर में बैठ कर सिलाई करने से ही काम चल जायेगा। और सब मैनेज कर लूंगा मैं।' कह पुनः एक बार कल्याणी का समर्थन प्राप्त करने की चेष्टा की अवनी ने। पूछा, 'क्यों क्या राय है तुम्हारी कल्याणी ?'

लेकिन इस बार कल्याणी का समर्थन नहीं मिला।

केवल शांता बोली, 'होगा क्यों नहीं भैया, मैं एकाध महीने में ही काम चलाने लायक सिलाई सीख लूँगी।'

किन्तु अवनी का मन नहीं भरा।

उस दिन यहीं तक मीटिंग हुई।

इसके बाद कल्याणी के पीछे-पीछे अवनी उसके कमरे में जा घुसा। उसे अकेले पाकर जैसे उसके पीछे पड़ गया। बोला, 'तुम मेरी आइडिया को शायद समझ नहीं पा रही हो कल्याणी—इसी लिये...'

कल्याणी विव्रतरूप में हँसकर बोली, 'कौन कहता है, समझती नहीं हूँ।

'तब इस तरह तुम टालती क्यों जा रही हो ?'

'वाह, टालती कहाँ हूँ ! तुम्हारा व्यवसाय—तुम्हीं अच्छी तरह समझते हो। मेरी स्टेनो-ग्राफी तो खाक-पत्थर है....'

'अःहा, तुम्हारे टाइप-स्टेनोग्राफी को खाक-पत्थर कौन कहता है ?'

'तुम कह रहे हो।'

'मैंने कहा है ऐसा !' अबनी खिन्न-मुख तनिक हँस कर बोला,

'समझती तो हो कल्याणी, मुझे कुछ करना ही होगा। काम-धंधा तो कुछ मिल नहीं रहा है। एक छोटा-मोटा व्यवसाय भी यदि मैनेज कर पाता—!'

कल्याणी उसके उस हताश-करुण मुख की ओर देख कर हँसकर बोली, 'तो करो न!'

'किन्तु तुम्हें निरुत्साह देख मुझे उत्साह जो नहीं मिलता। और बाबूजी रुपये देंगे—इस पर भी तो भरोसा नहीं होता।'

'मेरा काम तो तुमने शेष कर ही दिया?' कल्याणी बोली, 'कब तुम्हारा व्यवसाय चालू होगा मालूम नहीं, किन्तु माँ इस महीने में मेरे टाइप के स्कूल की फीस बन्द कर देगी।'

'कभी नहीं, कभी नहीं बन्द करने दूँगा।' अवनी जोर-जोर से बोलने लगा, 'तुम्हारी टाइप-स्टेनोग्राफी बहुत अच्छी है। तुम मेरे आइडिया की तरफ सिर्फ तनिक ध्यान भर रखो बहन।'

अवनी की मामूली-मामूली बातों में भी निराशा का भाव है। कल्याणी को यह अखरता है। तीक्ष्ण दृष्टि से उसने अवनी की ओर देखा। उसके मुख पर बेकारी की स्पष्ट रेखाएँ, आँखों में एक विषण्ण आग्रह, क्लांत मुख दाढ़ी से ढका हुआ, शरीर पर एक फटी कमीज—सबने मिल कर कल्याणी के हृदय को जोर से झकझोर दिया। उसकी आँखें दीवार पर टँगी एक तस्वीर पर जा अटकीं—आज की ही तरह भाई-बहन तस्वीर में एक साथ पास-पास में खड़े हैं, मुख पर मुस्कान है, पोशाक है कनवोकेशन की—आज से केवल दो वर्ष पहले जिस दिन कल्याणी बी० ए० की डिग्री लेने गई थी, और अवनी गया था एम० ए० की डिग्री लेने। क्या मालूम उसका झुलसा हुआ शरीर कैसे हो गया है, किन्तु अवनी कितना बदल गया है! हाँ है उसके मुख की वह दीप्ति और कल्पना का वह उच्छ्वास! ....मिला

कर देखती है कल्याणी, देखते-देखते एक लम्बी साँस फेंकी उसने।

कल्याणी की दृष्टि देख जैसे अवनी भी स्तब्ध हो गया। धीरे-धीरे बोला, 'क्या देखती हो कल्याणी तस्वीर में?'

'वह दिन और आज का दिन!' कल्याणी म्लान हँसी हँसकर बोली—'मिलाकर देख रही हूँ। तब तुम क्या सोचते थे, क्या कहते थे, याद है?'

'वे दिन बीत गये, अब क्या सब याद है!'

'मुझे याद है।' कल्याणी सकरुण हँसकर बोली—'गंगा के किनारे का वह छोटा-सा मकान, पीछे की तरफ बगीचा—तुम्हारे साहित्य-संगीत की वह चर्चा और अपनी मर्जी के मुताबिक चलने वाली एक नौकरी!'...

अवनी हँस पड़ा। उसे जैसे सभी बातें याद हो आईं। कब, कहाँ, कल्याणी को लेकर एक दिन अवनी घूमने गया था—लौटा तो आँखें मधुर सपनों से भर उठी थीं। नदी के किनारे एक छोटा-सा मकान, दोनों भाई बहन नौकरी करेंगे, अवनी शादी नहीं करेगा। दोनों हँसते-खेलते एक साथ जीवन को पार कर देंगे शान्ति के साथ!...

अवनी ने पूछा—'और तुम क्या सोचती थी? वह भी मैं भूला नहीं हूँ। कहाँ गई तुम्हारी एम० ए० की डिग्री, बालिका विद्यालय में अध्यापन...वह गवेषणा और इतिहास!'

हाय रे! सूर्य की किरणों से इङ्गित वह स्वप्नों की एक पृथ्वी—जीवन की एक तृष्णा! अन्धकार से पूर्ण शीतल कमरे की सारी चीजें जैसे अब भी इनको करुण निर्निमेष देख रही हों।

कल्याणी हँस पड़ी। बोली—'चूल्हे में वह सब जाय भैया! तुम दर्जी की दुकान करो, अभी दर्जी का ही काम करो।'

'मजाक तो नहीं कर रही हो?'

'मजाक क्यों करूँगी भैया, भाई-बहन ने सपने भी देखे थे एक दिन बच्चों की तरह, तब भी मजाक नहीं किया था तुम्हारे साथ। और आज दुखी संसार को चलाने के समय मजाक करूँगी तुम्हारे साथ? ऐसे मुंह में आग लगे।'

अवनी हँसकर बोला—'दिल को इस बार साहस मिल रहा है कल्याणी!'

'जो करना है, झटपट करो।' कल्याणी बोली—'बाबूजी का शरीर दिन पर दिन टूटता ही जा रहा है। देखते तो हो?'
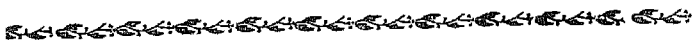
:४:

शिवशंकर शरीर और मन, दोनों से ही तेजी के साथ दुर्बल होते जा रहे हैं और इसी दुर्बलता की ओट में इस बार मानो उनके लिए सच्चा अवसर आ रहा है।

ज्यों-ज्यों सर्दी बढ़ती गई, शिवशंकर त्यों-त्यों अवश-से होते गये, अधिकाधिक व्यावहारिक जीवन की ठोकर खाते-खाते जैसे वे संकुचित-से हो चले। आधुनिक शिक्षा के इस युग में उनका ज्ञान पुराना पड़ गया है—इन दिनों उसका कोई इच्छुक नहीं। यहीं उनकी हार हो गई—हार हो गई उनकी अपने संसार में भी। पथ खोज न पाये वहाँ महामाया को लेकर, न खोज पाये कल्यणी को लेकर। अन्त में शरण लेनी पड़ी कण्ठी-माला की और कर्म-योग को छोड़ कर गीता के दूसरे सभी योगों की। दाढ़ी-मूँछ बढ़ा ली और अपने चारों ओर एक ऐसे घेरे का निर्माण किया, जहाँ महामाया का क्रुद्ध तीक्ष्ण-वाण भी अब लक्ष्यभेद नहीं कर सकता।

फिर भी उनके इस खुद के रूपवर्णहीन उदासीन जगत् में कभी-कभी लौट आता है अभिमान। क्लांत मंथर कण्ठ-स्वर से निकल नहीं पाते गीता के श्लोक। पन्ने उलटने की ही सुधि जैसे नहीं रहती। इस सुनसान गली में खिड़की की राह से निर्निमेष देखते रह जाते हैं घंटों चुपचाप, हालाँकि इस खिड़की से न तो दिखाई पड़ता है उन्मुक्त आकाश और न कोलाहलमय राजपथ ही। कभी-कभी गली में दो-एक पैरों की खटखट आवाज सुनाई पड़ती है लेकिन मनुष्य का चेहरा दिखाई नहीं पड़ता है। फिर भी मनुष्य के ही पैर तो! उन्हीं चलंत मनुष्य पदों का अनुसरण कर लाखों सीमाओं के बाहर भी वे कभी-कभी कर्म-रत कोलाहलमय मनुष्य-जगत में पहुँच जाते हैं। वहाँ सभी काम करते हैं—अविराम गति से, एकत्र हो गये वहाँ मानों सारे जगत् के मनुष्य सिर्फ शिवशंकर को छोड़कर। उनकी आँखों में अजस्र मुख चमकने लगते हैं उनके जाने-पहिचाने सहकर्मियों के मुख...वही शत्रु यदुनाथ, वही उनके विद्यार्थी! •इतना समय हो गया, टिफिन का घंटा खत्म नहीं हुआ? कौन पढ़ा रहा है वह उत्तर के कमरे में कोने में खड़े-खड़े?

अतएव ए—बी—सी—एक त्रिभुज है—ना ना, एक चतुष्कोन है—उहूँ—वृत्त—ना-ना, कुछ भी नहीं, कुछ भी नहीं....सब भ्रम है, मा फलेषू कदाचन...मा फलेषू...

'बाबूजी!'

कल्याणी के गले की आवाज आई।

सिर नीचा किये शिवशंकर पड़े हैं, :जैसे उन्हें झपकी आ रही है। क्लांत स्वर में उत्तर दिया—'हूँ....।'

'क्या गुनगुना रहे हैं•?'

एक लम्बी साँस फेंककर शिवशंकर बोले—'कुछ भी नहीं रे।' इसके बाद तनिक रुककर बोले—'मैं जरा चलने-फिरने लगूँ तो मुझे अपनी गली के बाहर ले चलना तो!'

'जरूर ले जाऊँगी। तुम्हें घुमाने के लिए रोज ले जाऊँगी तब। तनिक अच्छे तो हो लो।'

शिवशंकर कुछ देर तक शून्य दृष्टि से ताकते रह गये। इसके बाद धीरे-धीरे पूछा—'कोई आता नहीं है?'

'किसकी बात पूछ रहे हो बाबूजी?'

'यही....यही...यानी यदुनाथ।' मानों केवल यदुनाथ का ही नाम शिवशंकर को याद आता है।'

'नहीं! कौन-सा मुँह लेकर अब वे यहाँ आयेंगे बाबूजी!'

बाप को खुश करने के लिए ही शायद कल्याणी ने यह बात जोर से कही। लेकिन शिवशंकर खुश हुए नहीं। कैसे समझेगी कल्याणी—शिवशंकर आज भिखारी की तरह कर्ममय जगत् की ओर एकटक देख रहे हैं। लेकिन वहाँ से यदुनाथ भी नहीं आता। शिवशंकर एकबारगी विस्मृत, परित्यक्त और जंजाल के समान हो गये हैं। धीरे-धीरे एक दीर्घ निःश्वास को शिवशंकर ने दबा दिया।

कल्याणी बोली—'यह जाड़ा खत्म होते ही तुम अच्छे हो जाओगे बाबूजी!—तुम्हारे कविराज ने बताया है। केवल इस जाड़े ने तुम्हें अधिक विवश कर दिया है।'

क्या मालूम यह जाड़ा कटेगा या नहीं! शिशिरावृत्त बेला की खिन्न रोशनी की ओर एकटक ताकते रह गये शिवशंकर। न जाने किस अदृश्य लिपि को उनकी आँखें जैसे पढ़ती ही रह गईं।

कल्याणी बोली—'अब शाम की दवा खाने का वक्त हो गया बाबूजी, दवा ला दूँ तुम्हारी।'

सुबह से शाम तक कितनी ही बार कविराज की दवा खानी पड़ रही है। लेकिन कुछ भी फायदा नहीं रहा है यह अच्छी तरह महामाया समझ रही हैं। उनका क्रोध और असंतोष से स्फुरित मुख दिन पर

दिन सूखता जा रहा है दुश्चिंता से—आशंका से। अंत में एक दिन कविराज की चिकित्सा बन्द कर होमियोपैथी शुरू कर दी गई। और भी चिकित्साएँ कुछ दिन चलती रहीं; किन्तु कोई परिवर्तन दीख नहीं पड़ा। ऐलोपैथी की तरफ महामाया भय से जाना नहीं चाहतीं—खरच-बरच बहुत अधिक होता है। इधर धीरे-धीरे प्राविडेंड-फंड के रुपये साफ होते जा रहे हैं। और शिवशंकर की बीमारी बढ़ जाने के कारण अवनी के व्यवसाय का प्रस्ताव फिलहाल स्थगित कर दिया गया है।

एक दिन डरते-डरते महामाया ने अवनी से पूछा—'कुछ भी तो समझ में नहीं आता अपनी! कविराजी और होमियोपैथी से तो कुछ भी लाभ नहीं हुआ। अन्त में क्या एलोपैथी ही शुरू करोगे?'

अवनी चिढ़कर बोला—'मैं पहले ही जानता था, एक भीषण गोलमाल होगा। तुम्हीं सिर्फ अच्छी तरह समझती हो—यही तुम्हारा ख्याल है। लेकिन मैनेज कुछ भी नहीं कर पाती हो।'

महामाया भी क्लांत हो उठी हैं। बोली—'अच्छी बात तो है, अब जो करना है वह तुम करो न। मैं अकेले कुछ सोच नहीं पा रही हूँ।'

'किसी दिन सोचने की बात कही है? सब तो अलग-अलग रह कर अकेले ही किया है और खूब टंटा किया है।' अवनी बोला अंत में—'अच्छी बात है, अब तुम अलग हट जाओ, मैं मैनेज कर लेता हूँ।'

इसके बाद अवनी की व्यवस्था आरम्भ हुई।

दूसरे ही दिन अवनी ने परामर्श के लिये कविराज को बुलाया, होमि पैथी डाक्टर को बुलाया, एलोपैथी डाक्टर को भी बुलाया। जितनी बात उसकी समझ में आई उसे अपने तर्क से उचित ठहराने की चेष्टा की एवं अन्त में सबके विरुद्ध सबको भिड़ा एक भीषण गोलमाल खड़ा कर दिया। सभी प्रायः अपमानित और नाराज हो होकर चले गये।

कल्याणी बोली—'यह क्या शुरू कर दिया भैया!'

अवनी बोला—'ठीक है, सब समझ में आ गया—उनकी बातों से सब कुछ साफ हो गया। अब एक बड़े डाक्टर को बुलाकर देखाने की जरूरत है। छोटे-मोटे के वश का रोग नहीं है।'

अन्त में एक बड़े एलोपैथ भी आये, देखा सुना और बोले, 'इस तरह रोगी को तंग करना उचित नहीं, शांति से शेष होने देना चाहिए।'

'कोई चिकित्सा ?'—अवनी ने घबड़ा कर पूछा।

'चिकित्सा से अधिक वेग से उनका मन इस संसार को छोड़कर भाग रहा है।'

'रोग क्या है ?'

'नौकरी से अवकाश मिल गया है—यही सबसे मर्मान्तक बात है। अचानक जैसे सब कुछ शेष हो गया। अवकाश ग्रहण करने पर प्रायः अधिकतर लोग ही मन और शरीर से चूर-चूर हो जाते हैं। इसी-लिये मृत्यु को वरण करने की इच्छा ही प्रबल रहती है।'

'तब ?'—अवनी ने सिर खुजलाकर पूछा।

'फिर अब तब क्या! जितने दिन अब जीवित हैं, उतने दिन बस।' डाक्टर बोले—'अगर तनिक घूम फिर सकेंगे तो घूमेंगे। जाड़ा खत्म होने से निश्चय ही तनिक चंगा हो उठेंगे।'

: ५ :

किन्तु शिवशंकर स्वस्थ न हो सके।

जाड़े को काटने की भी जरूरत न पड़ी—और जरूरत न पड़ी किसी डाक्टर की भी। अपने अवसर-प्राप्त जीवन को स्वयं ही समझबूझ कर एक दिन शिवशंकर चुपचाप चल बसे।

उनके चले जाने के बाद ही जैसे इस परिवार पर विपत्ति का पहाड़ टूट पड़ा। आसन्न विपत्ति की आशंका से यह परिवार इतना अभिभूत हो उठा कि शोक प्रकट करने का भी जैसे अवकाश न मिला। इस युग और उस युग के युग-संधि पुरुष शिवशंकर इस संसार से भी विदा लेकर चले गये सदा के लिए। अब इस युग का बोझ आ पड़ा इस युग के ही ऊपर। किन्तु इस युग का आदमी तो है अवनी! जिसके मुख की ओर देख महामाया को कोई तनिक भी साहस नहीं मिलता। उसके उस व्यवसाय की बात पारिवारिक विपत्ति के तूफान से दब-सी गयी थी। उसे फिर उभारने की इच्छा महामाया को जरा भी न थी। न होने पर लेकिन दूसरा रास्ता क्या है यह उनकी समझ में नहीं आ रहा था।

अंत में डरते-डरते एक दिन अवनी से पूछा—'क्या होगा अवनी, मैं तो कोई भी कूल-किनारा ढूँढ नहीं पा रही हूँ।'

अवनी बोला—'वह व्यवसाय अब मैं शुरू कर दूँ माँ! कितने रुपये और हाथ में हैं जरा बोलो तो सुनूँ।'

'बहुत ही थोड़े हैं, जो हैं उनके खर्च होने में कितनी देर लगेगी। महामाया बोली—'किन्तु वही तो सर्वस्व है।'

'इसी सर्वस्व को अब तुरंत काम में नहीं लगाने से अवस्थ और भी तो खराब हो जायेगी। जितनी देर करोगी, उतनी ही संगीन अवस्था होगी।' अवनी बोला।

अंत में एक दिन डरते-डरते महामाया ने इस परिवार की सारी पूँजी अवनी के हाथों पर रख दी। बोली—'देखना, जो करना खूब सोच-समझ कर करना।'

'देखो न क्या करता हूँ।' अवनी बोला—'पूँजी थोड़ी है, फिर भी इसी में मैनेज कर लेता हूँ।'

इसके बाद अवनी मैनेज करने में जुट गया। मिलू-बिलू की कापियाँ माँग-माँग कर उन पर कई दिनों तक हिसाब-किताब किया, सुबह-शाम इस इलाके में कमरे के लिए चक्कर काटा, धोबियों को बुला-बुला दर-भाव पूछा, सिलाई की मशीन किस्तबंदी (इन्स्टालमेंट) पर लेने लिए कंपनी से लिखा-पढ़ी शुरू कर दी। कुल हजार रुपये की पूँजी, हिसाब-किताब किया दर्जनों बार।

एक दिन नरेन आ पहुँचा। इसी बीच बिलू की लिखनेवाली पूरी कापी अवनी के हिसाब-किताब और काटा-कूटी से भर चुकी है। नरेन ने पूछा—'क्या कर रहे हो अवनी?'

'बैठो-बैठो।' कापी पर से मुख उठाये बिना ही अवनी बोला—'पूँजी कम है तो—इसीलिये इसको काटने से वह नहीं होता, वह काटने से यह नहीं होता। एक कमरा लेने में सलामी बाबत ही कितने रुपये

चले जाते हैं। वह भी पेशगी देनी पड़ रही है। धोबी भी पेशगी ही चाहता है। इसके अलावा सिलाई मशीन के लिए भी मोटी रकम चुकानी पड़ रही है। इसके ऊपर से सर-सामान का खर्च। जमाने के मन को खुश करना पड़ेगा तो!' व्यवसाय के पूरे रहस्य को एक बारगी प्रकट कर अवनी हँसने लगा हें-हें-हें।

'तुम्हारा व्यवसाय है, तुम्हीं अच्छी तरह समझ सकते हो। लेकिन मेरी राय है कि उसे छोड़ ही दो।' नरेन ने कहा।

'छोड़ दूँ! क्यों छोड़ दूँ?' इतने दिनों से इतना लम्बा-चौड़ा हिसाब-किताब किया है, पन्ने के पन्ने रंग डाले हैं—बिलू-मिलू की कापियों के।' हताश और क्रोधित होकर अवनी ने नरेन को देखा।

'बहुत बड़ा एकतरफा खतरा देख पड़ रहा है अवनी!'

अंग्रेजी की एक कहावत का उल्लेख कर अवनी बोला, 'खतरा मोल लिये बिना लाभ नहीं होता। जो नौकरी करते-करते ही सड़ना जानते हैं वे ख़तरे में क्या मजा है, नहीं समझेंगे। और नौकरी-नौकरी करते-करते जात भी तो खत्म हो गई। कुछ कहते ही कहेंगे—मूल धन बहुत कम हैं। अरे हिसाब-किताब लगाकर देखो भी तो मैनेज किया जा सकता है कि नहीं।'

'क्या जानें अवनी! तुम्हारा व्यवसाय तुम मैनेज करो।' नरेन हँसते हँसते बोला—'नौकरी करता हूँ इसलिये गाली देते हो—दो। किन्तु तुम्हारे हिसाब की चौड़ाई देख संदेह हो रहा है। कहीं गोलमाल जरूर है।'

'गोलमाल है! हरगिज नहीं। दिखाओ कहाँ है?' बिलू की हैण्ड-राइटिंग वाली कापी खोल कर नरेन को जैसे चैलेंज करते हुए अवनी बोला—'दिखाओ। राशन की दूकान से पूछ कर मालूम किया है। कम से कम चार सौ कार्ड हैं इस इलाके में। साल में ३६५ दिन होते हैं। हर आदमी पीछे दो कमीज बनाने पर भी होता है—'

'ठहरो-ठहरो अवनी।' नरेन विव्रत होकर बोला—'तुम्हारा यह हिसाब एक दम दुरुस्त है, मान लिया। लेकिन असल में कहीं कोई गलती है।'

महामाया बगल के कमरे से उनकी बातें सुन रही थीं। नरेन को चाहे जितना ही नापसन्द क्यों न करें—इस व्यवसाय के बारे में जो बातें वह कह रहा है—वह उन्हें अच्छी लगती हैं—उनके मन के मुताबिक। महामाया इस कमरे में आ पहुँची। नरेन से बोलीं—'क्या जाने बेटा, यह क्या कर रहा है। सर्वस्व उसके हाथ में सौंप दिया है। मैंने भी तो पहले कहा था—कोई नौकरी-औकरी ही ढूँढ़ो।'

अब ठौर कहाँ! अवनी क्रोध से कूदने लगा—टेबुल पर घूँसा मार-मार कर भाषण आरंभ कर दिया—

'व्यवसाय के बारे में तुम लोग क्या जानते हो? इसी कारण से पूरी जाति नष्ट हो गई। ऐसा ही कर तो संसार में आज....'

नरेन हाथ जोड़ कर बोला—'दोहाई भाई, तुम जरा ठहरो! जो जी में आये करो। मैं अब कुछ न बोलूँगा। असवार्ट कम्पनी का मैं एक मामूली किरानी हूँ—एकबारगी तुम हो व्यापारी।

यह खतरा मोल लेने से भी अवनी को रोका न जा सका, उल्टे वह और उत्तेजित हो उठा और कुछ देर बाद अपने व्यवसाय की योजना मैनेज करने में लग गया।

बड़े रास्ते की गली के मोड़ पर एक कमरा ठीक हो गया। धोबी भी ठीक हो गया। सिलाई की मशीन आ गई। सिलाई जानने वाला एक आदमी भी रख लिया गया, सर-सामान भी आ गये और सजा भी डाले गये। बड़ा-सा साइनबोर्ड लग गया 'सुवेश' का। शुरू हो गया अवनी का व्यवसाय!

जोर-शोर से शुरू भले ही किया गया। हैण्डबिल भी हजारों बाँटे गये: लेकिन आशा के अनुकूल ग्राहकों की भीड़ का लगना शुरू नहीं

हुआ। बड़े रास्ते पर रहने वाले लोग गली में क्यों जाने लगे एवं गली के लोगों ने शुरू से ही उधार बाकी लगाना चाहा—जिनकी उधार-बाकी मंजूर हुई वे रहे, जिनकी न हुई वे चले गये गली के बाहर। टेलरिंग न जमी, लेकिन धोबीखाना किसी तरह ठेल-ठाल कर चलने लगा। दो-एक महीने तक चलने के बाद जब तनिक जमा-कपड़े इत्यादि जब अधिक आने लगे—तो एक दिन भारी कपड़ों का बोझा लेकर वह धोबी जो लापता हुआ तो फिर न आया। अवनी ने पागल के समान दौड़ा-दौड़ी कर दी; किन्तु सब व्यर्थ। धोबी की खोज-खबर न मिली। केवल बाकी कपड़ों की रसीद लेकर लोगों ने धावा शुरू कर दिया। यहाँ तक कि घर तक भी। सब की एक ही माँग उनके पकड़े दो अथवा कपड़े की कीमत दो।

यह सब कुछ दे-दिला कर अवनी चुपचाप घर पर आ बैठा। इन्स्टालमेंट के रुपये न मिल सकने के कारण कंपनी अपनी मशीन उठा ले गई सिलाई वाली। महीने दो महीने का कमरा भाड़ा न मिल सकने के कारण मकान मालिक सर-सामानों को जब्त कर लेने की धमकी दे गया। अवनी एक बारगी चुप! महामाया को धीरे-धीरे छा लिया एक निर्लिप्त उदासीनता ने।

कल्याणी रोकर बोली—'यह क्या हुआ माँ!'

महामाया खिन्न स्वर में बोली—'तुम लोगों का संसार है, तुम्हीं लोग समझो बेटी! मैं अब कुछ नहीं जानती।'

'किन्तु तुम न समझोगी—तुम तनिक कठोर न होगी तो—'

'अब कठोर होने में क्या रखा है, कहो न मुझे।' महामाया रो उठीं।

कुछ भी नहीं, इस परिवार में अब कहीं कुछ नहीं है। सोना नहीं, नौकरी नहीं। जो पूँजी थी वह भी स्वाहा हो गई। सामने केवल अनिर्दिष्ट दिन!

ऐसे ही दिनों में महामाया को नरेन की याद आ गई। वह बोली—'अब तो वह आता नहीं।'

'उसे बुला भेजूँ माँ!' कल्याणी ने व्याकुलता के स्वर में पूछा। बेटी की उस व्याकुलता की ओर महामाया क्षणों देखती रह गईं। उनका संदेह, संशय, दुविधा और संकोच आँखों के सामने तेजी के साथ घूम रहे पहिये के समान नाचने लगे। उनके कानों में अब तक गूँज रही है कल्याणी की व्याकुलता भरी बात 'उसे बुला भेजूँ माँ!' महामाया धीरे-धीरे बोली—'अच्छा, एक बार बुला भेजो बेटी!'

:६:

दूसरे दिन आफिस से लौटते समय नरेन आया। तब प्रायः सन्ध्या हो आयी थी। धुएँ और अन्धकार से गली आच्छादित थी, और उस से भी अधिक अन्धकार और उमस में छिप कर बैठा है अवनी! युद्ध के एक घातक अध्याय के समाप्त हो जाने के बाद एक जेनरल का जैसा मुख होता है, वैसा ही गम्भीर मुख है अवनी का—जैसे सम्पूर्ण क्षति-विक्षति का लेखा-जोखा करने में वह निमग्न हो उठा हो। कई दिनों से दाढ़ी नहीं बनाई, मुख-गाल दाढ़ी-मूँछ के बढ़े बालों से ढँक-से गये हैं। सिर के ऊपर से जो तूफान गुजर गया है, उसके चिह्न स्वरूप अस्त-व्यस्त सिर के बाल! आँखें मिटमिटा कर उसे एक बार गौर से देख लेने के बाद अवनी ने पूछा—'यह कैसी मूर्ति अवनी, 'तुम्हारे व्यवसाय का शोक-चिह्न तो नहीं है?'

'अवनी आज चिढ़ा नहीं। उल्टे हँस कर बोला—बचपन में ईसप की एक कहानी में पढ़ा था—एक अधमरे सिंह को एक गदहे ने गर्व के साथ लात मारी थी।'

'लेकिन गदहा होने पर भी लात लात ही थी।' कह नरेन जोर-जोर से हा-हा कर हँसने लगा।

उसकी यह हँसी तीर के समान भीतर जा पहुँची।

कल्याणी आश्चर्य के साथ बोली—'माँ, नरेन भैया आये हैं शायद!'

वही उच्छ्वसित कंठ-स्वर कल्याणी का, वही व्याकुल आग्रह—जिससे महामाया बराबर ही डरती हैं। उनकी जपने की माला काँप उठती है, भाग्य को दोष देती हैं। वह बोली—'अच्छा बेटी, मैं जाती हूँ, तुम चाय तैयार करो।'

'चाय तैयार ही है माँ—भैया के लिए ले जा रही थी।' कल्याणी के पैर जाने के लिए बढ़ गये।

महामाया ने सूखे गले से पुकारा—'सुनो कल्याणी!'

कल्याणी मुड़कर खड़ी हो गई।

महामाया ने हुकुम दिया, 'तुम रसोईघर में जाओ, शान्ता को भेज दो।'

कल्याणी की आँखों में सहज जिज्ञासा की तरंगें, मुख पर निष्कपट भावों की हिलोरें फैल गईं। महामाया के हृदय की भावनाओं को वह कभी समझ नहीं पायी है—आज भी न समझ पायी। मूर्खों की तरह वह केवल आँखें फाड़-फाड़ कर देखती रह गई—महामाया शान्ता को साफ-सुथरे कपड़े पहनाने में व्यस्त हो गई हैं, शांता उनकी काम-काजू बेटी जो है। दो-दो बार मैट्रिक पास करने की चेष्टा कर अब माँ के साथ रसोई-घर की चक्की ठेलने में लग गई है। उम्र हो गई उसकी उन्नीस-बीस वर्ष की। वह जैसे महामाया की छाती को दबाये बैठी है।

सीधे-सादे ढंग से सजा-संवार कर महामाया ने शांता के हाथ चाय बाहर भेज दी। इसके क्षण भर बाद खुद भी पीछे-पीछे गई।

रसोईघर के एक कोने में बैठ इस भाग्यहीन परिवार की दुःख-वार्ता को सुनने के लिए कल्याणी जैसे बेचैन हो उठी !

किन्तु दुःखवार्ता में केवल लगातार सुनाई पड़ रही है महामाया की रुलाई—उनका पुराना, बहुत दिनों से सुना जा रहा क्रन्दन। क्रन्दन की पुनरावृत्ति, कब दस वर्ष की लड़की से बहू बनकर आई थीं इस परिवार में—उस दिन से जल मर कर राख होते-होते वर्तमान में आ पहुँची हैं इस गरीबी तक। यह है उनका भाग्य !

किन्तु पथ कहाँ है—पथ कहाँ है, बताओ न ?...साँस बन्द कर कल्याणी सुनने के लिए व्यग्र बनी रही।

नरेन ने पूछा—क्या 'एम्पलायमेंट एक्सचेंज से कोई खबर आई है,अवनी ?'

'सब जुआचोरी है, धोखा है।' उत्तर में अवनी ने ये गालियाँ सुना दीं।

'और तुम्हारे उस जातीय बैंक की क्या खबर है ? उन्होंने तो तुम्हें आशा दी थी।'

'अब पूर्णरूप से लाल बत्ती दिखा दी है।'

इसके बाद सभी मौन ! कुछ क्षण तक सन्नाटा छाया रहा।

किन्तु आगे बताओ-कुछ तो बताओ ? फिसलते जीवन—अनिश्चित दिन—और दुरन्त क्षुधा के सामने पथ कहाँ है, बताओ !... कोई एक नयी बात सुनने के लिए कल्याणी जैसे अपनी सम्पूर्ण चेतना को बटोर उत्कण्ठित हो उठी।

नरेन बोला—'एक बात मन में आ रही है काकी ! किन्तु आपसे कहने की हिम्मत नहीं पा रहा हूँ।'

'कहो नरेन—सब साफ-साफ कहो।' आर्तनाद के समान सुन पड़ती है महामायाकी आवाज़--'बच्चे-बच्चियों को लेकर कहाँ जाऊँ ? क्या करूँ!'

नरेन तनिक हिचकिचा कर बोला—'मेरे आफिस का टाइपिस्ट

बीमार है। सुनता हूँ दो-एक महीने की छुट्टी लेगा। उसकी जगह पर काम करने के लिए अभी आदमी की जरूरत पड़ेगी। मेरी राय है कि—कल्याणी एक दर्खास्त दे दे। तुम्हारी क्या राय है अवनी?'

'जरूर-जरूर!' अचानक एक पथ पाकर अवनी उत्साहित हो उठा। बोला—'कल्याणी को यदि नौकरी अभी मिल जाय तो मैं तनिक दम ले पाऊँ। इसके बाद सब मैनेज कर लूँगा।'

नरेन बोला—'भीतर से जिसको पकड़ना है, जिससे कहना है, वह मैं जी-जान से करूँगा। कल्याणी को यह काम मिलने में अधिक असुविधा होगी ऐसा जान नहीं पड़ता। टाइप की उसकी स्पीड तो अच्छी ही है—इसके अतिरिक्त वह स्टेनोग्राफी भी जानती है, संभव है, उसकी नौकरी पक्की ही हो जाय।'

इस बात से अचानक जैसे कल्याणी की छाती धड़क उठी। केवल छाती ही नहीं जैसे उसका सर्वाङ्ग काँप रहा है। महामाया का उत्तर सुनने के लिए कान खड़े कर दिये।

महामाया बोली—'अन्त में मेरे भाग्य में यह भी लिखा था!'

'यह सब व्यर्थ की बातें हैं जाने दो।' अवनी बोला—'हमारे तुम्हारे भाग्य में तो केवल शनि-ग्रह है! जितना सब...।'

'अरे, तुम्हारे लिए एक नौकरी होने से क्या मैं इस तरह कहती। अन्त में अब बेटी....!'

'लड़कियों के लिए तो नौकरी की तनिक सुविधा है भी, हमारे भाग्य में तो सिर्फ खाक छानना है।' अवनी बोला—'मैंने आशा छोड़ ही दी है। समझे नरेन, मैं सोचता हूँ, इस बार घर ही में कपड़ा धोने की एक मशीन बैठाऊँ!'

'दोहाई अवनी की! अच्छा हो, दूसरे के लिए ही खरीद कर

बल्कि तुम इसके बदले में नौकरी करने की ही कोशिश करो।'कह नरेन पुनः हःहाकर हँस उठा।

अवनी इस बार चिढ़ गया। बोला—'हँसी, ठट्ठा करते हो-करो! सभी चीजों का मैनेज कर पाऊँगा तब दिखा दूँगा। समझे। केवल इस बार एक कपड़ा धोने की मशीन लूँगा, और तब देख लूँगा उस जुआ चोर धोबी को।'

अवनी के प्रसंग को दबा कर नरेन बोला—'तब कल्याणी एक दर्खास्त दे दे काकी?'

'दे दो!' महामाया ने एक लम्बी साँस फेंक कर कहा—'सर्वनाशके किनारे खड़े होकर मैं और कुछ सोच नहीं पा रही हूँ नरेन!'

शान्ता के साथ जब महामाया बाहर के कमरे से भीतर वापस आ गई तब उनके मुँह की ओर देखकर कल्याण अवाक हो गई। महामाया के मुख पर जैसे एक भारी पराजय की चित्रकारी कर दी गई हो! घोर पंडित-वंश की बेटी की जैसे यह मूर्ति नहीं है—है उसकी टूटी-फूटी एक विकृति। कल्याणी डरी सी, सहमी-सी माँ के काले मुख की ओर एक टक ताकती रह गई।

इसी समय अवनीकी पुकार सुनाई पड़ी—'कल्याणी, ओ कल्याणी!'

कल्याणी माँ के काले मुख की ओर देखकर डरती-डरती पूछा—'जाऊँ माँ!'

'जाओ, वे कैसी दर्खास्त लिखने के लिए कहते हैं, जाओ देखो बेटी।'

यह कह महामाया मुँह के बल सो रही। उनकी हार हो गई है—हार हो गई है, उनकी निर्मम काल के सामने। हार हो गई है नरेन के सामने। हार हो गई है शान्ता और कल्याणी के कारण!

:७:

महामाया नाराज हो गयीं।

घोर पण्डित-वंश की असूर्यंपश्या लड़की है, वह घेरे में कल्याणी को बाँध कर रख न सकीं।

दर्खास्त देने के प्रायः सात दिन बाद नरेन जिस दिन कल्याणी को नियुक्ति की खबर हँसते-हँसते दे गया, उस दिन महामाया को लगा जैसे नरेन उसके दोनों गालों पर दो थप्पड़ जड़ गया है। कल्याणी के रक्तिम अपूर्व सुन्दर मुख की ओर देख उसका हृदय काँप उठा। नरेन को देख कल्याणी के मुख पर मुस्कान बिखर गई—लज्जा से—खुशी से! किन्तु वह मुस्कान है या सर्वनाश! वह उसका आनन्द है या गृहभंग मानों किसी दुरवन्त दुःख का सूत्रपात है।'

नरेन बोल गया, 'नाम मात्र की एक इण्टरव्यू देनी होगी! मैंने सब इन्तजाम कर लिया है। आफिस को टाईपिस्ट की बेहद जरूरत है। परसों से ही काम शुरू कर देना होगा।'

महामाया का मुख सूख गया। सोचते-सोचते वह आत्महारा हो गईं। माला फेरने की भी सुधि न रही उन्हें। अन्धकार में बैठी रह गयीं—एक प्रस्तर मूर्ति के समान।

शान्ता हँस कर बोली—'माँ चावल का क्या होगा ?'

महामाया की जैसे चेतना लौट आई। हताश होकर उन्होंने शान्ता को देखा। धीरे-धीरे बोलीं—'राशन लेकर तुम्हारा भैया अब तक लौटा नहीं ?'

'वह कहीं न कहीं से रुपया उधार लेंगे, मिलेगा—तब तो राशन लायेंगे।' शान्ता बोली—'इतनी देर हो गई, लगता है रुपये का इन्तजाम नहीं हुआ।'

इधर रात घनीभूत होती जा रही है।

नहीं है, नहीं है, कुछ भी नहीं है अब इस दरिद्र परिवार के पास। है केवल अनशन, भूख, लड़के की बेकारी और असहायता !

महामाया ने एक लम्बी सांस फेंकी। हताश स्वर में बोलीं—'मैं क्या करूँ बेटी, जरा और इन्तजार करो।' और अपने आप अपना सिर पीटने लगीं—'हे भगवान...हे शंकर !...'

महामाया के हाथ की माला तेज गति से नाचने लगी।

...अन्त में कल्याणी की नौकरी ठीक हो गई।

नौकरी पर जाने के एक दिन पहले महामाया ने सुरक्षित रखे अपने बक्स को बाहर निकाला। उसमें रखी वस्तुओं को उलट-पलट उन्होंने उसमें से उस देशी कागज को यत्नपूर्वक निकाला जिस पर महावर मंडित पैर की छाप ली गई थी। महामाया के अँधेरे घर की यही रोशनी थी—डूबते का एकमात्र सहारा—एक अति-साधारण तिनका ! छाप को निकाल हाथ में ले उन्होंने एकान्त में कल्याणी को बुलाया। जब वह एकांत कमरे में आ गई तब उन्होंने कमरे का दरवाजा भीतर से बन्द कर लिया।

कल्याणी अवाक होकर बोली—'यह क्या माँ !'

'आओ, बैठो।'

महामाया ने कागज को पहले अपने माथे से छुआया और इसके बाद धीरे-धीरे कल्याणी की आँखों के सामने रखा।

कल्याणी कौतूहल के साथ कागज के ऊपर झुक पड़ी। बहुत दिनों की सुनी बात आँखों के सामने चमक उठी। आवेग से बोल उठी—'ओ माँ ! कितने सुन्दर हैं ये दोनों पैर !!'

'हाँ, सुना है, केवल चौदह वर्ष की लड़की थी।'

बाप के मुख से कल्याणी सारी बातें सुन चुकी है। इस छाप के पीछे जो एक नृशंस कहानी छिपी है—वह जैसे आँखों के सामने प्रत्यक्ष हो उठी। कल्याणी के होठों से एक अस्फुट शब्द निकल पड़ा—'ओह !'

कल्याणी की आँखों और मुख के भाव को देखकर महामाया विचलित हो उठीं। फिर भी अपने आपको संयत कर धीरे-धीरे बोलीं—'सती-धर्म क्या सहज है बेटी ! केवल कोई पुण्यवती ही ऐसा कर सकती है।'

कल्याणी का आवेग भी अब विचलित और उद्वेलित हो उठा। झट से बोल बैठी—'सुनती हूँ कि अन्त में वे मरी नहीं।'

'झूठी बात है—दुश्मनों की मन-गढ़न्त बात है यह।'

कल्याणी चुप रह गई।

महामाया बोलीं—'मेरी पुण्यात्मा सत्यवादिनी सास मुझसे झूठी बात नहीं कह गई हैं। उनकी सास भी उनसे मनगढ़न्त बात नहीं कह गई हैं। तुम लोग लिखो-पढ़ो, नौकरी करो अथवा जितनी भी बड़ी क्यों न हो जाओ—इन दोनों पैरों से बड़ी और कोई चीज लड़कियों के जीवन में नहीं है बेटी ! यह याद रखो।'

मां के म्लान मुख की ओर कल्याणी आँखें फाड़-फाड़ कर ताकती रह गई।

कल्याणी के हाथ पर कागज रख कर महामाया बोलीं—'मेरे पास मणिमाणिक नहीं है कल्याणी—यही मेरा परम धन था। तुम्हें दे रही हूँ—जीवन भर इसके सम्मान की रक्षा करो। महावर-मंडित ये युगल चरण ही तुमको सच्चा पथ दिखलायेंगे।'

इतनी बातें कहने के बाद भी महामाया की क्लांति न मिटी। कल्याणी के हतप्रभ मुख को देख उन्हें लगा जैसे अभी सब कुछ कहा नहीं जा सका। बाप के आदर-प्यार की गोद में बड़ी हुई यह लड़की कभी सोचती ही नहीं कि वह विधवा है। न वेषभूषा से विधवा, न मन में वैधव्य के प्रति कोई निष्ठा! शिवशंकर ने उसके हृदय को ऐसी वस्तु से भर दिया है जिसमें पातिव्रत की चिन्ता अथवा निष्ठा का लवलेश भी नहीं! मृत स्वामी के प्रति विधवा की निष्ठा, व्रत-ध्यान क्या है—यह सिख-लाने का अवसर ही शिवशंकर ने महामाया को कभी नहीं दिया। वह जैसे इस घर की एक कुमारी कन्या है—ठीक शान्ता की तरह!

इस बार इसी की याद कल्याणी को दिलाकर महामाया बोलीं—'विधवा के जीवन में इन युगल चरणों से बढ़कर दूसरा कोई आश्रय नहीं है कल्याणी! इस युग की लड़कियों के भाग्य में सती होने का सौभाग्य नहीं है, यह ठीक है। इसीलिये मेरी विधवा सास कहतीं थीं—'विधवा को जीवित रहकर ही सारा जीवन सतीव्रत का पालन करना पड़ता है।'

शिवशंकर इसको कहते—तिल-तिलकर घुल-घुलकर मरना।... कल्याणी को यह बात याद हो आई। किन्तु आश्चर्य! उसके हृदय में तो कोई भी ज्वाला-जलन नहीं! पन्द्रह वर्ष की उम्र में कब न जाने क्या एक घटना घटी थी—आज पच्चीस वर्ष की उम्र में उसके लिए उसके हृदय में दुःख, वेदना का लवलेश भी नहीं। क्या उसका जीवन है, क्या है उसका भविष्य, कहाँ है उसकी वेदना?—घर के कोने में बैठकर उसने इस पर कभी सोचा तक नहीं। स्कूल-कालेज के माध्यम से, बाहर की

और भी पाँच परिधियों के माध्यम से आलोकोज्ज्वल स्वप्न के एक जगत में स्वच्छंद विचरने का सुअवसर प्रदान कर गये शिवशंकर कल्याणी को। संभव है, वास्तविकता के कठोर आघातों से वह स्वप्न भरी जिन्दगी करुण हो उठी हो, किन्तु आत्मचेतना से प्रकाशित उसका हृदय आज और भी बाहर निकल गया है—कर्म मुखर संसार में। दुःख-वेदना तो है ही नहीं, अपितु वह एक दुर्जय आनंद से भरपूर हो उठा।

अतः महामाया जब बोलीं—'विधवा होकर तुम कितनी ज्वाला, कितना दुःख सहती हो बेटी!' तब उनकी बातें पूरी होने के पहले ही कल्याणी माँ के हृदय का भाव समझे बूझे बिना ही बोल उठी—'मुझे कोई दुख नहीं है माँ। मेरी चिन्ता तुम मत करो। देखो न, तुम्हारे एक लड़के ही समान तुम्हारे दुःख को मैं दूर करूँगी।'

अब महामाया क्या करें, क्या बोलें—सोच न सकी। हाथ की माला केवल द्रुतगति से नाचने लगी।

दूसरे दिन नरेन कल्याणी को अपने साथ आफिस ले गया। वे मकान से हँसते-हँसते निकल पड़े।

न जाने किस दुर्जय आलोकोच्छ्वास से उद्भाषित कल्याणी के मुख की ओर अपनी आँखें उठा महामाया देख भी न सकी। उनके हृदय ने सोचा—यह लड़की उनके घर के कोने की वह शांत और भीरु लड़की नहीं है—यह कोई और है।

महामाया ने अपने कमरे का दरवाजा बन्द कर लिया। भगवान् की मूर्ति के सामने खड़ी हो अपना माथा ठोकने लगी। एक और लड़की की कुटिल आँखें उसकी ओर जा अटकी—वह है शांता। उसका सब कुछ ही नीरव है—गोपन! केवल अवनी ने ही शोर-गुल मचाकर अपनी शुभेच्छा प्रकट की। वह बोला—'तुम्हे पुनः वर देता हूँ—नौकरी में तुम्हारी उन्नति हो—जय हो! मेरे लिए केवल एक

कपड़ा धोने की मशीन खरीद देना अपनी सुविधा के अनुसार। तब मैं देख लूँगा जुआचोर उस धोबी को'—

उस दिन जब आफिस से कल्याणी लौटी—महामाया ने उसके मुख को गौर से देखा। कहाँ हैं उसके मुख पर आफिस की खटनी की क्लांति, कहाँ है तनिक भी परिश्रान्ति! उल्टे लगता है जैसे सम्पूर्ण दिन के आलोकसे अपनी आँखों और मुखको परिपूर्ण कर घर लौटी है। वह आलोक असूर्यम्पश्या महामाया के लिये जैसे एक आतंक है!

कल्याणी को देख केवल अवनी ही फिर बोला—'खुशी से तुम्हारा चेहरा जैसे खिल उठा है कल्याणी! सोचा था, सारा दिन आफिस में खट खुट कर घर लौटेगी मेरी बहन सूखा-सा मुख लेकर—और कहा यह खिला हुआ मुख!'

'दुत!' कल्याणी सलज्ज हँस कर बोली,' मेरी अंगुलियों के पोर-पोर जैसे टनटन कर रहे हैं—कितना टाइप किया है आज! ओफ्!! प्रथम दिन ही मालूम होता है उन्होंने परीक्षा ले ली।'

'हार तो नहीं गयी!'

'वाह, हारूँगी क्यों?'

सचमुच कल्याणी विजयिनी है—विजयिनी की दीप्ति है उसके मुख पर।

अवनी बोला, 'अपने आफिस की कुछ बातें बताओ कल्याणी! सुन कर अपने कानों को सार्थक तो करे बेकार अवनी।'

अवनी ने अकेले ही घर की पूर्ण नीरवता को चिल्ला-चिल्ला कर भंग कर दिया। वहाँ न तो महामाया फटकीं और न शान्ता ही, अवनी के साथ साथ बिलू और मिलू भी शोर-गुल मचा कर तरह-तरह की फर्माइश करने लगे।

'मेरे लिये नीकर खरीद दोगी दीदी!'

'मेरे लिये एक बूशर्ट !'

'और मेरे लिए मलमल का एक कुर्ता ।'

'हाँ, हाँ, खरीद दूँगी, वेतन तो पहले मिलने दो ।' कल्याणी हँस कर बोली—'सब खरीद दूँगी ।'

बिलू बोला, 'मिलू की तो दो चीजें हो गयीं, दीदी ।'

'अच्छा तेरे लिए भी दो चीजें ला दूँगी ।' कह बिलू को कल्याणी ने अपनी गोद में उठा लिया ।

अवनी ने हँस कर पूछा, 'तुम्हारी तनखाह कितनी है, कल्याणी ?'

अवनी की ओर देख कर हठात् तनिक करुण भाव से कल्याणी हँस पड़ी । पूछा, 'क्यों ? सब खरीद न सकूँगी, इसीलिये क्या ?'

'ना रे, यों ही पूछ रहा था ।' अवनी ने अर्थपूर्ण भाव से मनकी बातें दबा दीं ।

बिलू को ये सारी बातें जैसे गड़बड़ घोटाला की तरह लगी । सन्देह पूछा उसने, 'खरीद दोगी न दीदी ?'

'हाँ, हाँ, खरीद दूँगी—खरीद दूँगी ।'

स्नेह, साध और प्रीति की अजस्र धाराओं में आज वह अपने आप को डुबा देना चाहता है । आज वह परिपूर्ण है—जैसे आज किसी अदम-नीय उत्साह का प्रकाश उसके हृदय में भर उठा हो । जीवन की समस्त संकीर्णताओं को जैसे आज वह अजस्र धाराओं में परिप्लावित कर देगी ।

उस दिन कल्याणी काफी रात तक सो न सकी । विभिन्न प्रकार की बातों में अवनी को भी उलझाये और जगाये रखा । बातें सब बीते छात्र-जीवन की आशाओं और आकांक्षाओं की मधुर स्वपनों की थीं, जबकि उनके तरुण जीवन को आलोक का आमंत्रण मिला था ।

कल्याणी बोली, 'उस दिन की बात याद है भैया जिस दिन बी० ए० में प्रवेश किया था....तुमने कहा था—'

क्या कहा था अवनी ने, उसे कुछ भी याद नहीं। आँखें बंद किये ही केवल बोला, 'हूँ !'

'दुत् ! तुम तो सो रहे हो भैया।'

अवनी जम्हाई लेकर बोला, 'तुम्हें आज नौकरी मिली है इसलिये आँखों में नींद नहीं। किन्तु बेकार अवनी मुखर्जी को यदि नींद आती है, अथवा उसे कुछ भी याद नहीं तो...'

तो उसका अपराध क्या !

कल्याणी मौन हो गई ! निःशब्द भाव से एक लम्बी साँस फेंकी उसने। बदल गई है—जैसे आज अनेक चीजें बदल गयी हैं। बदल गया है अवनी, खो गई है उसके सपनों की कल्पनाएँ। बदल गई है कल्याणी के स्वप्नों की वह परिवेश-परिधि भी, शिवशंकर नहीं हैं—जैसे सुख और आनन्द की निर्भरता आज नहीं है। फिर भी वह आज अजस्र धाराओं से उच्छ्वसित है ! आनन्द और वेदना मिश्रित भाराक्रान्त हृदय के साथ आज वह बहुत देर तक जागती रह गयी; और जगे हृदय के उद्वेग से वह जैसे छटपटा उठी।

: ८ :

जो हो संसार का अचल चक्का चल पड़ा है। इससे कुछ शान्ति महामाया को मिलती है किन्तु सुख नहीं मिलता। अत्यन्त भयार्त, सकरुण युगल नेत्रों से उन्हें किसी-किसी दिन नरेन और कल्याणी को आफिस से एक ही साथ आते देखना पड़ता है। और खुशी से जैसे कल्याणी के पैर जमीन पर पड़ते ही नहीं। जैसे उसके आनन्द की सीमा असीम हो उठी है। चूल्हे में जाय विधवा की वेष-भूषा, यह तो उसके बाप ही समाप्त कर गये हैं। उल्टे उसकी पोशाक में एक आकर्षक शोभनीयता आ गई है। यह आफिस की पोशाक जो है! इस पोशाक के बारे में महामाया ने एक दिन बात भी उठायी थी। कल्याणी ने हँस कर कह दिया था—'क्या करूँ माँ! आफिस जो चाहता है।'

महामाया ने कहा था—किन्तु मुहल्ले के बड़े-बूढ़े जो हँसते हैं।'

नरेन ने हँस कर कहा था—'इसके साथ और भी कई लड़कियाँ काम करती हैं, काकी! उनकी पोशाक देखतीं तो कहतीं! फिरंगी लड़कियों की बात तो छोड़ ही दीजिये!

महामाया चुप हो गयीं। किसी भी दिन फिर कुछ न कहा। केवल सांस खींच कर मन ही मन जैसे प्रतीक्षा कर रही है—नरेन के साथ कुछ हो जाने के डर से रह-रह कर वे काँप उठती हैं, किन्तु कहाँ, कैसे क्या होगा—इसका कुछ ठीक नहीं। महामाया को कोई खबर ही नहीं मिलती।

उस दिन अचानक डाकिये की उपस्थिति से महामाया चौंक उठीं चिट्ठी अवनी के नाम आई है--कौन जाने नौकरी की चिट्ठी है कि नहीं। महामाया ने बाहर वाले कमरे में झाँक कर देखा—लिफाफे को खोल अवनी चिट्ठी पढ़ रहा है दत्तचित्त होकर।

महामाया ने पूछा--'क्यों रे, नौकरी-चाकरी की कोई खबर आई?'

अवनी जल्दी-जल्दी चिट्ठी मोड़ कर जेब में रखते हुए केवल बोला--'हूँ?'

इसके बाद जल्दी-जल्दी कुर्त्ता पहन अवनी निकल पड़ा। महा-माया अपने कमरे में गईं और इष्टदेव के सामने हाथ, सिर झुका फिर नमस्कार किया—'हे ईश्वर! अवनी के लिये, एक नौकरी तो जुटा दो। मुझे शांति मिले, कल्याणी का आफिस जाना बन्द करा दूँ।'

किन्तु किसी आफिस के दरवाजे के सामने नहीं, अवनी अस्त-व्यस्त-सा एक दूसरी गली के एक कोने वाले मकान के दरवाजे पर आकर खड़ा हो गया। जंजीर खटखटा कर किसी को बुलाने के पहले ही दरवाजा खोल कर सुधा खड़ी हो गई।

अवनी घर में जाते-जाते अपने स्वाभाविक उत्तेजित स्वर में बोल उठा—'क्या बात है सुधा! अचानक यह तुम्हारी चिट्ठी क्यों...?'

सुधा बोली नहीं, अपनी एक अंगुली से होंठ को दबा कर अवनी को चुप रहने का इशारा किया। अवनी जैसे और भी घबड़ा उठा। बोला—'बात क्या है ?'

'कहती हूँ, बैठो न।' भीतर की तरफ के दरवाजे को बन्द कर सुधा बोली—'सब के सामने सभी बातें नहीं कही जातीं। दोपहर में मामी सोती हैं—इसीलिये आने को कहा है।'

अवनी के दम में दम आया। बोला—'मैं तो घबड़ा गया था, जैसे ही तुम्हारी चिट्ठी...'

सुधा बोली—'किन्तु और मैं लिखती ही क्या! कैसे तुम्हें बताऊँ—किस तरह मेरे दिन कटते हैं। मामा मुझे लेकर जुआ खेलने उतर पड़े हैं।'

'जुआ! क्या मतलब ?'

'हाँ, जुआ ही तो!' सुधा बोली—'अब तक मैं उनके लिए आफत बनी हुई थी। मैं तो उनकी छाती पर एक पत्थर-सा बन गयी थी। रात दिन यही एक बात सुनती आ रही थी—तीन कुलों में जिसका कोई नहीं है।'

'यह सब तो पुरानी बातें हैं—बोलते ही हैं।' अवनी अधीर होकर बोला।

'हाँ, यह सब तो सहन हो गया था। किन्तु अचानक मेरा आदर बढ़ गया।'

'वाह! तब तो अच्छी बात है।' अवनी ने सहज भाव से कह दिया।

'पहले तो समझ ही न सकी। बाद में समझा—एक आदमी के साथ मेरे विवाह की चेष्टा कर रहे हैं, मामा!'

इस बार अवनी की भौंहें तन गयीं।

'सुनती हूँ, बहुत बड़ा आदमी है।' सुधा बोली—'उम्र भी अधिक

नहीं है, बत्तीस वर्ष का होगा। खुद ही वर और अभिभावक—दोनों है। मुझसे विवाह करने के लिये बड़ा लालायित है।'

अवनी अब तक गंभीर हो उठा। उसका निचला होंठ जैसे लटक गया। पूछा----'तुम्हारी क्या राय है ?'

'मेरी राय ? मामा-मामी तो कहते हैं—यह तुम्हारा सौभाग्य है ?'

अब अवनी क्या कहे—समझ न सका। चुप रह गया।

सुधा उसी तरह शांत स्वर में बोली—'किन्तु अपने महत सौभाग्य की बात कल रात छिप कर सुन चुकी हूँ—जिस महापुरुष के साथ विवाह ठीक हुआ है, उनको टी०बी० है।'

'क्या कह रही हो ?' प्रतिवाद का एक सहज अवसर पा कर अवनी चिल्ला कर बोला।

'धीरे बोलो, मामी जाग जायेगी।' सुधा की आँखों और मुख पर आतंक छा गया।

'बात क्या है...मैं तो कुछ भी नहीं समझ पा रहा हूँ सुधा! इस तरह लुका-छिपा कर बातें कर रही हो जैसे उन्होंने तुम्हारे ऊपर पहरा बैठा दिया हो।' अवनी बोला—सारी बात साफ-साफ बताओ सुधा !'

'पहरा तो बैठाया ही है। बैठाया नहीं होता तो मेरी पहली चिट्ठी तुम्हें और भी पहले मिली होती।' सुधा बोली---'वह चिट्ठी उन्होंने दाई के हाथ से छीन कर फाड़ दी है।'

अवनी असंयत हो कर बोला--'किन्तु टी० बी० की बात तुम्हारे मामा को मालूम है ?'

'मालूम नहीं है तो और क्या। जानबूझ कर ही उस के साथ मेरे भाग्य को बाँधने जा रहे हैं।'

'यह तुमने कैसे समझा ?'

'वे महाशय और कितने दिन जियेंगे ! विधवा होकर उनकी सारी

सम्पति के साथ पुनः तो मुझे मामा के ही संसार में लौटना पड़ेगा। मेरे तीन कुलों में मेरा दूसरा अभिभावक है ही कौन !'

'यह सब क्या कह रही हो तुम !'

'मामा की बात कह रही हूँ।'

'और तुम्हारी मामी ?'

'औरत का हृदय !···एक औरत के जीवन की पारंणति की चिन्ता कर पहले तो वह सिहर उठी थी और प्रतिवाद भी किया था। किन्तु बाद में मामा ने अपने संसार का लेखा-जोखा उसको अच्छी तरह समझा दिया।'

'यह असंभव है, यह एक भीषण षड्यंत्र है।' अवनी पुनः फट पड़ा।

सुधा सहम कर बोली—'धीरे बोलो, धीरे! तुम्हारे हाथ जोड़ती हूँ। अब बताओ मैं क्या करूँ।'

अवनी सीधे-सादे शब्दों में बोला—'बाधा डालोगी, प्रतिवाद करोगी ?'

'उनकी ही शरण में रह कर उनका ही प्रतिवाद कर पाऊँगी! कितने दिन करूँगी ?' सुधा मौन युगल आँखें उठा कर अवनी को एकटक देखती रह गयी।

उन आँखों में जो विनय है, निर्भरता की जो प्रत्याशा है—उसने क्षणभर में ही अवनी को जैसे उद्वेलित कर दिया। किन्तु उससे भी अधिक हताश दृष्टि से उसने सुधा की ओर देखा। धीरे-धीरे किसी तरह अपने को संयत कर वह निराशा भरे स्वर में बोला—

'मेरा वह व्यवसाय फेल कर गया है, सुधा! अब जैसे भी हो एक नौकरी ठीक कर लूँ अपने लिये, तबतक किसी तरह रोको।'

यह पुरुष का चिरन्तन आश्वासन है— सुदृढ़ और आत्म-निर्भर। किन्तु फिर भी यथेष्ठ सुदृढ़ नहीं। गले में शायद उतना जोर नहीं था,

आँखों में उतनी ज्योति न थी जिसके ऊपर लड़कियों ने चिरंतन काल से ही स्वप्नों का संसार बसाया है। किन्तु बेकार अवनी हलचल भरी इस महानगरी में काम के लिए सिर पटक-पटक कर निराश हो चुका है।

इसी निराशा का स्वर शायद उसकी बातों में था। इसीलिये सुधा बोली—'किन्तु तुम्हें काम मिलेगा कब ? अगर कोई काम नहीं मिला तो.......!'

नारियों के हृदय के जिस प्रत्याशापूर्ण स्वर ने तथा आँखों की जिस आभा ने पुरुष-हृदय के शोणित को सदा ही चंचल कर दिया है—ठीक उसी की तरह हैं सुधा की बातें, उसी की तरह है उसकी असहाय दृष्टि। अवनी विचलित कंठ-स्वर में बोला—'जैसे हो, पहले एक काम का इन्तजाम तो अपने लिये कर लूँ, ठहरो। फिर तो सब मैनेज कर लूँगा। कमसे कम एक छोटा मोटा भी काम पाये बिना इनके चंगुल से छुड़ा कर तुम्हें ले जा कर रखूँगा कहाँ ?

सुधा के हृदय पर जैसे आघात लगा। बोली—'तुम्हारा रुपया ही क्या सब कुछ है ?'

कुछ क्षणों तक अवनी स्तब्ध मौन आँखों से सुधा की ओर ताकता रह गया।

आँसू और प्रेम से सराबोर दो मानव-आत्माएँ इस दुर्मूल्य कठिन शहर के समस्त नियमों को अस्वीकार कर वहाँ मूर्त हो उठी थीं।

ना, अवनी उसको ठुकरा नहीं सकता। धीरे-धीरे अवनी बोला—'दुख के साथ संग्राम कर जीवित रह सकता हूँ, फिर भी डर लगता है सुधा—तुम्हें संकट में न डाल दूँ !'

'मैं डरती नहीं।' सुधा धीरे से बोली—'मैं समझ नहीं पा रही हूँ, क्या करूँ ! तुम्हारी हालत भी देख रही हूँ। किन्तु मैं क्या करूँ—कैसे तुम्हारी सहायता करूँ, तुम्ही बताओ ! तुम्हारी बहन की तरह योग्यता

मुझ में नहीं है। फिर भी तुम्हारे साथ उपवास कर सकती हूँ। वह भी मेरे लिए स्वर्ग ही होगा।'

अपनी बलिष्ठ मुट्ठियों में अवनी ने सुधा के दोनों हाथ कस कर दबा लिये। रुँधे गले से बोला—'अच्छा, कुछ दिन और धीरज धरो सुधा! तुम्हारी जितनी योग्यता है, उसमें किसी के घर में छोटे-छोटे बच्चे-बच्चियों को तो पढ़ा ही सकती हो!'

'हाँ, पढ़ा क्यों नहीं सकती। मेरे लिए इसी का इन्तजाम कर दो—यहाँ से भाग कर जान बचाऊँ। यही ठीक कर दो!'

आग्रह का एक ऐसा तूफान सुधा के गले से निकलने लगा जिसे देख अवनी कुछ क्षण तक मौन बना रहा। उस के मुँह से कोई बात ही न निकली। क्षण भर बाद धीरे-धीरे बोला—अच्छा, मैं सब ठीक कर लेता हूँ। कुछ और धीरज धरो!'

'फिर कब आओगे तुम?'

'सुधा!........'

इसी समय भीतर से सुधा की मामी ने पुकारा। सुधा ने अवनी को मौन विदाई दे बाहर के दरवाजे को धीरे से बन्द कर दिया।

गली से निकल चौड़े रास्ते पर आ कुछ क्षण तक अवनी निस्तब्ध खड़ा रहा। सुधा को आश्वासन तो दे आया। किन्तु कहाँ क्या करेगा। हर आफिस में ही तो चल रही है छँटनी। तीन-तीन नामी बैंक कारबार समेट कर बंद हो गये हैं। काम दिलाऊ दफ्तर (इम्पलायमेंट एक्सचेंज आफिस) के सामने काम चाहने वालों की लम्बी लाइन लगी रहती है। महा नगरी का विशाल कार्य क्षेत्र है डलहौजी स्क्वायर। वहाँ की गली-गली छान डाली है—फल कुछ भी नहीं। थक गया है चक्कर काटते-काटते डलहौजी की गलियों का, छोटे-बड़े रास्तों का!

बड़े रास्ते पर आकर वह रुक कर खड़ा हो गया। उसकी आँखों के ही सामने से एक लम्बा जुलूस निकल गया। सामने थोड़ी दूर पर ही

एक परदानशीन बहू एक कोने की हलकी-पतली छाया में अपने दोनों दुबले-पतले हाथों को पसारे घूँघट लटकाये खड़ी है। एक हाथ में शंख और लोहे की दो चूड़ियाँ। सामने पसारे आंचल पर आठ साल का एक बच्चा हाथ-पैर हिला रहा है आकाश की ओर! अवनी उदास आगे बढ़ गया। बस स्टाप के सामने छोटे-छोटे भिखारी-बच्चों की किलकिलाहट से मोड़ जैसे मुखरित हो उठा था। उन्हीं के पास में एक ज्योतिषी हस्तरेखा की एक पुस्तिका और एक छोटा-सा साइन बोर्ड बिछा कर हाथ में खली लिये बैठे हैं—बगुला भगत की तरह। उनके साइन-बोर्ड पर लिखा है—भाग्य की परीक्षा करें। अवनी लाल दिग्घी में घुस गया। लाल-लाल कंकड़ों से बिछे पथ के पास में पेड़ों की छाया और फूलों की क्यारियाँ। जाते-जाते उसकी नजर फूल की क्यारियों में जा पड़ी तो देखा कि एक आदमी पेट के बल उन में पड़ा हुआ है, नंगधिड़ंग। मर तो नहीं गया है बेचारा! अहा! अंग्रेज प्रभुओं की सजायी हुई फुलवारी और उस में हत्भाग्य की लाश। हाय रे राजधानी! उसके यौवन के स्वप्नों और कल्पनाओं का कलकत्ता।

थके पैरों को रोक कर वह कर्जन पार्क की मोड़ पर आ कर खड़ा हो गया था। निराश आंखों में बीते सपनों के समान एक निराश और उदास मुख जैसे उद्भाषित हो उठा था। इसी समय रेस कोर्स का टिप्स बेचने वाला एक हाकर दनदनाता उसकी देह पर आ गिरा।

'टिप्स''''टिप्स बाबू''''रेस कोर्स''''।

उसे लगा जैसे जुआ—सब जुआ है। सुधा के मामा जुआ खेल रहे हैं सुधा के भाग्य के साथ—वह भी जुआ खेल रहा है जैसे एक आदमी के जीवन के साथ अपने जीवन में, जुआ खेल रहा है उसके प्रेम—उसके यौवन के साथ! भविष्य अनिर्दिष्ट है, अर्थहीन और निष्ठुर!

पास में ही फुटपाथ से सटा एक इलेक्ट्रिक सुइच बक्स है—उसका

मटमैला रंग निराश क्रन्दन के समान सुधा के मुख की याद दिला देता है, उसकी चिट्ठी की बात की याद दिला देता है, याद दिला देता है उसकी करुण प्रार्थना को, उसके अनुनय आग्रह को !

सुइन्च बक्स के बगल से पैदल जाते-जाते रुक गया अवनी। उसकी आँखें कल्याणी पर जा अटकीं। ऐसे बेमौके स्थान पर वह क्यों खड़ी है ?

अवनी ने पूछा—'क्यों री कल्याणी यहाँ क्यों खड़ी हो ?'

हठात् रक्त के उच्छ्वास से कल्याणी का मुख भी लाल हो उठा। बोली—'नरेन भैया की प्रतीक्षा कर रही हूँ। कहा—खड़ी रहो, अभी आता हूँ, किन्तु देखो न कितनी देर हो गयी। ठहरो भैया, एक ही साथ चलेंगे।'

अवनी खड़ा हो गया। इस के बाद हठात् झट से बोल उठा—'हाँ रे, तुम्हारे आफिस में और काम खाली नहीं है ?'

'कहाँ काम है भैया !' कल्याणी बोली—'हमारा आफिस तो आज गरम है—छटनी की अफवाह सुनी जा रही है।'

अवनी ने एक लम्बी सांस खींची। पुनः कल्याणी के मुख की ओर देखा। कल्याणी के मुख पर रक्ताभा अब भी जैसे नाच-थिरक रही थी। आफिस से लौटती भीड़ के बीच कर्जन पार्क के एक एकान्त कोने में प्रतीक्षा-रत एक स्वतन्त्र सुखी चेहरा। उसके चारो तरफ मौलश्री के फूल पेड़ से गिर-गिर बिछते जा रहे हैं। मौलश्री फूल के झरने का यह समय है।

दिन भर की थकान लादे घर को ओर जा रहे चेहरों की ओर ताकता हुआ अवनी खड़ा रहा कल्याणी के पास। लाज से रक्तिम हो उठे चेहरे के साथ खड़ी पास की लड़की के हृदय में चाहे जैसी भी भावना क्यों न हो, लेकिन इस बीच उसका चेहरा जैसे एकबारगी ही रिक्त हो उठा है। सुधा का प्रेम—अवनी के संसार बसाने की पूँजी-मूलधन।

किन्तु वह संसार बसाने के पहले मुहुर्त में ही अवनी मुखर्जी नामक एक बेकार युवक की समस्त मेधा, सारी बुद्धि मानो निष्क्रिय हो उठी है—एकदम-एकबारगी। आधारहीन जीवन, उत्तापहीन, अभिशप्त कामना—यह कैसा पथहीन, स्वप्नहीन यौवन अवनी के सम्मुख है ?

:९:
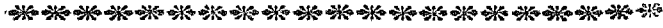
समय के विरुद्ध, और इस संसार के मनुष्यों के विरुद्ध संग्राम करते-करते महामाया ने अन्त में श्रांत-क्लांत हो कर सब कुछ स्वीकार कर लिया है। जिस तरह स्वीकार किया कल्याणी की नौकरी को, ठीक उसी तरह मान लिया है अवनी की बेछोर बेकारी को भी। फिर भी मन की कामनाएँ बीच-बीच में खोंचा मारती ही हैं। आदमी का हृदय जल जाता है, किन्तु हृदय की कामनाएँ और स्वप्नों का अन्त कहाँ है?

★

महामाया की आँखों से यह छिप न सका कि अवनी की आँखें दिन पर दिन गढ़े में समाती जा रही हैं। अकारण ही उसका खीझ उठना कम हो गया है और कम हो गया है उसका झुँझलाना चिल्लाना। वह न मालूम कैसा अन्यमनस्क-सा दीखने लगा है। वेश-भूषा से भी दिन पर दिन गरीबी और निराशा प्रकट होती जा रही है। शरीर की कमीज जहाँ-तहाँ फट

चुकी हैं, पैर के सैंडल की हालत भी वैसी ही है। इस शहर की हलचल-भरी दोपहरी में वेकार अवनी यहाँ-वहाँ घूम-घूम कर बिता देता है। आखिर में लौट आता है हरा-थका सा आफिस से लौटते हुए लोगों के ही समान।

उस दिन महामाया ने देखा, अवनी बड़ी जल्दी लौट आया है। कल्याणी अब तक भी लौटी नहीं है और न लौटा है उसके साथ नरेन ही। महामाया ने देखा अवनी के मुख और आँखों में घोर निराशा जैसे उस दिन अत्यन्त तीव्र हो उठी है। किसी तरह कमीज को निकाल वह सो गया —उसकी देह जैसे ऐंठ रही थी। दोनों हाथों से अपने माथे और आँखों को कस कर उसने पकड़ लिया। निष्ठुर दिन के सुतीक्ष्ण प्रहारों से जैसे वह अपने को छिपा लेना चाहता है।

'अवनी!' महामाया ने पुकारा।

आँखें खोले विना ही अवनी बोला—'क्या कहती हो?'

'क्या हुआ तुम्हें?' महामाया ने फिर पूछा—'तबीयत ठीक नहीं है क्या?'

"नहीं।" अवनी ने संक्षिप्त उत्तर दिया।

अवनी की कटी-कटी बातों से महामाया का कौतुहल किसी दिन भी नहीं मिटा है। आज भी नहीं मिटा। क्या उसकी नौकरी, क्या उसका शरीर—दोनों के ही प्रति महामाया का आग्रह एक समान है। किन्तु अवनी एक ही समान सोया रहा। महामाया अगत्या की भाँति अपने आप ही बोलती गई—'तुम्हारा शरीर और मन—दोनों ही खराब है, यह मैं अच्छी तरह समझ रही हूँ।' महामाया बोली—'मुझे भी अब अच्छा नहीं लगता है बेटा! मन-मिजाज ठीक नहीं रहता। सोचती हूँ कहाँ लड़के-लड़कियों के विवाह करूँगी, कहाँ बहू ला कर घर बसाऊँगी; जैसे लगता है यह सब मेरे भाग्य में बदा ही नहीं है।'

अवनी मौन रहा। जिन बातों से अवनी अपने को इस वक्त दूर

रखना चाहता है, ठीक उन्हीं की बातों को छेड़ कर महामाया ने सिर पर आसमान उठा लिया।

उन्होंने एक लम्बी फेहरिस्त उपस्थित कर दी—कहाँ किसके लड़के का विवाह हुआ, तिलक-दहेज में कौन कहाँ से कितने रुपये घर ले आया यही सब बातें। अन्त में अफसोस जाहिर कर बोलीं—'मैं भी सोचा करती हूँ, मुझे ऐसा क्यों नहीं होता। जो हो, कहीं एक नौकरी कर पाते तो घर में एक लक्ष्मी जैसी बहू आती। सच कहती हूँ—मेरा सब दुःख दूर हो जाता। किन्तु कहाँ मेरा ऐसा भाग्य।' निःश्वास फेंक कर महामाया रुक गई।

अवनी अब भी निरुत्तर पड़ रहा। किन्तु यह अन्तर की कामना और हृदय की साध, एक गृहिणी का स्वप्न है। बाहरी पृथ्वी पर अवनी के जीवन-संग्राम के क्षेत्र में क्या हुआ क्या नहीं इससे उनकी आशा-आकांक्षाओं का पथ अवरुद्ध नहीं होता।

अन्त में अपनी आशा-आकांक्षाओं की बातें छोड़ कर अदम्य कौतुहल के साथ महामाया ने पूछा—'उस दिन वह कैसी चिट्ठी आई थी—दोपहर में, उससे किसी नौकरी-चाकरी की कुछ सुविधा-दुविधा नहीं हुई?'

'नहीं।' कह कर अवनी फिर चुप हो गया।

महामाया झुँझलाहट से बोलीं—"कैसा तुम्हारा भाग्य है! लड़कियाँ तक नौकरी पा जाती हैं—किन्तु तुम्हारे लिये कुछ नहीं हुआ!"

अवनी के पौरुष को आघात लगा। फिर भी उस आघात के घूँट को पीकर मुख की विकृति को छिपाते हुए बोला—'नयी-नयी लड़कियों के लिए तनिक सुविधा जरूर हो रही है—और दो दिन धीरज धरो, मजा चखोगी।'

'क्या जानूँ बेटा!' महामाया बोली—'तुम्हारे लिए कुछ इन्तजाम हो जाय तो बच जाऊँ मैं।'

'क्या करूँ, तुम्हीं बताओ, नौकरी क्या मैंपैदा करूँगा ?' महामाया की शुभ कामना ने अवनी के हृदय में जैसे ज्वाला धधका दी।

महामाया पुनः सीधे-सादे स्वर में बोलीं—'लगता है, ठीक-ठीक आदमियों को तुम पकड़ नहीं पाते हो।'

अवनी के धीरज का बाँध टूट गया। वह झुंझलाकर उठ पड़ा, और बड़बड़ाते हुए कहने लगा—'घर में चैन से रहने नहीं देना है तो सीधे कहती क्यों नहीं—निकल जाऊँ। कहीं नौकरी तुम्हारे लिए मैं पैदा करूँगा क्या ?'

'पैदा करो, संसार चलाओ।' कल्याणी की नौकरी से महामाया के शरीर के किसी दुर्बल स्थान पर आघात लगा है। वह तीखे स्वर में बोल उठीं—'लड़की नौकरी कर खिला रही है—वंश की मान-मर्यादा तो गयी ही। किन्तु उससे भी तो पेट नहीं भरता। उल्टे गरम-गरम बोलते ही तुम लोगों को लाज नहीं लगती ?'

पुरुष-शासित समाज के एक पुरुष के हृदय में ऐसी बातें तेज की हुई छूरी के समान तो चुभेंगी ही। अवनी फटी कमीज पुनः पहन कर जाना ही चाहता था कि इसी समय दरवाजे के सामने आकर कल्याणी खड़ी हो गई। एक हाथ में वैनिटी बैग, दूसरे में कागज का एक बंडल। उसके बगल से अवनी ने बाहर निकलना चाहा, किन्तु कल्याणी दरवाजा रोक कर खड़ी हो गई।

अवनी बोला—'हटो, रास्ता छोड़ो।'

'रहने भी दो—घर में चलो!' कल्यानी ने हँस कर पूछा—'हुआ क्या ?'

'मैं बैठे-बैठे तुम्हारे हड्डी-तोड़ परिश्रम की कमाई फूँक रहा हूँ।'

'अच्छा माँ के साथ झगड़ा किया है न ?'

कल्याणी पुनः हँस कर बोली—'चलो, बैठो—एक खबर है। तुम जाओ माँ! चाय का पानी चढ़ा दो।'

खबर के लोभ में पड़ कर अवनी पुनः खाट पर जा बैठा। बोला—'कहो, क्या खबर है?'

'ठहरो-ठहरो, पहले सिर तो ठण्डा कर लो।' कल्याणी बोली—'माँ के साथ खामखा क्यों झगड़ा करते हो भैया? देखती थी—पिताजी भी ऐसे ही करते थे, किन्तु क्या लाभ है, कहो तो?'

'अरे तुम्हीं बताओ न, नौकरी क्या मैं पैदा करूँगा!'

'भला बाहरी दुनिया की खबर बेचारी माँ क्या समझेंगी, कहो न?' कल्याणी बोली—'सुन तो रही हूँ कि हमारे आफ़िस में छटनी का षड्यंत्र चल रहा है। माँ को क्या यह समझा सकते हो!'

'चूल्हे में जाय, तुम अपनी खबर बताओ।'

'मैं आ रही हूँ, बैठो।'

अवनी फिर लेट गया। हाँ उसके सिर में दर्द जरूर है। पुनः उसने कस कर सिर पकड़ लिया।

आफिस के कपड़े उतार कर दो प्याले चाय के साथ कल्याणी कुछ देर में पुनः वहाँ आ पहुँची। उसकी बगल में कागज का वह बंडल अब भी है। अवनी के सामने एक प्याला को रख कर उसके माथे के पास ही बैठ गई। पूछा—'सिर में दर्द है क्या भैया?'

'सिर में दर्द क्या होगा—लगता है वह है ही नहीं।'

अवनी बैठने की कोशिश कर रहा था, किन्तु कल्याणी ने उठने नहीं दिया। उसका सिर पकड़ कर पुनः सुला दिया। बोली—'सोये-सोये ही चाय पी लो। मैं सिर दबा देती हूँ।'

'अरे बाप रे बाप! आफिस में हाड़-तोड़ परिश्रम करके आई हो, मेरा सिर दबाओगी, ऐसा किया तो माँ आकर मेरा सिर नोच खायेंगी।'

कल्याणी हँस पड़ी। सिर के बालों को खींचते-खींचते बोलीं—'देखती हूँ, झगड़े की गर्मी अब तक भी दूर नहीं हुई है।'

अवनी चुप हो गया। कल्याणी उसके बालों में अँगुलियाँ घुमा-घुमा

कर उसका सिर सहलाने लगी, इससे अवनी को आराम मिला। वह चुप-चाप आँखें बन्द किये ही इस आराम का उपभोग करने लगा। क्षण भर बाद ही बोला—'बहुत आराम मिल रहा है कल्याणी!' दर्द में थोड़ी कमी हुई तो एक बार चाय की चुस्की लेकर फिर आँखें बन्द कर लीं।

'न जाने कहाँ-कहाँ दोपहर भर दौड़ते रहे हो, कुछ ठीक नहीं।' कल्याणी बोली—'तुम नौकरी-चाकरी की चिन्ता छोड़ दो भैया, और किसी व्यवसाय की ही बात तुम सोचो।'

व्यवसाय की बात से आज अवनी को भी हँसी आ गई।

कल्याणी बोली—'हँसते भी हो और! तुम ऐसे हो कि जरा-सी बात में तिनक जाते हो। नौकरी से तुम्हारा काम चलेगा नहीं।'

'अच्छा वह देखा जायगा।' अवनी बोला—'किन्तु तुमने कहा था एक खबर बताऊँगी—'

'यह लो।' इतनी देर बाद कल्याणी ने बगल में दबाये कागज के बंडल को अवनी के हाथ में थमा दिया।

खोलते-खोलते अवनी बोला—'क्या है रे यह?' बंडल खोलते ही वह चौंक उठा। बंडल से निकली एक कमीज और एक जोड़ा नया सैण्डल!

'यह क्या किया है कल्याणी!' अवनी बोला—'तुम क्या मुझे घर में रहने नहीं दोगी?'

कल्याणी हँस कर बोली—'इसी महीने से मेरा वेतन बीस रुपया बढ़ गया है भैया! और नौकरी भी स्थायी हो गई है।'

'यह तो ठीक है, किन्तु यह तुमने अच्छा नहीं किया। शांता के लिए कपड़े की जरूरत थी—बिलू-विलू के लिए किताब कापी—'

'सब होगा। तुम्हारे लिए कुछ नहीं है—और तुम्हें बाहर निकलना पड़ता है। चुप रहो।' कल्याणी बात काट कर बोली—'किस को पहले किस चीज को जरूरत है, यह देखने की आँख मेरे पास है।'

'मानता हूँ तुम समझदार हो।' अवनी बोला—'किन्तु यह सब नाप में ठीक है तो?'

'वाह! क्या मैं तुम्हारा नाप जानती ही नहीं हूँ?' कल्याणी कौतुहल के साथ बोली—'अभी हाल ही में तो तुम्हारे लिए एक कुर्त्ता बनवाया है। और पैर का नाप मुझसे तुम्हारा एक अंगुल बड़ा है।'

'फिर भी इतनी चीजें क्यों मेरे लिए खरीद लाई।'

कल्याणी लजा कर बोली—'अचानक वेतन बढ़ जाने के कारण तुम्हारे लिए कुछ खरीदने की इच्छा हो उठी भैया! और आगे अब कुछ मत बोलो, मेरा मन खराब हो जायगा।'

अवनी कल्याणी को अच्छी तरह समझता है। आफिस की दिन भर के श्रम से उसके थके क्लांत, करुण, किन्तु परितृप्त चेहरे की ओर देखकर अवनी बोला—'तुम्हारी नौकरी स्थायी हो गई है—तुम्हारी जय हो। बेकार अवनी मुखर्जी आज अपने दोनों हाथ उठा कर तुम्हें आशीर्वाद देता है।'

कल्याणी कौतुहल के साथ हँस पड़ी। बोली—'और एक काम बाकी है भैया! अपने आफिस के साथियों को एक दिन मुझे खिलाना होगा। कितने आदमी होते हैं—एक हिसाब करो।'

'लाओ लाओ लिस्ट बना दूँ। इसी झोंक में अच्छा-बुरा जैसा हो, हो जाय। लाओ कागज कलम।'

अवनी सरल स्वभाव का आदमी है। अत्यन्त सहज में ही उसके हृदय का क्षोभ न जाने कहाँ हवा हो जाता है। कागज-कलम लेकर उसी क्षण वह लिस्ट तैयार करने बैठ गया।

अवनी बोला—'एक नम्बर नाम लिखा नरेन चटर्जी, और बोलो।'

'जाओ भैया!' कल्याणी जैसे लजाकर बोली—'मैं तो अपने

सहेलियों के बारे में कह रह थी। उनको एक दिन खिलाने की बात है।'

'उन्हें भी खिलाओ—किन्तु अपने आफिस की यूनियन के महामान्य सेक्रेटरी जो हैं, उन्हें निमन्त्रण नहीं दोगी? चूल्हे में जाय तुम्हारा बन्धुत्व!'

'ओह! हल्ला न करो भैया?'

इसी समय खुद नरेन के ही गले की आवाज बाहर सुनाई पड़ी—'अवनी है?'

'हूँ—हूँ, निश्चय हूँ।' अवनी ने भीतर से पुकार कर कहा—तुम्हें तो निमन्त्रण देने ही जा रहा था। आओ-आओ। सामने होने से किसी का नाम छूट जाने का डर नहीं रहेगा।'

'ओह! भैया!' कल्याणी ने कृत्रिम क्रोध के स्वर में अवनी को धमकी दी।

झगड़े का वातावरण घर से एकबारगी विदा ले चुका है। भोज की तालिका में अच्छी-अच्छी चीजों के नाम लिखने में जितनी चिल-पों न मची, उससे अधिक चिल-पों—मचा दी अवनी ने। इसी बीच एक बार महामाया झाँक कर मुख दबा कर हँस गई हैं। माँस का नाम सुनते ही बिलू-मिलू कूदने लगे, शांता चाय देने आई तो वह भी भोज्य वस्तुओं की तालिका की आलोचना में उलझ गई।

नरेन बोला—'पकाने की जिम्मेदारी शांता को। उससे पूछ कर अपनी लिस्ट बनाओ अवनी!—क्योंकि जिस तरह तुम खाऊँ-खाऊँ कर रहे हो उससे गोलमाल न हो जाय। अच्छा हो, लिस्ट यदि शांता खुद तैयार करे।'

शान्ता की खुशी का ठिकाना नहीं। महामाया भी खुश हैं। अचा-

नक जैसे कुछ बढ़े हुए रुपये के भोज ने इस परिवार के दबे हुए आनन्द के बन्द दरवाजे को उन्मुक्त कर दिया।

अवनी बोला—'बाजार की जिम्मेदारी मैंने ली कल्याणी! बेकार हूँ तो क्या, एक पैसा भी तुम्हारा इधर-उधर नहीं करूँगा। निमंत्रण की जिम्मेदारी तुम्हारी और नरेन की।'

कल्याणी हँस कर बोली—'अच्छी बात है। लेती हूँ। कल ही छुट्टी है, किन्तु कल व्यवस्था की जा सकेगी?'

'क्यों नहीं की जा सकेगी।' अवनी बोला—'काफी दिनों के बाद अच्छा-बुरा कुछ खाने के लिए मैं एक दिन की भी देरी नहीं कर पा रहा हूँ। शुभस्य शीघ्रम्। आज संध्या और कल सुबह के अन्दर निमंत्रण का काम तुम दोनों आदमी समाप्त कर लो। मैं माँ दुर्गा का नाम लेते-लेते कल सुबह ही बाजार के लिए निकल पड़ूँगा। रुपये दे दो।'

कल्याणी की ओर देखकर नरेन हँस कर बोला—'तब कल ही ठीक रहा?'

'हाँ, कल ही ठीक रहा।' कल्याणी बोली—'किन्तु निमंत्रण समाप्त तो हो जायेगा?'

'हाँ, क्यों नहीं। चलो निकल पड़ें।' नरेन ने कल्याणी को जिज्ञासु नयनों से देखकर कहा।

'चलो।'

दोनों निकल पड़े निमन्त्रण देने के लिए।

× × ×

महामाया का मेघाच्छन्न मुख निर्मल हो उठा है—पता नहीं वेतन-वृद्धि की खबर से कि नहीं। केवल नीरव बरसनेवाले बादल का एक टुकड़ा शांता की आँखों और मुख पर नाचता रहा। एक और दिन की

ही भाँति आज भी वह चकित हो उठी है, बड़ी-बड़ी युगल आँखों से खिड़की की एक सुराख़ से वह देखने लगी—क्रमशः दूर-अति दूर अग्रसर होती जा रहीं दो मूर्तियाँ—एक नरेन और दूसरी कल्याणी। सट-सट के पैदल ही वे चले जा रहे हैं। बड़े रास्ते को पार कर गये—अब दिखाई नहीं पड़ते। एक लम्बी सांस फेंक शांता खिड़की के पास से खिसक गई।

बातें करते-करते वे दोनों बढ़े जा रहे थे। दिन भर के थके मांदे बड़े रास्ते के निरवच्छिन्न उदास जन-स्रोत को ठेलते हुए—-उद्भाषित, हृदय-मथित दो चेहरे! इस अपार भीड़ के अन्दर भी इन आह्लादित खिले चेहरों को सहज ही पहचाना जा सकता है।

पैदल चलते-चलते वे जहाँ पहुँच गये वहाँ और कुछ भले ही हो किन्तु ऐसा कोई न था जिसे निमंत्रण दिया जाता। शहर का निर्जन अंतिम छोर पार्क की मुलायम घास, सांध्य-कालीन आकाश-और उद्भासित स्निग्धता।

कल्याणी हँसकर बोली—-'दुर! बातें करते-करते यहाँ कहाँ चले आये?''

'ठीक ही तो।' नरेन बोला—-'किन्तु खैर, चलो,—-अब बेचारे पैर यहाँ तक खींच कर लाये ही हैं तो चल कर जरा बैठें।'

कल्याणी हँस कर बोली—-'किन्तु निमंत्रण का क्या होगा?' कह वह खुद पहले घास पर बैठ गई।

नरेन हँसते-हँसते बोला—-'बाहर निकले हैं तो निमंत्रण का काम भी होगा ही। किन्तु असल में भोजन के आयोजन के बारे में ही सोच-कर डर लगता है। क्योंकि तुम्हारे भैया स्वयं उसका मैनेज कर रहे हैं।'

'खाने के बारे में भैया गोलमाल नहीं करते।' कहकर कल्याणी भी हँसने लगी।

नरेन बोला—'एक काम मैं भूल गया हूँ। वह है तुम्हारी नौकरी स्थायी हो जाने और वेतन-वृद्धि के लिए तुम्हें अभिनंदन देने का। आफिस से निकल कर मौलश्री पेड़ के नीचे जाकर देखा—तुम आज वहां नहीं हो। काफी देर तक खड़ा रहा।'—

कल्याणी सलज्ज बोली—'बढ़े वेतन की खबर से जैसे सब गोल-माल हो गया। उसी क्षण मन में आया—किसी के लिए कुछ खरीद डालूँ। भैया के लिए कुछ खरीदने चली गयी।'

'अवनी भाग्यशाली है। किन्तु मैं हत्भागे की तरह पन्द्रह मिनट तक खड़ा रहा। डलहौजी स्क्वायर खाली हो गया। खैर, छोड़ो इस बात को—अब अभिनंदन करता हूँ—दिन-दिन हमारा आफिस तुम्हारी और भी कद्र करे। बड़े साहब की पर्सनल स्टेनो मिस एलेना को जो वेतन मिलता था, वह तुम्हें शीघ्र मिले।'

कल्याणी गद्गद् होकर बोली—'और जिसकी बदौलत यह हुआ है—उसको ?'

नरेन बोला—'वह एकबारगी बदकिस्मत है, उसकी बात छोड़ो। सामने लटक रही है छटनी। आफिस की यूनियन की नेतागिरी के चलते इस बार कहीं उसी की नौकरी न चली जाय।'

जो मधुर क्षण मधुर बातों के छंदों के साथ बीत रहे थे, अचानक जैसे उनका सुर ही बदल गया। कल्याणी का स्निग्ध मुख अनागत दुर्योग की छाया से जैसे सहम उठा। दबे स्वर में उसने पूछा—'ऐसी कोई घटना सचमुच ही घट सकती है क्या ?'

'असंभव कुछ भी नहीं है कल्याणी'

कल्याणी अचानकर सिर हिला कर बोल उठी—'हरगिज नहीं, कभी भी ऐसा नहीं होने दिया जा सकता।'

उसकी बचपने की बातें सुन कर नरेन हँस पड़ा। बोला—'होने न होने देनेवाली तुम कौन हो ?'

हृदय में वेदना और सहानुभूति चाहे जितनी भी हो कल्याणी अपनी बातों का तात्पर्य समझ कर जैसे झेंप कर चुप हो गई।

फिर भी धीरे-धीरे पुनः बोली—'किन्तु यह क्या—यह असंभव है।'

नरेन हँस कर बोला—'ठीक, यह असंभव होता ठीक ही—अगर नौकरी की मालकिन होतीं तुम। अपनी खुशी से यूनियन का काम करता रहता। स्टाफ को........फिर भी नौकरी छूटने का डर न होता। उस लाल मुख वाले खूसट बूढ़े को अंगूठा दिखा कर नाचता। अहा ! काश ऐसा हो पाता !''

कल्याणी और कुछ न बोली। नरेन अपनी चुटकीली बातों का तोहफा देकर भी कल्याणी के मौन को भंग न कर सका। अन्त में पूछा—'तुम्हें क्या हुआ कल्याणी ! अचानक चुप क्यों हो गई ?'

कल्याणी बोली—'कैसी मनहूस बातें उठा कर मन खराब कर दिया तुमने नरेन भैया ! मैं समझती हूँ, इस समय अपने निमंत्रण-टिमंत्रण की बात छोड़ देना चाहिए।'

कल्याणी को नरेन उसके बचपन से ही पहचानता है। फिर भी आज इस क्षण जैसे उसे नये सिरे से पहचाना। यह सहज-सरल इतने दिनों की परिचिता लड़की जैसे क्षण भर में ही उसके लिए अतीत का रहस्य बन गई। उसका अन्तर जैसे छटपटा उठा—उसके हाथ जैसे किसी दुष्प्राप्य को प्राप्त करने के लिए आकांक्षा और कामना के साथ व्यग्र हो उठे—दुर्दिन के दुख की संगिनी के रूप में। कल्याणी के एक हाथ को नरेन ने अपनी मुट्ठी में कस कर दबा लिया। इसके बाद धीरे-धीरे बोला—''विधाता ने सचमुच तुम्हें मेरी नौकरी की मालकिन क्यों नहीं बनाया कल्याणी ?''

कल्याणी बैठी रही पूर्ववत-मौन !

संध्या हो गई। घास का रंग अब इस शहर की अन्तिम छोर के अंधकार के साथ मिल गया है। केवल दूर-दूर से बिजली के लड्डुओं की किरण-रेखाएँ आ आ कर पार्क के कोने - कोने पर झिलमिल-झिलमिल कर उठती हैं।

नरेन बोला—'चलो, अब निमंत्रण के काम को शेष कर लो कल्याणी, उठो।'

———

: १० :
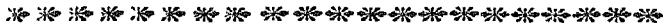
बात बिलकुल मामूली है फिर भी कल्याणी की स्थायी नौकरी और वेतन-वृद्धि में इस परिवार के सुख की जो साँस निहित है उसे अत्यंत दुर्भावनाओं से सम्मोहित महामाया से अधिक दूसरा कौन समझेगा ! सब कुछ समझती हैं महामाया, हठात् उन्हें अच्छा भी लगता है—यह दमघुट वातावरण; फिर भी मन ही मन सोचती हैं—ऐसी ही बात काश अवनी के बारे में हो पाती ! नौकरी कर पाता अवनी, इसके बाद विवाह करता। विवाह हो जाता शान्ता का भी। एक संभाव्य कल्पना, एक संभाव्य तस्वीर बार-बार महामाया के हृदय पर जैसे उभर उठती है। उसी क्षण कल्याणी के लिये भी उनका हृदय जैसे छटपट कर उठता है—ना यह नहीं, उनकी जन्मदुखिनी-स्वर्ण-किरण कन्या !

★

बाहर का कमरा कल्याणी के सहयोगियों के कंठ-स्वरों से मुखरित हो उठा है। आफिस के बारे में क्या-क्या

बातें हो रही हैं—उनमें बड़ा साहब, बोनस, छटनी·······यूनियन·······हड़ताल !·······महामाया कुछ भी समझ नहीं पातीं। उनके हृदय में जैसे काँटे चुभ जाते हैं। सब के गले की आवाज सुनाई पड़ती है—सुनाई नहीं पड़ती है केवल बेकार अवनी के गले की बात। वह सुबह से ही न जानें कहाँ भाग गया है—शायद लज्जा से। शांता के भोले चेहरे और नेत्रों में सरलता है—कल्याणी के बन्धु-बान्धवों से भरे घर की खुशी के बीच जैसे उसका मन खोया-खोया-सा है—निःसंग, निर्विकार ! रसोई-घर के कोने में उसका मुख जैसे झुलस गया है।

उस मुख को देखकर हठात् महामाया के मन में क्या आ गया, बोलीं—'शान्ता, नरेन को एक बार तनिक भीतर बुला लाओ तो बेटी !'

'मैं नहीं बुला सकूँगी माँ—अपनी बड़ी बेटी से कहो, बुला दे।'

शांता इस तरह झट से बोल बैठी कि महामाया सचकित अनेक क्षणों तक निर्निमेष उसकी ओर ताकती रह गईं। शांता की कर्कश बातों एवं बोलने के ढंग से महामाया ने क्या-कुछ समझ लिया। चुप रह गईं।

थोड़ी देर बाद ही फिर बोलीं—'तुम्हारा भैया न जाने सुबह से ही कहाँ डूब मरने गया है। नरेन बाजार-टाजार के कामसे कम तो थका नहीं है। इसीलिये कह रही थी—उसे बुलाकर तनिक चाय-पानी तो पिला सकती थी ?'

शान्ता चुप बैठी रही। इसी एक बहाने से बुलाकर चाय पिलाने की आड़ में उस सहृदयता उत्पन्न करने का तो एक सुयोग था—इस बारे में शांता को नीरव देख कर महामाया क्रोधित हो उठीं। सीधे बोल बैठीं—'आजकल की लड़कियों की यही शायद बुद्धि है बेटी !—तुम लोग चाहती हो—लड़के ही तुम्हारे पीछे-पीछे दुम हिलाते घूमा करें।'

महामाया के दबे अभिप्राय को इस तरह सीधे प्रकट होते देख शांता का चेहरा और आँखें लाल हो उठीं। किन्तु महामाया वहीं नहीं रुकीं।

पुनः बोलीं—'यही तनिक बुला कर आदर करना—तभी तो वह अपनों की तरह सोचेगा ?'

किन्तु उस आदमी का अंतरंग और प्रिय कौन है, यह महामाया जिस तरह जानती हैं उसी तरह शांता भी जानती है। प्रातःकाल से ही वह कल्याणी के मेहमानों की खातिरदारी में दौड़-धूप कर रहा है, बात-विचार, जो कुछ भी की है—सब कल्याणी के ही साथ की है। इसके ऊपर से मां की जबर्दस्ती की बातों से शांता की आँखें जैसे बरसने-बरसने को हो गईं। रसोईघर से वह दौड़ कर बाहर निकल भागी।

किन्तु भागते-भागते रुक कर खड़ी हो गई—सामने नरेन खड़ा था!

नरेन ने पूछा—'काकी, एक कप चाय होगी ?'

महामाया मुस्करा कर बोलीं—यह देखो, अभी-अभी शांता भी तुम्हारे लिये चाय के बारे में कह रही थी। प्रातःकाल से ही दौड़-धूप कर रहे हो, आओ बेटा, बैठो।

महामाया ने पुकारा—'शांता !'

किन्तु शांता खड़ी की खड़ी ही रही। लाज से मुख लाल नहीं—अपितु शांत-शून्य-सा मुख। फिर भी खींच-तान कर महामाया रसोईघर में एक एकांत परिवेश की उत्पत्ति में रत हो गईं।

किन्तु शांता का शायद भाग्य ही खराब है। जिस भाग्य को विधाता ने महामाया के भाग्य के साथ जोड़ दिया है, अन्यथा जिस आशा और भरोसे के साथ उन्होंने शांता के लिये रसोईघर के एकांत में एक कल्पना लोक कायम करना चाहा था—उस में आ पहुंचती थी कल्याणी। अभी नरेन चाय की चुस्की ले ही रहा था कि कल्याणी आकर बोली—'ओह! कैसी भारी एक गलती हो गई है!'

'क्या हुआ ?' नरेन ने मुख उठाकर पूछा। 'अरे, तुम यहाँ बैठे-बैठे चाय पी रहे हो, नरेन भैया!' कल्याणी बोली—'नमिता दत्त को तो निमंत्रण पहुँचा ही नहीं।'

'तब ?'

'अभी चलना पड़ेगा ।'

नरेन महामाया की ओर देख कर बनावटी दुःख प्रकट करते हुए बोला—'दुत्—आराम से चाय भी न पी सका काकी ।'

महामाया बिगड़ उठीं कल्याणी के ऊपर—'तुम्हें क्या बुद्धि नहीं है कल्याणी ? एक आदमी—वही प्रातःकाल से भी दौड़-धूप कर रहा है ! जाने दो, अब बुलाने जाने की जरूरत नहीं ।'

'नहीं काकी'—नरेन हँस कर बोला—'आफिस में कल्याणी से उसकी बड़ी घनिष्ठता है । नहीं बुलाने से ठीक न होगा । काफी दूर जाना होगा—जल्दी चलो हो आयें ।'

नरेन जल्दीबाजी में चला गया ।

अपनी कल्पना की सृष्टि पर आघात लगने से एक आदमी जिस तरह निराश-हताश हो जाता है, उसी तरह क्रोध और आक्रोश से महामाया फुफकार उठीं । अचानक बरस पड़ीं कल्याणी के ऊपर—अभागिनी,—जीवन भर मुझे जला कर मार डाला !'

वह ज्वाला और जलन क्या है—उसका पूर्ण चिह्न जैसे महामाया और शांता के मुख पर अंकित हो उठा है । अतर्कित अघात के भय से कल्याणी का मुख जैसे सूख गया और उसी सूखे मुख से वह माँ को एक टक देखती रह गई । देखा एक बार शांता को भी, इसके बाद लम्बी सांस फेंक कर वहाँ से चली गयी । लगा, जैसे उसने कुछ समझा—लेकिन सब कुछ नहीं समझ सकी ।

रसोईघर के एकांत में रह गईं महामाया और शांता—और उस घर का वह निराला कोना । कल्याणी मानो नरेन को वहाँ से छूमन्तर के जोर से लेकर चली गई । कहाँ किस मुक्ताकाश के प्रांगण में—जहाँ न तो पहुँच सकती हैं महामाया और न पहुंच सकती है शान्ता ही !

अवनी लौटा काफी देरी से—तब प्रायः सभी मेहमान विदा हो चुके थे। नरेन भी जाने को है।

अवनी को देख कर नरेन बोला—'भाई, धन्य है तुम्हारा इन्तजाम! कहाँ थे?'

'एक और बृहतर इन्तजाम के चक्कर में निकल पड़ा था।' तनिक सूखी हँसी हँस कर अवनी ने उतर दिया।

'क्या नौकरी?'

'ऊँ हूँ।'

'तब?'

अवनी ने इस बार हँस कर उत्तर को दबा दिया। उसे विदा कर उद्भ्रान्त, अन्यमनस्क के समान कुर्सी पर जा बैठा।

कल्याणी ने आकर अवाक होकर उसके उचटे से चेहरे की ओर देखा। बोली—'बात क्या है भैया?'

वह बृहत्तर बात है, अवनी का प्रेम!

बेकार आदमी का प्रेम। जरा-सी बात पर राजी-खुशी....तनिक देर की मुलाकात, क्षणिक देखा-देखी—इसी से मन प्रसन्न रहता, भरा-भरा-सा किन्तु सुधा की चिट्ठी के तगादे ने अवनी के मन को विचलित कर दिया। आज ही प्रातःकाल एक और चिट्ठी आई है—उस यक्ष्माग्रस्त आदमी के साथ शादी की तिथि निश्चित हो चुकी है।

सब सुनकर कल्याणी बोली—'इतनी सारी बातें आज तक मुझसे छिपा रखी थीं भैया? इसके पहले तो कभी कुछ बताया ही नहीं! दो वर्ष हो गये तुम्हारे बन्धु के मरे....उसके बाद से इतनी घटनाएँ घट गई हैं!'

'बहुत दिनों से सोच रहा था। तुम से अब कहूँ तब कहूँ किन्तु कह न सका।' अवनी बोला—'सोचा था—किसी तरह एक नौकरी मिल जाती तो सब मैनेज कर लेता।'

किन्तु कैसी सांघातिक घटनाएँ घटती जा रही हैं, देख तो रहे हो।'

'घट तो रही ही हैं। अब क्या करूं, तुम्हीं बताओ?'

'करोगे क्या, शादी करोगे!'

'तुम तो कह रही हो' अवनी बोला—'किन्तु बात इतनी आसान तो नहीं है। सुधा के मामा सुनेंगे तो मुझे मारने दौड़ेंगे।'

'तब?' क्षुब्ध होकर कल्याणी बोली—'क्या उसी क्षयग्रस्त के साथ शादी हो जाने दोगे? तुम लड़कों की जो मर्जी होगी वही होगा?'

कल्याणी के विक्षुब्ध हृदय को जैसे आघात लगा। उसके रक्तिम मुख की ओर क्षण भर देख कर अवनी बोल उठा—'नहीं, ऐसी बात हरगिज नहीं होगी।'

'तब जाओ नरेन भैया को बुलाकर अभी तुरंत सलाह करो।' कल्याणी बोली—'बेचारी की चिट्ठी का अनुनय-विनय सुन कर मेरा मन दुखित हो उठा है, भैया! तुम चुपचाप बैठे कैसे हो?''

'कोई नौकरी-चाकरी होती तो मैं चुपचाप बैठा नहीं रहता, यह निश्चित है।' अवनी बोला—'शादी कर घर में लाकर बैठा तो दूँ, किन्तु चलेगा कैसे?'

'चलेगा, भैया, जरूर चलेगा।' कल्याणी बोली—'मेरा वेतन तो कुछ बढ़ा ही है।'

'सो बढ़ा। किन्तु सब मिल कर तुम्हारे ही कंधे पर तो लद जायेंगे?' अवनी विक्षुब्ध स्वर में ही पुनः बोला—'मैं तो कुछ भी नहीं कर पाता हूँ।'

कल्याणी का मुख क्या न हो उठा। बोली—'शादी के पहले ही मुझे पराया समझने लगे भैया?'

'असम्भव, हरगिज नहीं!' कल्याणी के म्लान मुख की ओर देख कर अवनी बोल उठा—'किन्तु तुम मैनेज कर कैसे पाओगी कल्याणी?''

कल्याणी अपने भैया के मुख को देख कर हँस पड़ी। बोली—'तुम तो बहुत कुछ मैनेज कर लेते हो भैया! यह मुझे करने दो न!'

अवनी बहन के मुख की ओर देख कर बोला—'किन्तु शादी रजिस्ट्री के जरिये होगी, साक्षी-सबूत की जरूरत पड़ेगी।'

कल्याणी बोली—'मैं साक्षी दूँगी।'

'इसी तरह के अशास्त्रीय और अहिन्दू विवाह के लिए माँ को राजी करना होगा।'

'मैं करा लूँगी।'

सब कुछ करेगी कल्याणी—किन्तु फिर भी अवनी का संकोच दूर नहीं होता। पुनः उसी संसार की बात छेड़ दी—'किन्तु चलेगा कैसे—यही तो समझ नहीं पाता हूँ कल्याणी!'

"मैं चला लूँगी, भैया—मेरे ऊपर भरोसा नहीं कर पाते।' कल्याणी बोली—'असली बात कहो तो, तुम सुधा को प्यार करते हो?"

कल्याणी के मुख पर न जाने कैसी एक दीप्ति है। वह सब कुछ कर सकती है, कहीं कोई रुकावट न होगी उसे। जैसे असवार्ट कम्पनी की इस टाइपिस्ट लड़की को किसी अदृश्य महाजगत् की उपलब्धि हो गई है। उसकी किसी रहस्यमयी शक्ति की उत्प्रेरणा से वह साम्राज्य उसके ऐश्वर्य से उच्छ्वसित हो उठा है। मुख पर साम्राज्ञी जैसी आभा है!

बहन के उसी मुख की ओर एक टक देख कर अवनी के अधरों पर मौन मुस्कुराहट लौट गई। बोला—'तुम सब कुछ कर सकती हो?'

'निश्चय कर सकती हूँ।'

'तब जाऊँ नरेन के पास!' अवनी बोला—'सुधा के एक मौसा हैं, गरीब हैं—सुना है, बहुत अच्छे आदमी हैं। सम्भव है, इस बारेमें वे मेरी कुछ मदद कर सकें। सुधा ने तो ऐसा ही कहा है। तब नरेन के साथ—एक बार जाऊँ उन्हीं के पास।'

:११:

★
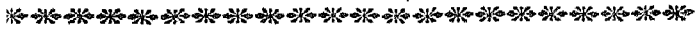
बवंडरों के बीच से ही।

सही—अवनी की शादी
एक दिन समाप्त हो गई।
नयी बहू बन कर सुधा घर
आई। महामाया अत्यन्त
आनन्दित न होने पर भी नाखुश
नहीं हैं। विवाह अगर पुरोहित को
बुला कर हिन्दू-मत के अनुसार
हुआ होता तो उनका सारा क्षोभ
मिट गया होता। इसके अलावा दूसरा
कोई क्षोभ उनके हृदय में नहीं है।
अवनी को कोई नौकरी चाकरी नहीं है—
वह संसार चलायेगा कैसे—ये सारी चिन्ताएँ
अवनी के विवाह के आनन्द में विलीन हो
गई हैं। वह संसार छोटा है—पुराना और
एक-सा। वहाँ एक मनुष्य की जीविका का कोई
आधार नहीं है—यह बात नहीं है, बड़ी है। आदि-
काल से चली आ रही प्रथा के अनुसार विवाह की

बात, बाल-बच्चों का होना और उनके कलरव से घर-संसार का मुखरित होना। ऐसे ही वातावरण में पैदा हुई हैं महामाया—बड़ी हुई है, और काट दिया है जीवन का अधिकांश भाग। इसीलिये ऐसी ही आशा-आकांक्षाओं से अवनी और शांता के बारे में उनका हृदय भरा हुआ था। और कल्याणी—कल्याणी उन के दुःख की संगिनी है। दुःख की संगिनी के लिए उन्हें कोई चिन्ता नहीं। चिन्ताएं उन्हें तब खाने लगती हैं जब कि उस की आँखों और मुख पर सुख की दीप्ति देखती हैं। फिर भी अवनी की शादी में उसकी कोशिश और लगन को देख कर उसके ऊपर से उनका सन्देह बहुत हद तक दूर हो चुका है। उल्टे वह प्रसन्न आँखों से देखती हैं। एक आनन्दमय वातावरण की रचना करने में कल्याणी भी जैसे तत्पर हो उठी है। सरो-सामान को खींच-खाँच इधर-उधर कर अवनी के कमरे को कल्याणी ने सजा दिया। टूटी टेबल को एक पर्दे से ढक दिया, खिड़कियों पर पर्दे लटका दिये, एक कोने में शीशे के ग्लास में रजनीगन्धा के कई गुच्छे रख दिये। जितना कूड़ा-करकट था—अवनी की व्यवहृत फटी-पुरानी कमीजें, रूमाल, चप्पलें—सब फेंकने लग गयी। इन चप्पलों के फेंकते समय ऐसा प्रतीत हुआ कि अवनी अपने को संभाल न सका। हाँ, हाँ कर उठा—'यह कर क्या रही हो, कर क्या रही हो? यह मेरे दुर्दिनों की संगिनी हैं, और वे संकट काल के उपकारी संगी-साथी हैं।'

'पहले झाड़ू लगा कर फेंक तो लेने दो।' कल्याणी जल्दी-जल्दी झाड़ू देने लगी।

'अरे! अरे!! फेंको मत चप्पलों को।' अवनी दौड़ पड़ा चप्पलों की रक्षा में। 'उन्हें बेचने पर भी कुछ पैसे आयेंगे मेरी टेंट में। बेकार आदमी हूँ, यहाँ-वहाँ दौड़ता-फिरता हूँ। कम से कम दो-एक बार के लिए ट्राम का भाड़ा तो हो ही सकता है।'

'पैसे माँग लेना।' कल्याणी बोली—'इन चप्पलों की सूरत देख

कर खरीद ने वाला भी हँसेगा, आगे-पीछे टूट-टाट कर टेढ़ी-मेढ़ी हो गोल हो गई हैं। इन में है ही क्या अब !'

अवनी नाराज हो कर बोला—'ओह ! एक दिन यही चप्पलें देखने लायक थीं, रखा था—जरूरत पड़ने पर बेच दूँगा।'

'चुपचाप बैठो भैया !'

इस के बाद कल्याणी की नजर टीन के एक सूटकेस पर पड़ी। सुधा की ओर देख कर कल्याणी बोली—'भाभी जरा देखो तो क्या है उसमें।

अवनी ने उछल कर उसे कस कर पकड़ लिया। बोला—'जो है, सो रहने दो।'

कल्याणी हँस पड़ी। बोली—'तब तो निश्चय ही उसमें भाभी की चिट्ठियाँ हैं।'

सब ठीक-ठाक कर कल्याणी ने कमरे को सजा दिया।

एक दीर्घ निःश्वास फेंक हताश की तरह सजे-सजाये कमरे को देख अवनी बोला—'लगता है, किसी दूसरे के घर आ घुसा हूँ। रातमें मुझे नींद नहीं आयेगी कल्याणी ! जैसा मेरा था वैसा ही कर दो।'

नयी बहू सुधा आँचल से मुख ढक कर हँस पड़ी। हँस पड़ी शान्ता, हँस उठीं महामाया भी रसोईघर के कोने से। शरत् ऋतु के निरुद्देश्य मेघखंडों के समान एक आनन्द की किरण-रेखा चमक कर मानो इस परिवार के ऊपर उद्भासित हो उठी है—अप्रत्याशित, अव्यक्त ! बहुत दिनों के बाद इस आनन्द से उद्भासित हो उठा है महामाया का हृदय !

अन्यमनस्क हो उठा केवल अवनी—कल्याणी के समुज्वल मुख को देख कर। उन्मुक्त मुस्कानों से आलोड़ित दिन—इस संसार के पूरे बोझी को ढोये जाने में उसे क्या आनन्द मिलता है, कौन जाने ! किन्तु अवनी यह सब देख कर अत्यन्त विचलित हो उठता है। उसी क्षण इस लड़की के लिए कुछ कर डालने को उसका हृदय आकुल-व्याकुल हो उठता है।

अन्त में कल्याणी को मदद करने के आवेग से बड़ी-बड़ी आशाओं को त्याग कर अवनी बीमा कम्पनी की दलाली का काम स्वीकार कर इधर-उधर घूमने-घामने लगा।

कई दिनों के बाद नरेन से अवनी की हठात् मुलाकात हो गयी। कर्जन पार्क के उस निर्जन कोने में मौलसिरी के पेड़ के नीचे खड़ा है—कल्याणी एक दिन यहीं खड़ी हो कर नरेन की प्रतीक्षा किया करती थी। नरेन को देख अवनी ने अपनी गति धीमी कर दी। तनिक हँसा।

किन्तु अवनी को देख कर नरेन कुछ चंचल और संकुचित हो उठा यह अवनी की आँखों से यह छिप न सका। अवनी सहज स्वर में बोला—'क्यों, खड़ा कर रखा है न कल्याणी ने?'

'देखो न, दस मिनट बीत गये।' नरेन एक कार्य व्यस्त आदमी का भाव बना कर बोला—'किन्तु एक आवश्यक काम था मेरा!'

'ऐसा काम हमलोगों को भी रहता है—समझे! अब चलो।' अवनी नरेन को खींचते हुए बढ़ने लगा। बोला—'तुमसे एक बात कहनी है। कल्याणी इतनी देर कर रही है—छोड़ो उसे।'

नरेन की जाने की इच्छा नहीं। बोला—'तनिक और इंतजार कर लें अवनी। यूनियन के बारे में कुछ जरूरी बातें करनी थीं उससे।'

'वह बाद में कहना। उसके सामने मैं अपनी पूरी बात कह नहीं पाऊँगा।' अवनी नरेन को खींच ले चला।

अवनी की बात के गुरुत्व को समझ कर नरेन उसके साथ हो लिया। लेकिन कौतुहलवश वह पूछा बैठा—'बात क्या है? नौकरी-चाकरी का कोई सुविधा हुई तुम्हारे लिये?'

'हुई है—बीमा कम्पनी की दलाली।' अवनी बोला—'कुल दस-

बारह बीमा का मैनेज कर लेने से ही किसी देशी कम्पनी में कुर्सी पर बैठने का सुअवसर मिल सकता है, ऐसा ज्ञात होता है।'

नरेन बोला—'सो तो ठीक ही है, अच्छा मैं भी एक करा दूँगा।'

'करना ही होगा, तुम्हें और कल्याणी दोनों को कराना ही होगा।' अवनी बोला—'किन्तु इसके पहले तुम लोगों को एक और बड़ा काम करना पड़ेगा। कई दिनों से सोच रहा था—तुम्हारे पास जाऊँगा। चलो कर्जन पार्क में बैठ कर बातें करें।'

वे दोनों कर्जन पार्क में घास के ऊपर जा बैठे।

नरेन ने कौतूहल के साथ पूछा—'वह बड़ा काम क्या है अवनी?'

अवनी बोला—'तुम लोगों की शादी।'

नरेन रुक कर चुप हो गया।

अवनी का हृदय कल्याणी के लिए भरा हुआ है। वह बोला—'इसे समाप्त कर डालो नरेन।'

नरेन धीरे-धीरे बोला—'किन्तु मैंने इस बारे में कल्याणी से अब तक कुछ भी नहीं कहा अवनी?'

अवनी बोला—'कहना क्या उचित नहीं था?'

नरेन तनिक दुविधा में पड़ कर बोला—'उचित तो था।'

अवनी बोला—'तब कहो इस बार उससे। मैं आज ही माँ के साथ बातें कर और सब कुछ ठीक कर लेता हूँ। तुम लोगों की यह ढिलाई अब मुझे सह्य नहीं।'

नरेन बोला—'अच्छी बात!'

'तुम सुखी होगे नरेन! कल्याणी तुम्हारे घर को स्वर्ग बना देगी, यह बताए देता हूँ।' अवनी का कंठ-स्वर आवेग से भरा हुआ था।

नरेन हँस पड़ा। इस भाई-बहन का दुर्निवार आकर्षण नरेन से छिपा नहीं। उसी की ओर इशारा कर बोला—'किन्तु तुम्हारे घर की क्या हालत होगी ?'

'बहुत बड़ी क्षति होगी, यह जानता हूँ।' अवनी बोला—'किन्तु मन अब उस क्षति को नहीं मानता। जानता हूँ, परिवार की हालत कुछ अनिश्चित भी होगी, किन्तु—'

नरेन ने अवनी को रोक दिया। बोला—'ठहरो-ठहरो, इतनी दूर तक सोच कर दुश्चिन्ता को बढ़ा मत दो। तुम्हारी बहन का उपार्जन तुम्हारे ही घर में रहे। उसके प्रति मुझे कोई लोभ लालच नहीं है।'

मन और हृदय के विनिमय से बात अर्थ के अध्याय पर पहुँच जाने के कारण अवनी तनिक संकुचित और लज्जित हो उठा। अर्थोपार्जन में अवनी की स्वयंकी असमर्थता जैसे उसे डसने लगी। नरेन उसे मुलायम करते हुए बात को पलट कर बोला—'इस बारे में और बातें मत बढ़ाओ अवनी! उन कुछ रुपयों से अधिक महान् अधिक महत् चीज मुझे प्राप्त होगी— जहाँ कम से कम व्यक्तिगत भाव से तुम्हारी बहुत भारी क्षति होगी।'

'क्षति! सचमुच मेरी बहुत बड़ी क्षति होगी नरेन।' अवनी पुनः आवेग के साथ बोल उठा—'एक साथ इतने दिन रहे हैं—हँसे हैं, रोये हैं, और वह मेरा सब कुछ समझती है नरेन, लगता है माँ भी उतना मेरे बारे में नहीं जानती।'

'मुझे मालूम है अवनी!'

हृदय के ऊपर लदे एक भारी बोझ को उतार कर अवनी जैसे एक अपूर्व तृप्ति के साथ बैठा रह गया। सहज आवेग से अवनी का हृदय प्रफुल्लित हो उठा। अत्यंत सहज में ही एक जटिल समस्या का समाधान करके उसने एक लम्बी सांस फेंकी। हाँ, इस समय उसका सम्पूर्ण

जीवन प्रतीत हो रहा है मेघमुक्त आकाश के समान निर्मल उद्भासित। अवनी कल्याणी के लिए एक सुख, एक आकांक्षित शांति की सृष्टि कर सका है।

'अब चलो, चलें।' नरेन उठ खड़ा हुआ।

अवनी आज अपने को बहुत हलका महसूस कर रहा है--आनंद और वेदना से मिश्रित एक सुखकर स्निग्ध समीरण से उसका हृदय एक शिशु के हृदय के समान हो उठा है और वह जैसे सारी चिन्ताओं से मुक्त हो गया है!

: १२ :

जिस व्यक्ति का हृदय सहज आवेग में परिपूर्ण होता है वह सारी दुनियाँ को भी सहज दृष्टि से ही देखता है एवं सीधे-सादे ढङ्ग से ही उसका समाधान भी करना चाहता है। इस के लिए वह भावना, चिंता, अथवा विलम्ब—कुछ भी बर्दाश्त करना नहीं चाहता। इसी बाल-सुलभ सरलता को हृदय में छिपाये अवनी महामाया के साथ कल्याणी की शादी के बारे में विचार विमर्श करने के लिए जा पहुँचा।

महामाया रसोई घर में व्यस्त थीं। अवनी को देखकर बोल उठीं—'कहाँ रहते हो तुम, सुनूँ। बहू रानी तब से ही घर-बाहर कर रही है, उसको साथ लेकर कहाँ जाओगे, कहा था। अन्त में शांता के साथ चली गई।'

जाने दो—'मैं आज कहीं नहीं जाऊँगा माँ!' महामाया को तनिक और प्रसन्न कर के अवनी बोला—'इस

रसोई घर के कोने में बैठ आज तुम्हारे हाथ की एक कप चाय पिऊँगा, जी भर कर। तुम्हारी बहू और बेटी जो चाय बनाती हैं उसमें दूध और चीनी का भाग बहुत ही कम होता है माँ !'

महामाया के चेहरे पर प्रसन्नता की हल्की किरण जैसे मुस्कुरा उठी। बोली—'ज्यादा बक् बक् मत करो—बैठो, देती हूँ।'

एक मधुर वातावरण कायम कर अवनी बोला—'एक बात सोच रहा था माँ !'

'क्या बात ?'

'कल्याणी की शादी की बात।'

वह शादी किसके साथ, कब—इतनी बातें सुनने का अवकाश नहीं मिला। चाय की प्याली और तश्तरी महामाया के हाथ से झनझना कर गिर पड़ी।

'क्या कहा—किसकी शादी ?' महामाया ने अवनी की ओर देखा—सामने जैसे विभीषिका दिखाई पड़ रही हो।

अवनी फिर भी सहज स्वर में बोला—'कल्याणी की शादी की बात सोच रहा था माँ—नरेन के साथ उसका ब्याह कर देना चाहिए।'

'कर देना चाहिए, क्यों, क्या हुआ है मुँहझौंसी को ?'

अवनी कठोर शब्दों में बोला—'हुआ कुछ भी नहीं है—लेकिन वे दोनों एक दूसरे को प्यार करते हैं, पसन्द करते हैं। शादी होने से उनका जीवन सुखी होगा।'

'जानते हो, वह विधवा है ?'

'तो क्या हुआ है ? न जाने कब बचपन में क्या कुछ किया था—पुतली सजाकर—जिसका कुछ ठीक नहीं। छोड़ो उसे। मैं उसका ब्याह करूँगा।'

'मैं क्या सिर फोड़ कर मर जाऊँ ? कैसी घृणा की बात ! मैंने तभी

समझ लिया था, इस अभागे परिवार में कोई कांड होकर ही रहेगा। यह नरेन और यह मुँहझौंसी........'

'क्या अंट-संट बक रही हो तुम ?' अवनी क्रोधित हो उठा। 'तनिक कृतज्ञता की आशा भी तुम लोगों से नहीं की जा सकती। जो तुम्हारे मुँह के लिए अन्न का जुगाड़ कर रही है--'

'हट जाओ मेरे सामने से, हट जाओ, अन्यथा कहो, मैं ही कहीं भाग जाऊँ ताकि तुम लोगों का मुँह कभी न देखना पड़े।' बोलती-बोलती महामाया खुद ही तूफान के समान वहाँ से हट गईं ! सीधे अपने कमरे में जाकर दरवाजा बन्द कर लिया।

रसोई घर के बाहर खड़ी होकर अंधकार की ओट से कल्याणी सब कुछ सुन रही थी। उसके बारे में ही बातचीत हो रही है, यह सुन कर रुक गई थी वहीं। माँ की भयङ्कर मूर्ति के सामने से तेजी से हट गई।

महामाया वही जो घुसीं अपने कमरे में तो पुनः रात भर न निकलीं--दरवाजा खोला ही नहीं। लड़की, बहू, मिलू, बिलू चिल्ला-चिल्ला कर दरवाजे पर धक्का देते रहे किन्तु सब व्यर्थ। सारी रात जल का स्पर्श भी उन्होंने नहीं किया।

अवनी के पास जाकर कल्याणी र उठी--'यह क्या किया भैया तुमने ? माँ को पुकार कर बाहर करो।'

अवनी बोला--'मरती है, मरे। उसके उस पंडित वंश का युग और जमाना अब नहीं है।'

बिना खाये-पिये ही महामाया की एक रात कट गई।

दूसरे दिन प्रातःकाल बहुत प्रार्थना विनती कर के कल्याणी ने दरवाजा खुलवाया। मेरी बातें पहले सुनो तो माँ--इसके बाद जो मन में आये करना, एकबार दरवाजा खोलो।'

कुछ सोच कर महामाया ने दरवाजा खोल दिया।

घर में घुस माँ के पैरों पर गिर कल्याणी रो पड़ी। बोली—'भैया ने जो कुछ भी तुमसे कहा है उसके बारे में मैं कुछ भी नहीं जानती माँ, विश्वास करो।'

कठोर स्वर में महामाया बोलीं—'पैर छू कर कहती हो?'

'हाँ, माँ!

माँ के क्रोधित भयङ्कर मुख की ओर कल्याणी क्षणों ताकती रह गई। बोल न सकी।

'कैसा पाप पेट में पाल रखा था!' महामाया फिर गरज उठी—'हतभागी, जानती हो तुम विधवा हो। इसीलिये तो उस पुण्यवती के पैर की छाप एक दिन तुम्हें दी थी, इसी लिये तो तुमको इस पाप से बचाना चाहा था!'

काफी देर बाद कल्याणी अचकचा कर बोली—'गलती से तब पैर की छाप की कीमत को समझ न सकी माँ, तुम आशीर्वाद दो, ताकि पुनः ऐसी गलती न कर सकूँ। अब मैं गलती नहीं करूँगी, तुम्हारे पैर छूकर कहती हूँ। तुम चलो, कुछ खाओ। अन्तिम बार की तरह मुझपर विश्वास करो।'

'बहुत किया है—तुम्हारे बाप की जीवित अवस्था से ही कर रही हूँ।' महामाया रुखाई के स्वर में बोलीं—'अन्त में यही उसका फल। इससे अच्छा है, मुझे मर जाने दो। इस पाप के घर में जल भी स्पर्श नहीं करूँगी। हतभागी, आज तुम्हारी ही बात बड़ी हुई। अपने नाबालिग भाई-बहनों की बात छोड़ कर केवल अपनी ही बात तुम सोच कर मर रही हो!'

'उनको छोड़ कर मैं कहीं भी जाना नहीं चाहती माँ, अंतिम बार मुझपर विश्वास करो।' व्यथाहत मुख उठाया कल्याणी ने।

महामाया रुखाई के ही स्वर में बोलीं—'इस तरह की शिक्षा प्राप्त कर एक बार जो बाहर निकल पड़ी हैं उन पर मैं विश्वास नहीं करती। वे

जादू जानती है। अन्यथा देखा तो, नरेन ने एक बार आँख उठा कर भी शांता को देखा नहीं।'

अचानक कल्याणी को जैसे बिजली छू गई। वह सिहर उठी। एक अस्फुट आर्तनाद उसके मुख से निकल पड़ा। झट महामाया के पैर दबा कर बोली—'जैसे भी हो शांता के साथ नरेन भैया की शादी करा कर ही छोड़ूंगी माँ—मेरा विश्वास करो, देखो तुम!'

महामाया बोलीं—'जिन पैरों की छाप दी थी—उसे एक बार ले आओ।'

कल्याणी अपने सूटकेस को उलट-पलट कर चिकने कागज पर उतारी गई छाप को ले आई। महामाया कठोर स्वर से बोलीं—'इसे छू कर शपथ ग्रहण करो।'

'करती हूँ माँ!' कल्याणी अकबका कर बोली—'अब न भूल होगी माँ!'

इतने कांड के बाद कल्याणी महामाया का अनशन भङ्ग करा सकी। उनको उठा सकी।

किन्तु महामाया यहीं शांत न हुईं। खुद ही कल्याणी के कमरे में जाकर उसके छोटे-से कमरे को उलट-पलट डाला। उसके सिर के पास टेबिल के ऊपर दो-एक बंगला और अँग्रेजी के उपन्यास पड़े हुए थे, नरेन की दी हुई दो-चार इतिहास और राजनीति की पुस्तकें पड़ी थीं—उन सबको टेबिल के साथ-साथ वहाँ से अवनी के कमरे में चालान कर दिया। उसके स्थान पर एक छोटी-सी चौकी रख दी और उसके ऊपर महावर मंडित चिकने कागज पर ली गई उस पैर की छाप को ला रखा। खुद ही उसे फूल की मालाओं से सजा दिया, धूप-दीप जला दिया। इसके बाद चारों तरफ दृष्टि डालकर देखा—सब ठीक-ठाक हुआ कि नहीं।

शायद नहीं हुआ। अफसोस के साथ बोलीं—'काश, मेरे जमाई

की एक फोटो मिल पाती! ब्राह्मण पंडित, सीधा-सादा आदमी था वह! तुम्हारे विवाह के समय भी कोई फोटो न खींची जा सकी।'

कल्याणी हक्की-बक्की-सी केवल माँ का मुहँ देखती रह गई।

महामाया फिर बोलीं—'अब तक वह कितना बड़ा विद्यावागीश्वर और स्मृतिचक्षु हुआ होता—कौन जाने! तुम्हारे दादू के मुहल्ले में स्मृति पढ़ता था। तुम्हारे दादू कहते थे—उसकी बराबरी का दूसरा विद्यार्थी ही नहीं।'

कल्याणी मौन खड़ी रही।

दीर्घ निःश्वास फेंक कर महामाया फिर बोलीं—'भाग्य का लिखा कौन मिटायेगा बेटी! खैर, यह छाप यहीं रही, पूजा करेगी। मेरी सास कहती थीं—विधवा जीवन—जन्मजन्मांतर की तपस्या है। अपने मनकी दुर्बलता इस सती के चरणों पर सौंप दो—बल पाओगी।'

अवनी कल्याणी और महामाया के बीच के इस प्रसंग को जान न सका। माँ की रूढ़िवादी हठधर्मी के विरुद्ध संग्राम के लिए उसने अपने को और भी कठोर बना लिया है।

किन्तु माँ के साथ लड़ाई करने के पहले ही नरेन स्वयं सब तोड़ फोड़ गया।

नरेन बोला—'हुआ नहीं अवनी!'

'क्या नहीं हुआ?'

'कल्याणी इस विवाह से सहमत नहीं है।'

'सहमत नहीं है? क्या कहते हो?'

'यह एक लम्बी बात है। इतने दिनों बाद मैं मोटे तौर पर यही जान सका हूँ—वह विधवा है, प्यार करना भी उसके लिये पाप है, विवाह भी पाप है।'

'यह वही आदिकाल की सड़ी-गली प्रथा'—अवनी क्रुद्ध स्वर में गाली-गलौज बकने लगा—'यह निश्चय ही माँ का कांड है। तुम घबराओ मत, देखो, मैं आज ही सब मैनेज कर लेता हूँ।'

'दोहाई भाई, अब यह मैनेज करने मत जाओ।' नरेन ने अवनी का हाथ कस कर पकड़ कर कहा—'वह मुझे प्यार नहीं करती है, उसके सहज बन्धुत्व को प्यार समझ कर मैंने गलती की है। इसके बाद और कोई भी बात नहीं उठ सकती।'

'यह बात उसने कही है?'

'कही है, और यह भी कहा है मुझे शान्ता ही प्यार करती है। मुझे उसी के साथ विवाह करना उचित है।'

'शान्ता के साथ? तुम!' अवनी जैसे भौंचक्का हो उठा।

'उसने यही कहा।' नरेन बोला—'अगर मेरे प्रति तुम्हारे मन में सचमुच ही निष्ठा है तो शांता के साथ ही शादी करना उचित है। अन्ततः उसके लिये ....'

'हूँ!' कहकर अवनी चुप हो गया और अस्थिरता के साथ पैर के अंगूठे से जमीन खोदने लगा।

नरेन धीरे-धीरे बोला—'कठिन परीक्षा में उसने मुझे डाल दिया है। तुमको सब समझा कर बताने लायक मानसिक अवस्था इस समय मेरी नहीं है अवनी, बाद में सब सुनना। हाँ एक बात ध्यान रहे—इसको लेकर अब और खींचतान मत करो भाई!'

नरेन चला गया।

अवनी काफी देर तक गुमसुम बैठा रहा।

वह घोर चिन्ता-सागर में डूबता-उतराता कूल-किनारा न पा सका। अंतिम चेष्टा के लिये वह देह झाड़ कर पुनः उठ खड़ा हुआ और कल्याणी के कमरे में जाकर खड़ा हो गया।

किन्तु कमरे में घुसते ही वह ठिठक गया—जैसे किसी अपरिचित के कमरे में घुस आया हो और इस कमरे के पूरे परिवर्तन ने जैसे उसके शरीर पर कोड़े से प्रहार कर दिया। कल्याणी पीछे की तरफ मुँह कर के बैठी थी। अवनी ने पुकारा—'कल्याणी ?'

कल्याणी ने भावहीन मुद्रा से मुँह घुमाकर देखा।

अवनी बोला—'यह क्या किया है कल्याणी। नरेन से क्या सब अंट-संट बातें की हैं ?'

'ठीक ही कहा है भैया।' दूसरी ओर मुख घुमा कर कल्याणी बोली—'तुमने ही खामखाह बात का बतंगड़ बना दिया था।'

'मैंने ?'

अवनी ने विमूढ़ आँखों से कल्याणी के भावलेशहीन मुख पर व्यर्थ ही न जाने क्या कुछ ढूंढ़ने लगा। इसके बाद तूफान की गति से कमरे से निकल गया।

सुधा की आँखें उसकी प्रतीक्षा में अटकी थी—वह साग्रह उसकी राह देख रही थी। पूछ पड़ी—'कल्याणी दीदी ने क्या कहा ?'

'अरे दुर्। किस के लिए सर फोड़ कर मर रहा हूँ मैं ?' अवनी ने विरक्त होकर तीव्र कंठस्वर में कहा, 'आज से उसकी किसी भी बात में मैं दखल नहीं दूँगा।'

सुधा चकित-सी देखती रही। वह कल्याणी के व्यवहार और अवनी की झुंझलाहट को कुछ भी न समझ सकी। अपने इस नए संसार में जब से सुधा ने पैर रखा है तब से कल्याणी से उसकी खूब बनती थी—और सुधा के हृदय में कल्याणी के लिए न जाने कितनी शुभकामनाएँ थीं और उसके लिए वह कम चिन्तित भी न थी।

: १ ३ :

घाट पर लंगर लगाने के पहले एक धक्का खाकर नौका जैसे कुछ डगमगाती है और फिर स्थिर हो जाती है, उसी प्रकार यह परिवार भी जैसे एक नये घाट पर पहुँचने के पहले कितनी ही घटनाओं के संघात से आन्दोलित हो कर फिर धीरे-धीरे स्थिर हो आया अपने दैनंदिन नियमों में।

★

व्यतिक्रम है केवल दो हृदयों पर। पूर्णिमा के समुद्रोच्छ्वास के समान अपने निश्चित नियमों की तट-भूमि का अतिक्रमण कर कहाँ को भाग जायेगा—जैसे इसकी दिशा भी न प्राप्त कर सके हों। वे हृदय हैं अवनी और सुधा के। कल्याणी का उपार्जन ही यथेष्ट नहीं है, अवनी का उपार्जन भी अनिश्चित है। उत्सव-आनंद में शरीक होने और मनबहलाव के अवसर भी बहुत कम मिलते हैं फिर भी मनुष्य के शरीर में इतना विस्मय है, इतना आत्महारा आनंद है कि उसके नये-नये

आविष्कार से संकुचित हो गये दो हृदय जैसे सुध-बुध खो बैठते हैं। चिर-पुरातन जर्जर जगत के बीच अपने-आप में खोये शिशुस्वभाव पुरुष की भांति एक उष्ण और नवीन स्वतंत्रजगत स्थापित हो जाता है।

और सब कुछ चल रहा है यथानियम। शांता और महामाया के जिम्मे है खाली होता जा रहा भंडार और रसोईघर की क्लांति, कल्याणी के जिम्मे है पदचिह्न की पूजा और नौ बजे आफिस जाना और बिलू-मिलू के जिम्मे है स्कूल जाना-आना। इसके बाद सूनी दोपहरी में जब यह गली निःशब्द हो जाती है—तब टूटी तीन पैर वाली टेबिल के एक तरफ अधजली बीड़ी को फिर से जला कर सुधा के सामने काव्य-पाठ्य आरंभ कर देता है अर्धबेकार अवनी

'मैं उपेक्षित, आज मुझको ठेल कर जलस्रोत बढ़ता जा रहा है,
है उसे क्या ज्ञात !
तेरे परम पावन अधर मधु के पान से
मैं हो गया हूँ अमर, मधुमय !
क्षुद्र मैं हूँ कर्मचारी
और हैं अंग्रेज मेरे
प्रभु पराक्रम ध्वजाधारी।'

सुधा मुस्कराते हुए रोक कर बोली—'कैसी अंट-संट कविता—सुना रहे हो ?'

'खबरदार, अंटसंट मत कहो। कविगुरु इसे अस्वीकृत कर असल में छोड़ गये हैं बेकार अवनी मुखर्जी के लिए।' अवनी बोला—'सुनो।'

हाय रे! यह कविता-पाठ भी कितने दिनों बाद शुरू हुआ है। विश्वविद्यालय के जीवन के साथ ही तो सब समाप्त हो गया था। अब तो

बेकार के नीरस दिन थे और उसके बीच में जैसे लौट आयी है अचानक पुरानी मस्ती। अवनी का कंठस्वर छंद से और स्वर तरंग से कांपने लगा:—

'आधुनिक यह राजधानी
और अभिनव युवक हूँ मैं।
लौटता हूँ श्रान्त दिन भर
काम कर घर
नौकरी की कौड़ियाँ ले
हाय मेरी जन्मभूमि
हायरे! यह काल—
गौरवहीन। यश से शून्य—'

सुधा फिर रोक कर बोली—'इतना चिल्ला क्यों रहे हो! माँ और शांता सुन जो लेंगे!'

'कीर्ति की बात कह रहा था न! स्वर यों ही ऊँचा हो गया था।' इसके बाद अवनी धीरे-धीरे गले की आवाज धीमी कर कविता-पाठ करने लगा—

'लो सुनो तुम मूँद कर युग नेत्र—
यह मधुगान झंकृत हो रहा उस लोक का
बँध गए दो प्राण बँधन में प्रणय के
हाय पर यह राजधानी है खड़ी
हो मौन, नत शिर!'

अधजली बीड़ी में अब कुछ नहीं है। उसे कई बार मुँह से टान कर फेंक दिया अवनी ने। फिर बोला—'दो पैसे हैं? दो तो बीड़ी लाऊँ।'

'ओ माँ! पैसा मैं कहाँ से लाऊँ।' सुधा चमक कर हँसती हुई बोली—'तुम्हारे उस टूटे सूटकेस को जिसे तुमने बड़ा सहेज-सम्हाल

कर उस दिन रखा था, सोचा था, उसे उलट-पलट के देखा जाय क्या धन-दौलत निकलती है—लेकिन उसमें मिली क्या एक वंशी और न जाने किस जमाने की दो अधजली बीड़ियाँ, मेरी लिखी कई चिट्ठियाँ और कई फटे पुराने कुर्ते। वंशी क्या तुम्हारी है?'

'मेरी ही है। सोचा था—शायद वह खो गई है।' कहकर अवनी ने सुधा को धीरे-धीरे अपने पास खींच लिया।

सुधा ने भी कोई बाधा न दी। उसे लगा जैसे सम्पूर्ण शरीर में आनंद की एक लहर उछल पड़ी है। घर के अंधकारमय कोने में उसने अपने को अवनी को सौंप दिया। फिर धीमे स्वर में बोली, 'तुम बंशी बजाते थे?'

'एक दिन बजाता था सुधा!' अवनी ने अन्यमनस्क-सा होकर कहा।

'क्या सोच रहे हो?'

अवनी स्पष्ट उत्तर न दे सका।

किन्तु लगा जैसे एक विस्मृत जगत लौटा आ रहा है—हृदय के पथ से, बुद्धि के पथ से आदिम हृदय आवेदन के पथ से। अपने दोनों हाथों से उसने सुधा को बिस्तरे पर लिटा दिया, बिखरा डाला उसके बालों को, साड़ी को, ब्लाउज को, पेटीकोट को। एक विस्मय, एक अनावृत आनंद है उसके सामने। किसी एक विस्मृत अनावृत महाश्वेता का उन्मुक्त सौंदर्य-भंडार है—उसके मलिन-दरिद्र घर के कोने में। रुद्ध आवेग से उसका गला काँपने लगा। सुधा के कान के पास मुख ले जाकर फिर कविता-पाठ शुरू कर दिया अवनी ने—

'जीवन की उर्मियाँ आज
बंदिनी बनी हैं अंग-अंग में
सुषमा के मधु इन्द्रजाल से
बनी अचंचल उसकी ही तो

शिखर-शिखर पर दोपहरी की
धूप चमकती जग-मग जग-मग
भव्य भाल पर अरुण गाल पर
अधरों पर कटि-तट जघनों पर,
बाहु युग्म स्तनचूड़ाओं पर
सिक्त देह की रोमावलियाँ
चमक रही हैं !'

किसी निर्जन वन-प्रान्तर के मध्याह्न की धूप के समान अवनी का कंपित कंठ स्वर, उसका आवेग और उसका उष्णश्वास सुधा के सर्वांग को जैसे आकर स्पर्श करने लगे। उसके शरीर के जैसे अंग-अंग इस स्पर्श से जाग उठे हैं। वह धन्य है, पूर्ण है, उस पूर्णता की परितृप्ति की एक ध्वनि केवल स्खलित हो पड़ी उसके आवेग रुद्ध कंठ से—

'आः !'

यह जगत स्वतंत्र है, यह जगत केवल दो प्राणियों का है। पागल के समान अवनी ने सुधा को दोनों हाथों से दबोचते हुये सर्वांग को चुम्बनों से भर दिया। सुधा अपने सर्वांग के स्पंदित आनंद के बीच में दोनों हाथों से अवनी के मुख को दबा लेती है उसका प्रतिपल आनंद से सिहर उठता है। एक पुरुप की पीड़ा में, चुंबन में, सुहाग में, कितना आनन्द है कि वह अपने क्षणिक आनंद-उपभोग को अपनी मुट्ठियों में दाब कर उसे चिरस्थायी बनाकर रखना चाहती है। लज्जा और संकोच के समस्त बन्द दरवाजों को जैसे उसने खोल कर रख दिया एक शक्तिमान पौरुष के सामने। उसकी समर्पित देह—उसकी सम्पूर्ण सत्ता जैसे बोल उठी—'दो-दो अपना पाप दो, पुण्य दो, अपनी पीड़ा दो, अपना प्रेम दो, अपना पौरुष दो, अपना दुख दो।' उसके आवेगरुद्ध कंठ से केवल एक अस्फुट शब्द पुनः निकल पड़ा—

'दो—दो..........'

अवनी ने रुद्ध आवेग से पुकारा।

'सुधा!'

सुधा ने कोई उत्तर नहीं दिया। वह अपनी इस पूर्णता के बीच महामौन-सी रही। यहाँ उसे कहने की कोई बात भी नहीं। केवल पुञ्जीभूत आनंद से भरी हुई नीरवता है। वह खोई-खोई-सी, स्तंभित-सी पड़ी रही। वहाँ अब कोई बात नहीं है केवल घनीभूत निस्तब्धता! खोयी-खोयी-सी स्तंभित आकुलता!

किन्तु इस स्तब्धता में पुरुष को किसी दिन भी सांत्वना नहीं मिली। वह इस खोए-खोए से स्तंभित आनंद के बीच सहस्र धाराओं-सी उच्छ्व-सित हो उठा है। सृष्टि की तरंगें जैसे उस के सामने ओछी पड़ गई हैं। वह इस पूर्णता में आत्मविभोर हो उठा है। वह खामोश नहीं रह सकता। इसी लिये बार बार उसका कंठस्वर गूंज उठता है आवेग से—

'तुम सुखी हो! तुम........बोलो........बोलो........।'

आनंद की सिहरन से स्तब्ध कंठ से केवल एक परितृप्त शब्द सुधा के गले से निकल सका।

'तुम मेरी महाश्वेता....मेरी सरस्वती हो! बेकार अवनी की.......'

'चुप!' सुधा ने अवनी के मुख को हृदय पर कस कर दबा लिया। 'बोलो........मैं सुखी हूँ।'

धन नहीं, दौलत नहीं, फिर भी सुधा को किसी एक अदृश्य राज्य की साम्राज्ञी का गौरव प्राप्त है। वह सुखी....परिपूर्ण है!

× × ×   × × ×   × × ×

कल्याणी उस दिन जल्दी ही आफिस से लौट आयी। न जाने क्यों आज आधे दिन की छुट्टी थी। अवनी को घर में देखकर आश्चर्य-चकित होकर बोली—'भैया आज बाहर नहीं गये?'

उत्तर देने में न जाने—क्या-क्या सोचकर अवनी को संकोच का अनुभव हुआ। बहिन के थके निराश चेहरे के सामने दोपहरी की दैहिक तृप्ति संकुचित-सी हो गई। वह फिर हिचकिचा कर बोला—'आज तबीयत ठीक नहीं जान पड़ती थी। इसके अतिरिक्त मेरा काम तो—तुम लोगों के आफिस की तरह बंधा नहीं।"

कल्याणी बोली—'कुछ रुपयों की जरूरत है भैया, इन्तजाम कर दो न। इस महीने में कुछ ज्यादा खर्च हो जाने से हाथ एकदम खाली हो गया है।'

कल्याणी की एक भी बात अवनी को अच्छी न लगी। विशेषकर आज की भाग-वेग से आन्दोलित दोपहरी के बाद। अवनी बोला—'देखूँ, कहीं से उधार ला सकता हूँ कि नहीं, मेरे पास तो कुछ भी नहीं है।'

'यह तो जानती हूँ।' कल्याणी हँसकर बोली—'अगले महीने से तुम्हारे ऊपर जरा भी दबाव नहीं डालूँगी भैया! इस महीने से बड़े साहेब के खास दफ्तर की स्टेनो नियुक्ति हो गई हूँ। अगले महीने से वेतन कुछ और बढ़ जायेगा।' कह कर वह सहज भाव से हँस पड़ी।

किन्तु अवनी आज इतनी आसानी से हँस न सका। यहाँ तक कि कल्याणी की पद-वृद्धि की बात सुनकर भी जैसे आज उसे खुशी नहीं हुई। आज की परिपूर्ण दोपहरी संध्या के आलोक में उसे जैसे बार-बार करुण और उदास-सी प्रतीत हो रही है। उसकी अक्षमता जैसे काँटे की तरह उसकी सारी देह में चुभ रही है। चुभती रही यह बात भी कि अधिक खर्च हो जाने से कल्याणी का हाथ भी एकदम खाली हो गया है—उसके विवाह का अभी एक महीना भी तो नहीं हुआ। दोपहरी उसकी चाहे जितने भी आनंद से क्यों न कटी हो उस आनंद के लिए मूल्य चाहिए। कल्याणी के चले जाने के बाद उसने सुधा की ओर

देखा अर्थपूर्ण दृष्टि से। जबर्दस्ती हँसी हँस कर सुधा की नकल करते हुए बोला—'मैं सुखी हूँ।.........'

सुधा ने आँखें उठा कर सकरुण मुख से अवनी को देखा। अवनी कुर्ता पहनते-पहनते कविता पाठ करने लगा—

'जनाकीर्ण इस जग के
निभृत कोण में कातर
दो दानों के लिए
जूझ कर मरूँ कहाँ मैं जाकर ?'

सुधा ने दबे स्वर में पूछा—'लौटने में अधिक रात होगी ?'

'पहले उधार पाऊँ तो।' कह अवनी निकल पड़ा।

सुधा दरवाजे का चौखट पकड़े खड़ी रह गयी। संध्या तो अभी नहीं हुई है फिर भी अँधेरी गली की छाया धीरे-धीरे संध्या की तरह मलिन हो उठी है। मध्याह्न के पुरुष संस्पर्श से पुलकित उसके सर्वांग पर न जाने कैसे एक अकारण अवसाद से सकरुण मलिन छाया धीरे-धीरे घिर उठी है। उसे लगा जैसे जीवन बहुत ही संकीर्ण है—क्यों ?

गरीबी क्या है, अभाव क्या है—वह यह जानती है। दूसरे के सिर का बोझ बनकर वह पाली-पोसी गई है। अतः वह इस परिवार में नई होती हुई भी उसके लिए कुछ भी नया नहीं है। किन्तु इसी चिर-परिचित अभाव और गरीबी के बीच उसके नए जीवन के प्रेम ने एक नवीन हृदय-सम्राज्ञी के समान रूप धारण कर लिया था। जहाँ पर उसकी आशा का अंत नहीं—आकांक्षा प्रबल है। वहाँ फूल खिलता चाँद मुस्कुराते, विश्व प्रकृति उसकी हजारों समृद्धियों की खबर ढोये उसे इसी अँधेरी गली के एक घर में खींच लाती है—उसके हृदय में हजारों स्वप्न जाग उठते हैं। इस नवीन जीवन में कितना माधुर्य, कितनी

प्रत्याशा है। वह एक पुरुष स्पर्श से ही सुखी है, आनंदित है, परिपूर्ण है। उसने मन के विषाद को मन ही मन निकाल फेंका है—अपनी इस दरिद्रता और अभाव की क्रूर संकीर्णता को वह जैसे नहीं स्वीकार करेगी। धन देकर कौन उसके प्रेम को और इस आनंद को रोक सकता है। वह एक अबोध विस्मय और क्षोभ से मन ही मन बोल पड़ती—क्या जगत में रुपया ही सब कुछ है?

—:*:—
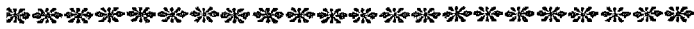
:१४:

महामाया का सारा संसार घर तक ही सीमित था—वह नहीं जानती थी कि घर के बाहर क्या हो रहा है। उसी घर से एक दिन कल्याणी घर से बाहर दौड़ी थी और बाहर निकलने पर विश्व ब्रह्माण्ड की रोशनी में उसकी आँखें चकाचौंध हो गई थीं। उस चकाचौंध में उसकी नज़र घर के लोगों पर नहीं पड़ी—वह अपने में ही, अपने आनंद में ही जैसे वह विभोर हो उठी थी। उस विभोरता को कठिन आघात द्वारा महामाया ने जैसे उठा लिया। कल्याणी ने आत्मविस्मृति से विभोर स्वप्न से जैसे चौंक कर घर के कोने की ओर देखा।

★

फिर भी महामाया ने उसे कई दिन तक संदिग्ध दृष्टि से देखा। किन्तु नरेन अब नहीं आता। देखा कल्याणी कई दिन गुमसुम-सी रही जैसे उसके मनमें किसी तूफान की गहरी झंझाएँ चल रही हों। एक दबा-सा कठिन शपथ इतने दिनों बाद जैसे कल्याणी के चेहरे पर

अंकित हो गया है। दिन भर आफिस में खटने के बाद भी उसके मुख पर जो एक दीप्ति और लालित्य दमकता रहता था—वह अब जैसे फीका होता जा रहा है। उसके स्थान पर अब क्लान्त रुक्षता दीख पड़ती है। कल्याणी अब घर में ही अधिक दिलचस्पी लेती है। महामाया अब आश्वस्त हो उठी है।

नौकरी में पदोन्नति के बाद कल्याणी ने एक दिन सबको माँ के कमरे में एकत्र कर एक मीटिंग-सी कर डाली। विषय था—बढ़ी हुई आमदनी से घर को और भी कायदे से लाने की योजना बनायी जाय। उसका पहला प्रस्ताव हुआ—शांता को और आगे पढ़ना होगा। मिलू को भी किसी स्कूल में भर्ती कर, बिलू भी। पढ़ाने-लिखाने की जिम्मेदारी लेगा अवनी।

महामाया मन ही मन बहुत खुश हुईं। बोलीं—'अच्छी बात तो है, पढ़ाओ न बेटी, पढ़ा सको तो पढ़ाना तो चाहिए ही।'

कल्याणी उत्साहित हो कर अवनी की ओर देख कर बोली—'भैया, यदि शान्ता के ऊपर तनिक नजर दो तो वह भी कुछ पास कर लेगी।'

अवनी गंभीर रहा।

कल्याणी फिर बोली—'और तुम भी कानून की परीक्षा दे डालो भैया। तब केवल एक साल ही पढ़ कर छोड़ दिया था, पिताजी के मन में इसका बड़ा अफसोस रह गया था।'

दूसरा समय होने से, मुमकिन है अवनी मन में नाराज नहीं होता; किन्तु आज कल्याणी का मालिकाना हुक्म उसे जरा भी नही सुहाता, विशेष कर सुधा के सामने।

हुकूमत करने की एक सीमा होती है, किन्तु कल्याणी को इस बारे में जैसे जरा भी ज्ञान नहीं है। स्तम्भित, विस्मित वह कुछ देर तक कल्याणी की ओर एक टक देखता ही रह गया। अपने को किसी प्रकार संयत कर बोला—'क्या पढ़ाने का खर्च है?'

कल्याणी सोत्साह से बोली—'वह तो मैं देने को तैयार ही हूँ। तुम इस समय कितने रुपये का रोजगार कर ही पाते हो?'

सुधा ने पीले मुख को उठा कर अवनी को एक बार देखा। अवनी के मुख की मुद्रा जैसे कठिन हो उठी थी।

किन्तु आज कल्याणी की आँखें उनपर पड़ीं भी नहीं। आज वह जीविका की अतिरिक्त वृद्धि के नशे की झोंक में वह घर के लोगों को देख रही है। जीवन-मान को बढ़ाना होगा, दमघुटाऊ जीवन से कुछ ऊपर उन्नत जीवन कायम करना होगा। इसी योजना के निर्माण में वह आज व्यस्त है। कल्याणी फिर बोली—'तुम पढ़ो भैया! मैं जानती हूँ, तुम बड़े वकील बन सकते हो।'

किन्तु कल्याणी की कोई भी शुभेच्छा आज अवनी के मनको शीतल न बना सकी। उल्टे अपनी असामर्थ्य के स्रोत से वह एक गँवारू क्रोध से जैसे उद्विग्न हो उठा।

महामाया के मुख की ओर देख कर कल्याणी बोली—'तम क्या कहती हो माँ?'

'तुम लोग जिससे बड़े हो, सुखी हो—यही मैं चाहती हूँ बेटी?' महामाया बोली—'भगवान ने जब नजर उठा कर देखा है—'

कल्याणी बोली—'मेरी भी यही राय है माँ! जितनी सुविधा प्राप्त है उससे फायदा उठाना ही चाहिए।' इसके बाद अवनी की ओर देख कर बोली—'और किसी अच्छे मुहल्ले में एक मकान की तलाश करो भैया! इस मुहल्ले में रहने से मिलू-मिलू अच्छे आदमी नहीं बन सकते।'

मालिकाना और उपदेश अन्त में अवनी को असह्य हो उठे। बात-चीत के बीच में ही वह उठ कर चला गया।

कल्याणी ठिठककर उसकी तरफ लक्ष्य करके बोली—'किन्तु भैया की राय का तो कुछ पता ही नहीं चला माँ!'

'काम की बात के समय कब उसे स्थिर बैठते देखा है बेटी ?' महामाया को भी यह बात अच्छी न लगी। इसीलिये विरक्त हो कर बोलीं—'लड़की हो कर भी तुम एक लड़के के समान जो कर रही हो, उससे भी वह शिक्षा नहीं लेता। फिर भी अपने भाई-बहनों के साथ तुम जो करना चाहती हो करो बेटी ? मैं और कितने दिन हूँ। मुझे केवल एक बार तीर्थ-यात्रा करा दो बेटी ! मैं और कुछ भी नहीं चाहती।'

कल्याणी हठात् माँ के पैर छू कर बोली—'तुम आशीर्वाद दो माँ, देखो मैं सब करती हूँ।'

आवेग के ही साथ कल्याणी ने यह बात कह दी। इस क्षण इस लड़की के मुख की ओर देख महामाया का हृदय जैसा भर उठा। मनुष्य-प्रकृति के अति निकट रहने पर जो होता है—क्रोध और आनन्द का जितनी आसानी से आविर्भाव और तिरोभाव होता है—महामाया भी उससे वंचित नहीं हैं। सारे संदेहों, अविश्वास और विराग के बाद कल्याणी के ऊपर अपार प्रसन्नता से उनका हृदय उछलने लगा। कल्याणी के सिर पर हाथ रख कर उन्होंने उसे आशीर्वाद दिया।

कल्याणीका हृदय भी भर उठा। अपने परिकल्पित उज्वल भावी कल के उत्तरदायित्वको ग्रहण करने में आज से ही वह व्यस्त है। उसके हृदय में अबाध शक्ति का एक स्रोत मानो रह-रह कर उछल पड़ता है। पूरे परिवार के आनन्द से उसका हृदय इतना भर उठा है कि उसकी आँखों में नींद नहीं आती। इतने बड़े एक उत्तरदायित्व को ग्रहण करने की उत्तेजना से वह काफी रात तक बिस्तर पर पड़ी करवटें बदलती रही।

इस मकान के दूसरे सभी सो गये हैं। गली आधी रातके अन्धकार से सायँ-सायँ कर रही थी। उसी अन्धकार को देख कर उसने अपनी दुनिया के भावी कल को जैसे अपने सम्मुख समेट लिया है।

....अवनी ने वकालत पास की--बहुत बड़ा वकील बन गया, शांताने मैट्रिक पास कर लिया--उसकी शादी हो गई, बिलू-मिलू इन्सान बन गये, इस सड़ी गली को छोड़ कर वे चले गये कहीं दूसरी जगह-अच्छे मुहल्ले में, अथवा अपना ही एक मकान हो गया। उसके बाद... उसके बाद क्या ? जीवन-रचना का और बाकी ही क्या रहा ? बोलो.... बोलो....बोलो ?

उज्ज्वल सम्पूर्ण परिकल्पना में न जाने फिर भी कहाँ कुछ कमी रह गयी है। अर्थ, श्रीसम्पदा—सामाजिक अवस्था का उन्नत परिवर्तन—सब के बाद भी न जाने कहाँ एक बड़ी शून्यता रह गई है। कल्याणी व्याकुल आँखों से ताक रही है--उस सुदूर आगामी कल की ओर : जहाँ उसका कर्म, उसका कर्त्तव्य, उसका स्वप्न--सब एक-एक कर के समाप्त हो गये। शेष है केवल उसका धू-धू करता हुआ जीवन....एक परित्यक्त प्रदेश के समान !

बगल के कमरे में एक वंशी बज उठी—बहुत दिनों बाद। अवनी की वंशी। बहुत दिनों बाद वंशी की ध्वनि सुन कर चौंक उठी कल्याणी। मुख उसका जैसे मुरझा कर रक्तविहीन हो गया। एक तरंगित स्वर जैसे तरल अग्नि-प्रवाह के समान उसके चतुर्दिक—उसकी श्रुति, स्मृति, सत्ता—सभी को घेर कर--तरंगित होने लगा। वह जैसे इस अन्धेरी गुफा के समान गली के भीतर एक आनन्द के महापिण्ड समान हृदय को विदीर्ण कर देने वाला चीत्कार हो ! जीवन की गरीबी और अक्षमता, घर का अन्धकार, दीवारें और ईंट-पत्थरों की बाधाएँ--उस पर अंकुश न लगा सकीं ! उसकी स्वर-लहरी जैसे फैल गई आकाश में, वायु में--अगनित ताराओं के आलोक में। विश्वव्यापी उस स्वर-तरंग के बीच में विस्मृत अभिज्ञान के समान जाग उठी हो जैसे युग-युगान्तर की स्मृतियाँ—वही गली, वही शहर--खो गये....छात्रा-जीवन की कोई आशा, कोई स्वप्न।....जैसे किसी जन्मजन्मातर की एक करुण, उदास तरंग काँपती

हुई आकर प्रवेश कर गयी कल्याणी की सम्पूर्ण सत्ता के कण-कण में ! इस वंशी के साथ-साथ केवल अवनी का विस्मृत छात्र-जीवन ही नहीं है—कल्याणी का भी सम्पूर्ण अतीत जैसे काँप रहा है हृदय के अन्दर। इसके बीच में उसके जीवन का कोई आशातीत स्वप्न और प्रत्याशा अत्यन्त करुण दृष्टि से देखते हुए जैसे उस के सामने आकर खड़ी हो जाती है।....एक चेहरा—नरेन का चेहरा ! जैसे बार-बार उसकी भनकती आँखों के सामने नाच उठता है। अत्यन्त शून्य, अर्थहीन प्रतीत होती है उसे अपनी भावी ज़िन्दगी, अन्तर की आशा, अन्तर की परिकल्पना ! अचानक उसे जैसे रुलाई आ गयी—लगा जैसे उसका व्यर्थ हो गया है सब कुछ....

बगल के कमरे में किस पूर्णता से बज उठी है अवनी की वंशी—बहुत दिनों बाद इस घर में जैसे कैसी एक शून्यता की वन्दना सिर धुन-धुन कर तड़पने लगी हो।

कुछ देर बाद रुक गयी वंशी।

फिर भी कान लगाये रही कल्याणी। बगल के कमरे से हलके अन्धकार के ही समान एक निराला गुँजन, रह-रह कर हो रही बातों के स्वर-इस कमरे में आकर जैसे साकार हो उठते हैं। कल्याणी की धुँधली आँखों में धीरे-धीरे चमक उठता है जाने कैसा एक अतृप्त उन्माद ! दबे पाँव वह आगे बढ़ी और अन्धकार में एक जगह ठिठक कर-खड़ी हो गयी। दिखाई पड़ रहा है भीतर का कमरा—कृपण के समान न जाने कहाँ से आकर एक ज्योत्सना भी घर में झाँक रही है। उसी धीमी-धीमी रोशनी में उसने देखा चिर परिचित एक युगल मानव-मानवी को—अनन्त रहस्य के आविष्कार में, छन्दों से उद्वेलित काव्य के समान, स्वप्न के समान !

किसने कहा—'तुम सुखी हो ?'....

किसने उत्तर में पूछा—'तुम सुखी हो?'....

फुसफुसाहट ने जैसे साँप के समान आकर जकड़ लिया हो। वह और खड़ी न रह सकी—उस के सर्वांग में जैसे आग जल उठी। दौड़ कर भाग आयी इस कमरे में।

वंशी अब फिरसे किसी अर्धरात्रि के स्वर में बज रही है।

कल्याणी ने कानों में उंगलियाँ डाल लीं। पर उसके जीवन में प्रेम नहीं—प्रेम उसके लिए पाप है। उसके जीवन का एक मात्र सुख आत्माहुति में है—इसके अतिरिक्त कुछ भी नहीं महामाया की बात याद कर सकरुण आँखों से उसने देखा फूलों की मालाओं से सजा कर रखी गई उस पैर की छाप की ओर। पागल के समान दौड़ कर दोनों हाथों से उसने उसे पकड़ लिया। मुख पर उसके जैसे हवाइयाँ उड़ रही हैं। उसके कण-कण में जैसे काँप रहा है एक हृदय-विदारक आर्तनाद! जैसे किसी असह्य यन्त्रणा से दोनों हाथो से मुख को ढक कर वह धीरे-धीरे सिसकने लगी। इस मकान का और कोई उठा नहीं, किसी की नींद टूटी नहीं। इस क्रन्दन के एक स्पन्दन ने भी किसी की सुखनिद्रा में कोई व्याघात उत्पन्न नहीं किया, कोई बाधा न डाली!

उसका हृदय चीत्कार कर उठा—'बोलो, बोलो—सब हो गया, सार्थक तुम्हारी सारी परिकल्पना हो गई और उसके बाद........अब?....बोलो, बोलो?

वंशी की खींची तान के ही समान इस घर में काँप उठी एक दबी सिसकी अन्धकार में!

सम्पूर्ण रात्रि की एक अपरिमित ग्लानिको लिये कल्याणी का भोर हुआ। सब कुछ को जैसे झाड़-फेंक कर वह उठ पड़ी। बार-बार स्मरण किया अपने कर्त्तव्य और उत्तरदायित्व की बात को—माँ का आशीर्वाद प्राप्त अपनी परिकल्पना की बात को। जितनी भी विस्मृत प्रत्याशाएँ हैं,

वे हृदय को विदीर्ण करती हुई भी विस्मृत ही बनी रहें इस जीवन में। अपने आप को ही बार-बार उसने समझाया—वह नयी मानवी है, नयी हैं उसकी कल्पनाएँ और नया है उसका लक्ष्य। शान्ताको पुकार कर बोली – 'तैयार रहना शान्ता। मैं टिफिन के समय आकर तुम्हें स्कूल में भर्ती करा आऊंगी।'

—:※:—

:१५:

आज भी कर्जन पार्क के उस एकान्त कोने में जो मौलश्री का पेड़ है और उसी प्रकार से फूल खिलते हैं और फिर झर जाते हैं। वहाँ केवल एक हृदय एक दूसरे हृदय की प्रतीक्षा करता था—किन्तु न जाने कब से यह सिलसिला टूट गया है! इस का वर्ष, दिन, तारीख किसी को याद नहीं।

★

मौलश्री के नीचे की इस कहानी को कल्याणी ने एक बार बलात् समाप्त कर दिया है। शान्ता, मिलू-बिलू की दीदी ने बार-बार सोचा है कि उस पर अनेकों दायित्व हैं। और इसी दायित्व ग्रहण करने से नारी-धर्म की गौरव उसमें कहाँ कम होता है। हृदय में भरे आदर्श मन ही मन कहते हैं कि उसका जीवन कठोर कर्त्तव्य-रत हो!

इसी बीच उसके आफिस के बेयरा नसीराम ने एक छोटा-सा पत्र लाकर उसके सामने रख दिया। सौगन्ध खाने पर भी धूमिल स्वप्न की तरह सब कुछ स्मरण हो आया।

वही मौलश्री वृक्ष की छाया, पार्क का एक कोना और प्रतीक्षारत एक हृदय। पत्र पर लिखे अक्षरों को पढ़ते ही कल्याणी के सामने सब कुछ साकार होकर नाचने लगा। उसका मुख धीरे-धीरे उदास हो गया। नरेन ने लिखा है---एक बार मुलाकात करने के लिए। कुछ जरूरी बातें कहनी हैं। वह उसी मौलश्री वृक्ष के नीचे प्रतीक्षा करेगा।

उन कई पंक्तियों की लिखावट की ओर देखकर अपने आप ही अपना माथा हिला कर बोल उठी—'न....वह नया मानव है। अतीत समाप्त हो गया है। खैर उसके सामने जीवन का नया पथ है। एक नयी परि-कल्पना है और वह अपने-आप को उसी में निःशेष कर देगी।'

रक्तशून्य पीला चेहरा धीरे-धीरे परेशान हो उठा। उसने उसी छोटे-से खत के एक कोने में लिख दिया—'असमव है, क्षमा करें। बहुत व्यस्त हूँ।'

कागज को मोड़ कर बेयरा के हाथ में देने के लिये मुड़ कर देखा तो वह चला जा चुका था। फ्लैट फाइल के एक कोने में उसे लगा कर अपने काम में व्यस्त हो गयी।

खट........खट........खट.......!

यंत्र के ही समान वह काम करती गई।

बाहर में उसकी कर्तव्य कठोर मूर्ति-किन्तु हृदय में उठ रहा है तूफान! टाइप-राइटर मशीन के ऊपर तनिक झुक कर खिड़की से एक बार न जाने कैसे आँखों ने देख लिया, पश्चिमी नीलाकाश का सूर्य ढल रहा है दिगंत में संध्या की स्निग्ध किरण सारा दिन जलते हुए आकाश के ऊपर झिल-मिल झिल-मिल कर रही है। बड़े साहब के दफ्तर में जो दीवार-घड़ी है उसमें अब पाँच बजने में अधिक देर नहीं है। उसने क्षण भर को लिए न जाने कैसे उसकी एकाग्र कर्त्तव्य दृष्टि को अपनी ओर खींच लिया। घंटा पड़ने के पहले जैसे हमेशा अपने चश्मे को पोंछ लेती है—उसी तरह आज भी पोंछ लिया गंभीर मन से।

सामने मशीन के ऊपर जैसे झुक आयी एक मोलश्री वृक्ष की छाया। किसके न जाने दो पैर आकर वहाँ खड़े हो गये।........इसके बाद चले गये....चले गये।...

मशीन अब भी चल रही है तूफान के समान। उसका हृदय काँप रहा है वेगवती सांसों से। उसकी सूखी आँखों में है वही रात की क्षुधार्त दृष्टि!

'मिसेस चटर्जी!' मिसेज़ हूवर ने पीछे से पुकारा।

कल्याणी ने आँख उठाकर देखा।

'शायद तुम्हारा कोई व्यक्तिगत कागज उड़ कर गिर पड़ा है।' मझोले उम्र की गंभीर महिला हैं हूवर फिर भी मुख पर रसिकता की दबी मुस्कान थिरकती ही रहती है। नरेन के हाथ की लिखी वह छोटी-सी चिट्ठी हूवर ने कल्याणी के आगे बढ़ा दी।

पता नहीं, फाइल के कोने पर से उड़ कर वह कब नीचे गिर गया था। कल्याणी का मुख और भी परेशान हो गया। हूवर भी हाथ से चिट्ठी ले कर अंगुलियों से मड़ोर-चमोर कर उसे रद्दी की टोकरी में फेंक दी बोली—'वह कुछ नहीं है।'

हूवर बोली—'वार्षिक रिपार्ट आज समाप्त हो जायेगी तो?'

'निश्चय अभी हो जायगी।'

'गुड और मेरी व्यक्तिगत रिपोर्ट?

'देखू, संभव हुआ तो उसे भी समाप्त कर दूँगी।'

हूवर कल्याणी के मुख की ओर अच्छी तरह देख कर सहृदय स्वर में धीरे-धीरे बोली—'आज रहने दो उसे। तुम खूब थकी जान पड़ती हो आज।'

'मैं कर सकती हूँ।' सिर को झकझोर कर जैसे कल्याणी ने सारी क्लांति दूर कर दी। आँखों में वही तेजोमयी दीप्ति! आज उसे काम चाहिए ही—उस सर्वनाशी संध्या के पाँच बजे के बाद भी उसे

काम चाहिए, आज वह काम की पंक्तियों का तूफान चाहती है अन्यथा हृदय के अदमनीय तूफान को वह दबा कर रख नहीं सकती।

'रहने दो, आज बहुत ज्यादा टाइप किया है।' हूवर ने हँसमुख चेहरा में मुस्कान भर कर जाने के लिए अपने पैर बढ़ा दिये। बोली—'केवल वार्षिक रिपोर्ट समाप्त कर देना।'

हूवर चली गयी। क्षण भर के लिए कल्याणी ने आँखें बंद कर लीं।

पीछे से बेयरे ने आवाज दी—'नरेन बाबू से क्या कह दूँ?'

कल्याणी जैसे चौंक उठी। आँखें मल कर देखा। बोली—'असंभव है। बहुत व्यस्त हूँ।' कह और किसी ओर न देख मशीन के ऊपर ही झुक पड़ी पुनः। मशीन निस्तब्धता को भंग करके जैसे कलरव कर उठी।

युगल विवश आँखें पुनः दीवार घड़ी पर जा अँटकीं। पाँच बजने में अब बाकी नहीं है।........पुनः उसकी आँखों में उसे मौलश्री वृक्ष की तस्वीर नाच उठी। फूल झर गये हैं चुपचाप। सिर को झकझोरा कल्याणी ने। मशीन चल रही है, आँधी की तरह उसकी गति बढ़ती ही जा रही है। उसके हृदय का स्पंदन तीव्र से तीव्रतर हो रहा है। ललाट पर पसीने की बूँदें और बड़ी-बड़ी होती जा ही रही हैं।

टन-टन-टन दीवारघड़ी ने पाँच बजाए! यह आवाज उसे ऐसी लगी जैसे कोई हथौड़ी से प्रहार कर रहा हो। एक अस्फुट वेदनाका शब्द उसके होंठों पर काँप उठा। मशीन रुक गयी। कुछ देर तक मशीन के ही ऊपर सिर झुकाये पड़ी रही कल्याणी। मुख पर उसे हवाइयाँ उड़ रही हैं। आँखें दोनों बंद हैं। फिर भी किसी अदृश्य पथ की ओर समाप्त हुए आफिसों की थकी मांदी भीड़ बढ़ रही है—उसी भीड़ में विलीन हो दो पैर बढ़ चले उस निर्जन एकांत मौलश्री वृक्ष की तरफ.... जहाँ फूल न जाने कितने दिनों से झर-झर कर गिर पड़े हैं. चुपचाप... और न जाने कितने दिनों तक झर-झर कर गिरते जायेंगे। कल्याणी

अब किसी दिन भी आफिस की छुट्टी के बाद उस स्निग्ध मौलश्री पेड़ के पास जाकर खड़ी नहीं होगी।—

कल्याणी से भेंट नहीं हुई!

नरेन ने आफिस के सामने कुछ देर तक कल्याणी की प्रतीक्षा की। कल्याणी निकलेगी तो उसके साथ हो जायगा।

आफिस के कर्मचारियों ने उसे पकड़ लिया। छँटाई के बारे में उससे हजारों प्रश्न पूछने थे।

'क्यों क्या कुछ खबर मिली?'

नरेन ने सूखे मुख उत्तर दिया—'ना अब तक नहीं मिली।'

फिर भी उत्सुक प्रश्न—

'कितने आदमियों की छँटाई हो रही है?'

'कुछ भी मालूम नहीं।'

'खबर आज ही मिल जायेगी तो?'

'कोशिश कर रहा हूँ।'

'तब तो कल आते ही निश्चय मालूम हो जायेगा?'

बस, केवल एक ही आग्रह, घुमा-फिरा कर। इतने इन्सान जैसे दुर्भाग्यके जुए में फँस गये हैं। किस की नौकरी जायेगी पता नहीं। सब के मुख पर अनिर्दिष्ट आशंका। उनके सहस्र उत्कंठित प्रश्नों ने जैसे नरेन को घेर लिया।

भीड़ से बचकर वह चला आया कर्जन-पार्क के उस मौलश्री वृक्ष के नीचे। प्रतीक्षा करने लगा अधीर आग्रह से। किन्तु क्षण पर क्षण.... अनेक क्षण बीत गये...और कल्याणी नहीं आयी।

फिर भी बोझिल हृदय से वह कुछ देर तक वहाँ खड़ा रहा।

मौलश्री के फूल झर-झर कर चुपचाप धरती पर गिर रहे हैं। उन्हें वह जूतों से अनमना-सा रौंदता गया। इसके बाद एक क्रुद्ध निःश्वास फेंक कर चला गया स्प्लेनेड की तरफ।

पुराने दिन अब नहीं है—वह यह जानता है। वह लगाव भी वह खींचना नहीं चाहता। किन्तु कल्याणी को दी गई अपनी छोटी-सी चिट्ठी का जवाब उससे न पाकर आज उसका हृदय अपरिमेय ग्लानि से भर उठा है।

वह अपने आप से केवल पूछता रहा—वह चिट्ठी पाकर कल्याणी ने उसे क्या समझा है?

कल्याणी के साथ निर्णयात्मक बातचीत हो जाने के बाद से मौलश्री वृक्ष के नीचे की वह कहानी समाप्त हो चुकी थी। तब से दोनों ने ही परस्पर को—एक दूसरे से दूर-दूर कर लिया है। इससे नरेन के मन में वेदना होने पर भी वह अतीत के उस बीते लगाव को फिर जोड़ना नहीं चाहता। इसकी तनिक भी उसे इच्छा नहीं है। जिस तरह दूर हट गयी है कल्याणी—ठीक उसी तरह नरेन भी। किन्तु आज उस चिट्ठी के ज़रिये जैसे उसकी भिक्षुक मूर्ति प्रकट हो गयी। कल्याणी ने जैसे उसे केवल अस्वीकार ही नहीं किया बल्कि आज उसे नितांत अपमानित कर के भी लौटा दिया।

सिर पर बोझ लादे वह घर लौट आया! आते ही घर के कोने-कोने को छान डालना शुरू किया....उसके घर में जहाँ कहीँ कल्याणी का कुछ चिह्न है। झट से सूटकेस खोल सबसे पहले उसमें से खींच निकाली एक फोटो। क्षण भर में ही उसे टुकड़े-टुकड़े कर डाले। इसके बाद सूटकेस को उलटने-पलटने लगा। कुछ चिट्ठियां मिलीं—कल्याणी के हाथ की लिखी। उन्हें भी फाड़ कर टुकड़े टुकड़े कर डाला! अब और कोई

ऐसी चीज़ न मिली जिसे इस तरह फाड़ कर टुकड़े-टुकड़े कर देता। चंचल हो कमरे में चहलकदमी करने लगा। वह पसीने-पसीने हो गया है। पाकेट से रूमाल निकाल कर मुहँ पोंछने लगा तो लगा जैसे उसकी आँखें जल उठी हैं—यह रूमाल भी एक दिन कल्याणी ने ही तैयार कर के दिया था। कोने में लाल सूते से लिखा —'न' याद हो आया—सूटकेस में ऐसे ही और कई रूमाल हैं। सूटकेस को उलट-पलट कर उन्हें भी निकाल लिया। जमीन पर उसकी चिता बना आग लगा दी। शव की ही तरह उन्हें उलट-पलट कर जलाने लगा—उसी आग में फाड़ दी गयी चिट्ठियों और फोटो के टुकड़ों को फेंक-फेंक कर जलाने लगा।

'नरेन बाबू!'

बाहर किसी ने पुकारा।

नरेन ने कहा—'आइये।'

एक अधेड़ व्यक्ति घर में घुस आया। आफिस के पुराने कर्मचारी हैं। मुख पर उत्कंठा की छाप थी।

नरेन ने पूछा—'क्या खबर है, अक्षय बाबू?'

अक्षय ने साग्रह पूछा —'छंटाई की लिस्ट के नामों का पता लगा?'

रूमालों, फोटो और चिट्ठियों के टुकड़े अब भी धाँय-धाँय जल रहे थे। उस आग की ओर एक टक देख कर नरेन को याद हो आया—जो हो कल्याणी के साथ कल मुलाकात करनी ही होगी। केवल इन लोगों के लिए ही......उसी समय उसके मन में आया, यूनियन के मंत्री के सभी कामों से इस्तीफा दे दे।

हृदय ने कहा—'दे दो।'

किन्तु कर्त्तव्य के मानव—हृदय ने दृढ़ स्वर में अदृश्य के उत्कंठित

मुख की ओर देख कर कहा—जी हो, कल पुनः मुलाकात करनी ही होगी !'

अग्नि-शिखाओं की ओर देखकर नरेन बोला—'कल—कल बताऊंगा अक्षय बाबू ! आज जान न सका ।"

'गरीब आदमी । खबर सुन कर घर में टिक न सका नरेन बाबू ।' अक्षय ने विचलित स्वर में कहा—'क्या मालूम किसके भाग्य में क्या है !"—

✻✻✻✻✻✻✻✻✻✻✻✻✻✻✻✻✻✻✻✻✻✻

:१६:

दूसरे दिन आफिस की छुट्टी के बाद नरेन आफिस के सामने खड़ा रहा—कल्याणी के निकलते ही उसे पकड़ेगा।

उस दिन कल्याणी उससे बचकर निकल न सकी। आमने-सामने पड़कर नरेन की ओर विवर्ण मुख से देखती रह गयी।

★

नरेन बोला—'कुछ बातें कहनी थीं तुम से कल्याणी! कल काफी देर तक तुम्हारी प्रतीक्षा करता रहा।' सहज भाव से, अपने को भी सहज करने की कोशिश करते हुए नरेन बोला,—तनिक हँसने की भी चेष्टा की। हँसा भी।

किन्तु कल्याणी काँप उठी—काँप उठा उसका गला। बोली—'क्या होगा उन पुरानी बातों को उठा कर।'

'निश्चय ही'—नरेन ने भी जोर देकर ही कहा—'पुरानी बातें पुरानी ही हैं। उन्हें उठाने की मेरी भी

इच्छा नहीं है। मैं अपनी उन पुरानी बातों को ही कहूँगा, इसीलिये बुलाया था, ऐसा तुमसे कहा किसने ?'

'तब ?'

अपने आप को जितना भी संयत करने की चेष्टा करती कल्याणी—उसी क्षण उसने नरेन को असहाय दृष्टि से देखा। वह अपने को शक्ति-हीन अनुभव कर रही थी।

नरेन पुनः सहज भाव से हँसा। बोला—'मेरे ऊपर अविश्वास मत करो, मैं पुरानी कोई भी बात तुमसे करने नहीं आया हूँ, अपने को सम्हालो कल्याणी! अब समझ रहा हूँ—दुनिया में सहज आदमी बनना ही शायद सबसे कठिन बात है।'

कल्याणी नरेन की ओर आँखें फाड़ देखती रह गयी। उस पुरानी बात को छोड़कर नरेन को क्या बात कहनी है। कल्याणी चुप चाप खड़ी रही।

नरेन बोला—'यह तो जानती ही हो कि हम सभी के सिर पर छँटाई झूल रही है—हाथ में सिर्फ दो दिन हैं। मेरे साथ व्यक्तिगत सम्पर्क भले ही मत रखो, किन्तु इस समय यूनियन की मीटिंगों में तुम्हें उपस्थित रहना चाहिए। सो भी तुम नहीं करती।'

कल्याणी सकपका रही थी। सूखे युगल होंठों को चाट कर कल्याणी बोली—'मुझे दूसरे-दूसरे काम रहते हैं।'

'रहने पर भी यूनियन के साथ सम्पर्क रखना उचित है।'

कल्याणी मौन हो गयी।

नरेन बोला—'छँटाई की लिस्ट तैयार हो गयी है। यह खबर मिल चुकी है। किन्तु नामों का अभी पता नहीं चला है। नामों की खबर तुम्हें लगानी होगी।'

'किन्तु मुझे तो कुछ भी पता नहीं।'

'यह क्या!' नरेन विस्मय के साथ बोला—'बड़े साहब के दफ्तर

में तुम हर वक्त रहती हो—तुम उसके पर्सनल स्टेनो के ही रूप में इस समय काम कर रही हो। तुम्हें मालूम नहीं!'

'नहीं तो!'

नरेन ने क्या सोचा। उसका मुख तनिक कठिन और गंभीर हो उठा। बोला—'नहीं मालूम होने पर भी पता लगा सकती हो क्या?'

'असंभव है—' कल्याणी सिर हिला कर संशय के स्वर में बोली—'वे अब भी मेरे ऊपर इतना विश्वास नहीं करते। सच्चे माने में पर्सनल स्टेनो बनने में अभी काफी विश्वासभाजन होना पड़ेगा।'

'ओ'—कह नरेन जैसे आघात खाकर अवाक् कल्याणी की ओर ताकता रह गया।

'मैं जा रही हूँ।' कल्याणी व्यस्त हो कर बोली—'बड़े साहब गाड़ी में बैठ गये, मुझे उनके साथ जाना होगा।'

नरेन को और कुछ कहने का मौका न देकर ही कल्याणी दनदनाती हुई चली गयी।

नरेन परेशानी के साथ काफी देर तक वहीं खड़ा रहा। घर लौटने वालों की भीड़ सामने से चली गयी। आफिस के बड़े साहब की गाड़ी धुआँ उगल कर चली गयी—पलक भरके लिए कल्याणी दीख पड़ी। कितने ही सहयोगियों की नरेन पर नजर पड़ी तो आ जुटे छँटाई की खबर जानने के लिए। किन्तु अन्यमनस्क भाव से नरेन ने उन्हें क्या उत्तर दिया, खुद वही नहीं समझ सका।

उसे केवल अनुभव होने लगा, परिवर्तन हो गया है—केवल समय में ही नहीं—मनुष्य में भी। व्यक्तिगत सम्पर्क तो दूर की बात है, कार्य-क्षेत्र में भी कल्याणी आज दूर हो गयी है।

कल्याणी पहले के ही समान नरेन की निसीमा से आँखें बचा कर चलने लगी। एक ही आफिस में नौकरी करने पर भी उसके साथ भेंट-मुलाकात का नरेन को किसी दिन मौका नहीं मिला। आफिस शुरू होने

के पहले ही आकर बड़े साहब के कमरे में घुस कर वह बैठी रहती है। टिफिन में बाहर नहीं निकलती। आफिस से छुट्टी होने पर किसी-किसी दिन वह साहब की ही गाड़ी से चली जाती है। यूनियन की मीटिंग के पास फटकने भी नहीं गयी।

इस दुराव का कारण नरेन समझ न सका। कहाँ कितनी दूर जायेगी कल्याणी! मन ही मन बोला—'चूल्हे में जाय वह। उसकी किसी व्यक्तिगत बात को भी अपने मन में प्रश्रय नहीं देगा।'

इस आफिस में छँटाई अब अफवाह नहीं है। युद्ध का परवर्ती मंदा बाजार है, अब भी पहले की तरह इसमें चोरबाजारी का भूखा महालोभ मिट नहीं रहा है। अन-मुनाफे की कड़ी ठीक रखने के लिए मन्दा मुनाफे की दुहाई देते हुए छँटाई चलने लगी। फाटकी बाजार में भीड़ कम हो गयी है—छोटे-मोटे बैंकों के दरवाजों पर ताला बन्द हो गया। एक तरफ सब कुछ व्योप् व्यक्तियों का आशीर्वाद था तो दूसरी तरफ छँटनी किये गये कर्मचारियों के प्रदर्शन पर प्रदर्शन और गगनभेदी नारे बढ़ते जा रहे थे। यह सभी मिल कर महानगरी का दिन जब जैसा कठिन और दुर्मिल होता जा रहा था वैसे, ही अशान्त भी।

असवार्ट कम्पनी पर भी वह काली छाया आ पड़ी थी, छटनी से पहले ही पोस्टर लग गये हैं।

लाल, काले मोटे मोटे अक्षरों में इस आफिस के लम्बे मुनाफे के अङ्कों को अङ्कित कर दिया गया है। बड़े-बड़े कण्ट्राक्ट और उसके मोटे मुनाफे की दर रँगे हाथों तारीख के साथ। छँटाई के पहले से ही उठ चुकी है बोनस की माँग। भर गयी हैं आफिस के प्रांगण की दीवारें। उधर प्रत्येक टेबिल के पास गरम-गरम आवाजें—काम के बीच-बीच में ही फुस-फुस उठ रही है। भीरु दुश्चिन्ताएँ और गरम रक्त की चुलबुली—दाँतों की कटकटाहट शुरू हो गयी है। यूनियन की मिटिंगें भी तावड़तोड़ रोज होती हैं।

इसके बाद एक दिन छँटाई की लिस्ट भी निकल गयी। लिस्ट असम्पूर्ण थी अर्थात् अभी और भी छँटाई होगी।

टिफिन में सभी जमा हो गये।

'स्ट्राइक! अभी तुरन्त। कलम बन्द।'

प्रथम उत्तेजना का विस्फोट हुआ।

नरेन शान्ति के साथ बोला—'सब की राय होगी तो स्ट्राइक होकर रहेगी।'

एक नौजवान समर नामक क्लर्क कुर्ते की बाहें चढ़ाते हुए बोला—'आप क्या समझते हैं, इस अन्याय के खिलाफ सभी एकमत नहीं होंगे?'

'मैं कुछ भी नहीं समझता समर'—नरेन तनिक हँस कर उससे बोला—'यूनियन की मीटिंग में बातचीत कर सबकी राय लेकर जैसा होगा किया जायेगा। इसके अतिरिक्त यह भी याद रखना होगा—इस आफिस की शाखाएँ-प्रशाखाएँ पूरे भारत में फैली हुई हैं। उनकी भी खबर रखनी होगी।

समर असहिष्णु स्वर में बोला—'तब तक तो हम लोग मर कर भूत हो जायेंगे।'

'धीरे-धीरे समर!' नरेन ने कहा—'यह तो ठीक है। संभव है, आप के ही जो परम आत्मीय हैं, वही हड़ताल में हिस्सा न लेना चाहते हों।'

नरेन जिज्ञासु दृष्टि से उसकी ओर देखते हुए बोला—'मतलब!'

नौजवान बोलता गया—'छँटाई की लिस्ट जिस घर में तैयार हुई थी, परामर्श कर—उसकी कोई बात उन्हें मालूम न हो सकी पहले। किन्तु आफिस के आठ घण्टों में दस घण्टे तक तो वह बैठी रहती है उसी कमरे में!'

यह इशारा कल्याणी की ओर था—और यह इशारा कितना गंदा रूप भी ले सकता है वह पहली बार समझ सका।

कल्याणी के साथ उसकी आत्मीयता और बन्धुत्व है, यह बात इस आफिस के किसी नये कर्मचारी से भी छिपी नहीं है, किन्तु इसके बाद कैसी मर्मान्तिक घटना घटी है यह उनमें से किसी को ज्ञात नहीं है। यह सबके जानने की बात भी नहीं। इसीलिये इस प्रसङ्ग के कारण नरेन के हृदय पर जो नीरव आघात लगा उसे उसने चुपचाप बर्दाश्त कर लिया।

अक्षय बाबू बोले—'अरे किस-किस की छँटाई होगी, कौन जाने! सब नामों का तो पता ही न चला।'

नरेन बोला—'मालूम होता है, वह कंपनी के हाथ की भीतरी चाल है। हड़ताल शुरू होने से चुन-चुन कर लोगों को कोप का भाजन बनाया जायेगा।'

समर पुनः ऐंठ कर बोल उठा—'अतः होशियार हो जाओ—हड़ताल के चक्कर में कौन पड़ेगा—पड़ो! मरोगे।'

'नहीं, मैंने ऐसा नहीं कहा।' नरेन दृढ़ स्वर में बोला—'तुम बहुत अनाप-सनाप बक रहे हो। मीटिंग के पहले कोई भी अंट-संट बात मत बोलो।'

'क्या, आप धमकी देकर मुँह बन्द कर देंगे?'—नौजवान कर्मचारी और भी जोर-जोर से कूदने लगा—'जानते हैं आप, यह मेरा जनतांत्रिक अधिकार है—'

अक्षय बाबू के समान कुछ अधेड़ लोग उसे धकेलते हुए पकड़ कर टिफिन-घर के बाहर ले गये।

इस प्रसङ्ग की यहीं समाप्ति तो हो गयी, किन्तु फिर भी इस में चोट लगने की जो बात है उससे तिलमिला कर उसी क्षण नरेन ने पुनः

कल्याणी के पास एक चिट बेयरा के हाथ भेज दिया--ताकि आफिस के बाद वह जरूर-जरूर उससे मुलाकात करे।

इसके बाद आफिस की छुट्टी होने पर वह प्रतीक्षा करने लगा। एक एक कर क्षण पर क्षण बीत गये। आध-घंटे के बाद आँख उठाकर-कल्याणी बड़े साहब के साथ-साथ आफिस से निकल उसकी मोटर पर चली गयी जैसे भूल कर भी नरेन पर उसकी आँखें न पड़ीं। दिन भर की संगति छुटाई और हड़ताल की दुश्चिंता और इसके ऊपर से इतना बड़ा अपमान लेकर वह घर लौटा। मन ही मन वह बेचैन हो उठा। आज की घटना को लेकर कल्याणी का चेहरा जितनी बार याद आया, उससे उसकी उत्तेजना की अग्निने सुदीर्घ वर्षों की अन्तरंग कहानी को धक्का दिया।

अतीत की स्मृति में भी एक आनन्द होता है, किन्तु वही उसके लिए जैसे कोई अभिशाप और ज्वाला ढोकर लायी है। क्षोभ, क्रोध और अपमान से वह अस्थिर हो उठा। उसके मनमें केवल यही भाव उठने लगा-वह प्रवंचित है। बहुत सुन्दर-बहुत महान् आज तक जिसको समझता रहा है वह अत्यंन्त क्षुद्र है, अत्यन्त निष्कृष्ट एक स्त्री मात्र है। शिक्षा, विद्या और समय उसमें तनिक भी परिवर्तन नहीं ला सके। वह चिरकाल की छलनामयी स्त्री है। उसके सामने वह प्रवंचित ही नहीं है, लांछित और अपमानित भी है।

: १७ :

नगेन के प्रति जितनी भी प्रवंचना क्यों न हो, परिवार के लिए एक नवीन जीवन की रचना की कल्याणी की योजना में तनिक भी प्रवंचना नहीं थी। अपनी सम्पूर्ण आशा और कामना को जबर्दस्ती अपनी नवीन योजना के साथ उसने बाँध रखा है।

★

आफिस और घर-इसी के बीच जीवन का रोटीन बना लिया है।

कार्पोरेशन के निःशुल्क स्कूल को छोड़कर एक अच्छे अंग्रेजी स्कूल में मिलू-बिलू ने नाम लिखवा लिया है। उनकी दीन मलीन पोशाकों के बदले नयी पोशाकें बन गयी हैं। वे कल्याणी की नयी योजना की अभिव्यक्ति हैं—नवीन परिवर्तन से वे बड़े खुश हैं। केवल शांता ही सर्व प्रथम मुख भारी कर कल्याणी की नवीन जीवन-रचना की योजना के विरुद्ध विद्रोह कर बैठी।

महामाया से शांता बोली—'मैं अब नहीं पढ़ूँगी माँ।

महामाया बोली—'तुम्हारी दीदी पढ़ाना चाहती है, फिर पढ़ोगी क्यों नहीं ?'

शान्ता ने उत्तर दिया—'अब मुझे पढ़ना अच्छा नहीं लगता।'

महामाया बेटी के भावी जीवन का सुख देखती है। बोली—'कुछ पास कर लेने से अच्छे घर में विवाह हो सकता है। जिस समय की जैसी प्रथा बेटी।'

शांता बोली—'तुम जो पसंद कर दोगी वही मुझे पसंद होगा माँ। वही मेरा भाग्य होगा। इस विद्या से मन मोह लेने के बिना भी मेरा काम चल जायेगा।'

महामाया बहुत खुश हुई। यह लड़की उनकी ही शिक्षा से बड़ी हुई है, इस से उनका हृदय भर उठा। सुधा की ओर देख कर हँसकर बोलीं—'सुनो इसकी बात। किन्तु बात ठीक ही कहती है। हमारे माँ-बाप ने अपनी पसंद से ही विवाह कर दिया था, तो क्या हम लोग जल मर गये ?'

लड़के—लड़कियाँ अपनी पसंद से शादी करते हैं—और इस सम्बन्ध में महामाया का मत—इसके जरिये सुधा को खोंचा देने की इच्छा महामाया की न थी, फिर भी क्षण भर के लिए सुधा का मुख विवर्ण हो उठा। वह मौन बनी रही।

महामाया फिर बोली—'माँ-बाप ने जो दिया है, उसे ही स्वीकार कर लिया है, इसी में हमें सुख और शांति थी।'

सुधा डरती-डरती बोली—'फिर भी पढ़ने का इतना बड़ा सुअवसर है—संभवतः बाद में जीवन के बहुत काम आ सकता है। इसके अलावा कितनी चीजें जानने योग्य हैं—'

शांता ने जैसे बहुत दिनों से सोच रखा था—कही बात उसके मुँह से झट से निकल पड़ी—'विद्या की कीर्ति तो घर में ही देख रही हूँ भाभी ! मुझे इसकी जरूरत नहीं है।'

संभव है यह बात शांता के मुँह से यों ही निकल गयी थी किन्तु उसके कहने की भंगिमा से अचानक जैसे कोई गूढ़ अर्थ निकल पड़ा। महामाया गंभीर हो उठीं—सुधा के मुँह से तो कोई बात ही न निकली।

शांता बोली—'तुम दीदी से कह दो माँ, मैं अब पढ़ूँगी नहीं—बस।'

दोपहर को हो रही इस बातचीत के समय कल्याणी घर में न थी। बाद में महामाया के मुंह से शांता के मन की बात सुन कर अचानक जैसे वह स्तंभित हो उठी। मुरझाये मुख से महामाया की ओर देखा। धीरे-धीरे बोली - 'मेरी समझ में कुछ भी नहीं आ रहा है मां। इतना खटखूट कर मैं मर क्यों रही हूँ? क्यों इसे पढ़ाना-लिखाना चाहती हूँ—यह समझ न सकी! अच्छा, उसे बुलाओ—मैं अच्छी तरह समझा देती हूँ।'

सुधा ने बाधा दे कर रोक दिया। शिक्षा के बारे में शान्ता की वह अर्थपूर्ण भंगी में कही बात उसे याद आ गयी। उसे भय मालूम हुआ—कलमुँही शांता कुछ और न बक डाले जिससे दिन भर आफिस के कामों से थक कर आई कल्याणी के हृदय का आघात और बढ़ न जाय। सुधा बोली—'पढ़ने की उसकी इच्छा नहीं है—फिर उसके पीछे रुपये बर्बाद करने की क्या जरूरत है कल्याणी दीदी!'

कल्याणी हताश क्षुब्ध स्वर में केवल बोली—'वह मुझे समझ न सकी!'

सब को दबा देने के अभिप्राय से सुधा बोली—'समझेगी क्यों नहीं तुम्हें। किन्तु सभी क्या सब कुछ समझ पाते हैं?'

'कम से कम समय के साथ-साथ तो चलेगी! क्या वह साड़ी-ब्लाउज से ही अपने को सजा-सँवार कर आधुनिक बन कर बैठी रहेगी—और कुछ नहीं!' कल्याणी बोली—'बाबू जी कहते थे—'

अब तक महामाया चुपचाप रसोई घर में हाथ का काम करती जा रही थीं और सुने जा रही थी। कल्याणी को रोक कर बोलीं—'घर-गृहस्थी

का ही काम उसे सीखने न दो बेटी—बिलू-मिलू तो अभी हैं—बल्कि उनकी ओर अच्छी तरह नजर दो।'

कल्याणी रुक गयी। इसके बाद सुधा की ओर देख कर बोली—'भैया ने क्या तुम से कुछ कहा है भाभी? अर्थात् मैंने कानून पढ़ने की जो बात कही थी—'

सुधा को इस बारे में भी एक संदेह था! इसीलिये डरते-डरते बोली—'उनसे पूछूँगी दीदी?'

'पूछ लेना। मैं सब के लिए मर रही हूँ सोच-सोच कर।'

किन्तु अवनी भी क्या कहेगा जैसे सुधा मन ही मन यह भी जानती है। यह लड़की एक और आघात खायेगी—यही बात बार-बार उसके हृदय में उठने लगी। किन्तु किस तरह उसको ओट में करेगी, समझ न सकी। फिर भी सब कुछ को अपनी मधुर हंसी से उड़ा कर बोली—'तुम्हारा पढ़ाने का उत्साह देख कर मेरी ही पढ़ने की इच्छा हो रही है दीदी। किन्तु मुझ जैसी मूर्खा को एक बार भी नहीं कहा।'

कल्याणी उत्साह के साथ बोली—'सच? पढ़ोगी तुम भाभी? समझोगी, मैं कहती हूँ एक दिन समझोगी!'—

'यह मुझ से अधिक कौन समझता है दीदी!' सुधा हँस कर बोली—'इसीलिये तो कह रही थी शांता को...अपनी ही बात सोच कर तो।'

बात की मोड़ घूम रही है—घूम रही है, अंत में नयी बहू सुधा की पढ़ाई को लेकर। कैसी न जाने एक विरक्ति दिखायी पड़ी इसमें महामाया को। बोली—'बहू-बेटी का पढ़ना-लिखना ही क्या, न पढ़ना-लिखना ही क्या! आज गोद सूनी है, कल भर जायेगी, इसके ऊपर से रसोई-घर का बोझ। फिर सब की सेवा करने की बात तो अलग रही।'

कल्याणी और सुधा ने आँखों ही आँखों से एक दूसरे को देखा, गुप-चुप न जाने आँखों-आँखों से ही उनमें क्या बात हो गयी। महामाया ने

उनकी ओर आँखें घुमा कर देखा भी नहीं। बक-बक करने लगीं—प्राचीन युग की बहू-बेटी के आदर्श जीवन को लेकर।

कल्याणी धीरे-धीरे बोली—'अच्छा भैया से पूछना भाभी! भर्ती होने के रुपये मैं तुम्हारे हाथ में दे दूँगी।'

अवनी को जैसे दूसरा आघात लगा! जिसका अनुमान सुधा को पहले ही हो चुका था। अपनी वकालत पढ़ने की बात उठते ही अवनी झुंझला उठा बोला—'यह क्या, मुझे मिलू-बिलू में शामिल कर लिया क्या!'

सुधा बोली—'नहीं-ऐसा क्यों किया जायेगा।' किन्तु आगे क्या कहेगी यह वह समझ न सकी। अवनी के असहिष्णु भाव को देखकर वह रुक गयी।

अवनी को जो बात चुभ रही है वह है उसकी उपार्जन की अक्षमता उसके ऊपर से कल्याणी का घमंड उसे और चुभ रहा है, खास कर नयी पत्नी सुधा के सामने। उस दिन कल्याणी के घमण्ड को वह बर्दाश्त न कर सकने के कारण उठ कर चला गया था। परिवार में उसकी मामूली एजेण्टी का रोजगार जिस प्रकार छोटा है, उसी तरह अनिश्चित भी। इससे वह मन ही मन जिस तरह सकुंचित रहता है उसी तरह सजग भी। उसके मुकाबले में कल्याणी की नौकरी बड़ी थी—उसपर से नई तरक्की और वेतन वृद्धि और आखिर में उसकी इच्छा के विरुद्ध शान्ता, मिलू और बिलू की पढ़ाई के साथ अवनी भी कानून की पढ़ाई चालू करने के प्रस्ताव ने जैसे संसार के सामने उसे इतना ओछा कर दिया है! नई पत्नी सुधा के सामने तो और भी अपने व्यक्तित्व को समाप्त कर देने के लिए वह तैयार नहीं। फलतः उस दिन की घटना के बाद से मन ही मन व्यक्तित्व और उपार्जनगत अक्षमता का भयंकर द्वंद्व अस्थिर हो चला था। आज सुधा ने फिर यह प्रस्ताव रखा, त्यों ही वह अपने को

किसी प्रकार भी संयत न रख सका। उसका सहज आवेग पूर्ण रूप से प्रकट गया हो गया।

अवनी सुधा के सामने खड़े होकर बोला—'दुःख-कष्ट उठाने के लिए तुम तैयार हो – यह बात एक दिन तुमने कहा था याद है ?'

सुधा डर कर बोली—'यह बात पूछ क्यों रहे हो ?'

'कुछ दिन से एक बात सोच रहा हूँ सुधा !' कहकर अवनी अशांत हो कर पूरे घर में चहलकदमी करने लगा।

सुधा की आँखें भय से भर गयीं। वह मुँह लटका कर बोली—'क्या सोच रहे हो ?'

अवनी अशांत हो कर बोला—'हाँ अब मुझे अच्छा नहीं लगता है सुधा !'

'मुझे भी नहीं।' सुधा सहसा बोल उठी—

यहाँ सचमुच सुधा को भी अच्छा नहीं लग रहा था। अवनी की कम आमदनी से कल्याणी का आश्रय उसे भी अच्छा लगता हो, सो नहीं था। उससे अधिक उसकी अपनी असमर्थता उसे खलती थी। प्रति क्षण यही मन में आता कि वह जैसे कल्याणी के ऊपर जबर्दस्ती लदी हुई है। इतना ही नहीं, परिवार की बहू होने पर भी कभी किसी बात को कहने-सुनने पर तरह-तरह से उसका विरोध होता और तरह-तरह के आघातों से उसके अपने जीवन का माधुर्य जैसे सूखता जा रहा है।

सुधा धीरे-से बोली—'इस घर में जैसे सब उखड़ा-उखड़ा-सा छिन्न-भिन्न है। यहाँ किसी से जैसे किसी का मेल नहीं है। मैं तो कोई कुल-किनारा नहीं पाती इसमें।'

'बचपन से मैं यही देख रहा हूँ—यह जैसे इस मकान का अभिशाप है !' अवनी बोला—'इससे अच्छा है, चलो भाग चलें, यहाँ से—जहाँ भी हो, दुःख-कष्ट से जान बचे। यहाँ तो जैसे रोज ही यंत्रणा मिलती है, रोज ही अपमान सहना पड़ता है।'

उसकी यह मन्त्रणा सुधा भी हृदय में अनुभव करती है। चुपचाप वह अवनी के शरीर से सटी हुई खड़ी रही।

अवनी बोला—'जहाँ तक मैं जानता हूँ और सुना है उससे तो मैं देखता हूँ—इस घर में कहीं भी सुख नहीं है। किसी का स्वभाव किसी से भी मेल नहीं खाता।'

किन्तु यह दुराव क्यों है अथवा यह दुराव ही इस संसार का आधार है—इस बात का कोई स्पष्ट उत्तर अवनी की बात में नहीं है; फिर भी उसकी बातों से सुधा जितना समझ सकी है, वह है—अवनी का सहज आवेग—सुख के लिए, शांति के लिए, जिसको सुधा अपने बीस-इक्कीस वर्ष के अनभिज्ञ निर्बोध, आवातुर जीवन में बड़े महत्व का स्थान देती है। महामाया के आश्रय में दुख की जो चरम सीमा देखी है—वहाँ से किंचित सुख, किंचत शांति के लिए उसने जो अपनी कल्पना की है, उसका अन्त नहीं!

अवनी बोला—'कुछ दिन के लिए अगर तुम अपने मौसा के घर चली जाओ तो मैं इसी बीच कुछ कर लेने की चेष्टा करूँ।'

सुधा म्लान मुख से बोली—'अच्छी बात है, यही करो। किन्तु तुम्हारी बहनें और माँ—ये लोग क्या सोचेंगी?'

'वे धनी हैं—मैं गरीब हूँ, वे भाग्यवान हैं, मैं भाग्यहीन हूँ।' अवनी का वही सीधा, सरल आवेगपूर्ण कथन था।

इस आवेग के सामने सुधा बैठी रह गयी मूक की तरह!

उसके दोनों हाथों को दबा कर अवनी बोला 'दुख-कष्ट रहने दो, उन्हें मैं बड़ा नहीं मानता। फिर भी इसी के अन्दर क्या तुम तनिक सुख नहीं चाहती, बोलो?'

'चाहती हूँ।'

'तनिक शांति नहीं चाहती?'

'जरूर चाहती हूँ।'

'याद है, विवाह के पहले तुमने एक दिन कहा था—'रुपया ही क्या सब कुछ है !'

'याद है। यह मैं हमेशा ही कहूँगी।'

'कहो, आँधी-झंझा के बीच भी तुम चिर दिन यह बात कहो।' अवनी उच्छ्वसित होकर बोला—'यही मेरा मूलधन है सुधा, यही मेरे हृदय का साहस है ! इस अभिशप्त मकान को त्याग कर चले जाने से संभव है हम लोग इस रुपये से भी महान् चीज को ढूँढ़ पायेंगे। यहाँ तो सभी जैसे विषाक्त हो उठा है !'

उस धन,दौलत-सी बड़ी चीज की प्राप्ति होगी कि नहीं—यह सुधा को मालूम नहीं, तब भी अवनी जैसे अपनी आवेगमयी तीव्र तरंगों में सुधा को बहा ले गया।

अंधकार में सुधा टुकुर-टुकुर आँखें फाड़े ताकती रह गयी। उसे नींद न आयी। केवल सोचती रही—क्यों नहीं मिलेगा सुख, क्यों नहीं मिलेगी शांति, क्या उसके जीवन के सपने एकबारगी व्यर्थ हो जायेंगे ?

यह उसकी आत्मसुखान्वेषी स्वार्थपरता मात्र ही नहीं है। हजारों दुःखों के बीच भी उसने अनेक स्वप्न देखे हैं—स्वप्न का एक पूर्ण जगत् स्थापित किया है उसने इस संकीर्ण गली के मकान के एक कोने में बैठे इस एक पुरुष को अपना अवलम्ब मान कर। बहुत दिनों के बाद, बहुत दुःख-कष्टों के बाद, यह पुरुष उसके जीवन में सत्य बन कर आया है, इसीलिये उसका जगत् आज आनंद से गूंजित हो उठना चाहता है। किन्तु यहाँ अवकाश नहीं है। उगे उसके आनंद का स्पंदन नहीं है, जीवन का स्वप्न नहीं है और जैसे साध नहीं है मन में। जैसे किसी अवरुद्ध परिधि में आबद्ध हो कर उसका सब कुछ सूख गया है। इस परिधि से भाग आने के लिए उसका हृदय जैसे छटपट-छटपट कर रहा है—वह यहाँ अपने को केवल अपराधिनी-सी समझती है।

———

✽✽✽✽✽✽✽✽✽✽✽✽✽✽✽✽✽✽✽✽✽✽
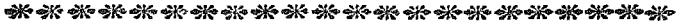
: १८ :

कल्याणी मुरझा-सी गयी।
शांता और अवनी ने उसकी
योजना को स्वीकार नहीं किया।
उसके उदास-खिन्न मुख की
ओर देख कर सुधा को स्मरण हो
आया—उसका आग्रह और आवेग से
परिपूर्ण उस दिन का वह उदीप्त मुख!

★

सुधा बोली—'अपने मन के मुताबिक मिलू—
बिलू को आदमी बनाओ, कल्याणी, दीदी—
इस साधारण-सी बात से निराश मत हो जाओ।'
यह बात कितनी भी साधारण क्यों न
हो कल्याणी को भारी आघात लगा है। सुधा
की सांत्वना से कल्याणी खिन्न हँसी से हँस पड़ी,
बोली—'मेरी आशा और आग्रह को कोई भी
समझ न सका भाभी? खट-खूट रही हूँ किनके
लिए? तुम्हीं लोगों के सुख के लिए मैं चिन्ता करती
हूँ—इसी में मुझे आनन्द मिलता है।'

कल्याणी के मर्माहत मुख की ओर देख कर सुधा और कुछ बोल न सकी।

कल्याणी बोल उठी—'भैया अचानक बदल गये!....किन्तु पहले ऐसे नहीं थे।'

सुधा संकुचित-सी खड़ी रह गयी। कल्याणी की असंतुष्टि उसे चुभ रही है। उसे लगता है, जैसे उसी ने आकर एक मनुष्य को एक बारगी उलट-पलट दिया है। सुधा बोली—'किन्तु मैंने तो उन्हें बहुत समझाया दीदी।'

कल्याणी एक दीर्घ निःश्वास फेंक कर बोली—'कोई नहीं समझता है, समझे। किन्तु मैं निराश न होऊँगी।' जैसे क्षण भर के लिए वह अन्यमनस्क हो उठी। मन को सांत्वना दी—'जो हो, मिलू-बिलू का जीवन तो है। एक उज्ज्वल भविष्य उनके जीवन के सामने मुस्करा रहा है।' कलाकार अपने द्वारा निर्मित मूर्ति को जिस तरह आग्रहपूर्ण दृष्टि से अपलक देखता रहता है, उसी तरह कल्याणी भी खिन्न मन से अपने द्वारा चित्रित एक उज्ज्वल भविष्य की ओर ताक रही थी। उसी अदृश्य चित्र की ओर एकटक देख कर जैसे आत्मविभोर हो कर वह पुनः बोलीः—

'नहीं, मैं निश्चय निराश ही नहीं होऊगी।'

इस के बाद कल्याणी बिलू-मिलू की ही चिन्ता में पड़ गयी।

छोटे-से परिवार की परिधि, सुरंग के समान यह अन्धकार-पूर्ण गली—प्रतिदिन रोटीनके अनुसार स्कूल जाने और घर की चहार-दीवारी के अन्दर बिलू-मिलू को बन्द न रख कर निकल पड़ी कल्याणी उनको लेकर चिड़ियाखाना और अजायबघर के लिए। यह जैसे उसका विश्वभ्रमण ही हो—देश-देशान्तर और हजारों वर्षों की सभ्यता के लुप्त-प्राय अवशेषों के साथ उन्हें परिचित करा कर स्वयं भी जैसे वह आत्म-हारा हो गयी। बिलू-मिलू को खींच ले गयी अपने कमरे में। मन देने

लगी उनकी पढ़ाई-लिखाई की ओर। सोचने लगी किसी मिशनरी मास्टर से उन्हें अंग्रेजी सिखाने के बारे में, और स्वयं भी अपनी आशा-आकांक्षाओं से परिपूर्ण हजारों कथा-कहानियों से उन के मन को भर दिया।

एक दिन पूछा बिलू से—'अच्छा बिलू, बड़े हो कर तुम क्या बनोगे, बताओ तो देखूँ ?'

'बाबूजी की तरह मास्टर बनूँगा।'

बिलू के उत्तर से कल्याणी आज खिन्न हो उठी। साधारण स्कूल-मास्टर के नगण्य जीवन से काफी ऊँचे स्तर पर है आज उसकी कल्पना का स्वर। कल्याणी बोली—'नहीं, मास्टर क्यों बनोगे !' स्कूल-मास्टर का जीवन बड़े दुःख का जीवन होता है।'

बाबूजी का मुख जैसे क्षण भर में ही आँखों में मुस्कुरा उठा। उस लांछना और दरिद्रता के जीवन को वह आज स्वीकार नहीं कर पा रही है।

बिलू दीदी के स्तब्ध ध्यानस्थ मुखकी ओर देख कर बोला—'तब !'

कल्याणी धीरे-धीरे बोली—'विलायत जाओगे, विदेश से ऊँची डिग्री ले कर आओगे-और तुम बनोगे भारी इंजीनियर अथवा डाक्टर।'

मिलू बोली—'और मैं ?'

कल्याणी उसी तरह ध्यानस्थ दृष्टि से जैसे सुदूर भविष्यत् की ओर देख कर बोली—'तुम भी विलायत जाओगी—संभव है बहुत से लोग बाधा डालें, फिर भी मैं तुम लोगोंको भेजूँगी।'

'इसके बाद क्या करूँगी दीदी ?'

'एक किताब लिखोगी....लिखोगी इस देश की लड़कियों के भाग्य की बात। कितने कष्टों, कितनी बाधाओं को सह-सह कर वे मनुष्य बनती हैं, और कितने दुःख से उनका जीवन बीतता है !' कल्याणी बोली—'याद करोगी तब अपनी दीदी की बात, उसने कितने कष्टों में अपना जीवन कैसे बिताया है।'

बिलू बोला—'वाह ! मैं डाक्टर बन जाऊँगा तब तुम्हें कोई कष्ट क्यों होगा दीदी ?'

'होगा नहीं ?' कल्याणी अकबका-सी हँस पड़ी। बोली—'अच्छा नहीं होगा। तुम लोगों के आदमी हो जाने पर दुःख-कष्ट फिर क्यों होने लगा ?'

झलमल कर उठा कल्याणी की आँखों में कब का वह उसका खोया जीवन ! गंगा के पार—घाट के किनारे ही छोटा-सा एक मकान, जीवन में पर्याप्त अवकाश और आनन्द....और किस की न जाने वह संगीत की चर्चा !....

वह दिन और यह दिन ! भविष्य के गर्भ में और भी किसी एक दिन !.......चमकते हुए सूर्य की किरणों-सा प्रकाशित।

मन ही मन सिर को झकझोर कर कल्याणी बोली—'नहीं, वह हार नहीं स्वीकार करेगी। सम्पूर्ण जीवन देकर भी वह अपनी कल्पना को सत्य का रूप देगी ही।'

:१६:
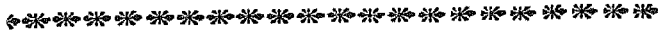
दूसरे दिन आफिस में घुसते
ही कल्याणी एक छोटी-मोटी भीड़
के सामने रुक कर खड़ी हो गयी।
भीड़ को भीतर से ठेल-भेल कर
निकल आया वही नौजवान कर्मचारी
समर। शर्ट की आस्तीनें उठी हुईं—
एक हाथ में कागज दूसरे में कलम।
कल्याणी के सामने हाथ बढ़ा कर बोला—
'दस्तखत कीजिये।'

'क्या बात है?' कल्याणी ने देखा चकित
दृष्टि से।

समर बोला—'हड़ताल के लिए दस्तखत
एकट्ठा किया जा रहा है। छंटाई का मुँहतोड़ जवाब
देंगे हम लोग।'

कल्याणी जैसे क्षण भर के लिए मूक हो गयी!
सहसा उसे याद आया—वह जैसे किसी सूर्यदीप्त
पर्वत-शिखर पर चढ़ते-चढ़ते भूमिष्ट हो गयी है—एक-
बारगी एक अन्धकार से पूर्ण अन्तहीन गुफा के सामने!

क्षण भर में ही उसके सिर को झकझोर दिया किसी अनिष्ट की कल्पना ने !—इस आफिस के उच्च पदस्थ प्रतिनिधि की पर्सनल स्टेनो बनने की उसे आशा है—उसे अनेक गुप्त बातें जाननी पड़ रही हैं एक प्राइवेट सेक्रेटरी के समान। यह नयी संभाव्य उन्नति उसके जीवन की नयी सुखद कल्पना के समान ही तो है। इसके साथ उसकी अनेक आशाएँ और कामनाएँ जुड़ी हुई हैं।

समर बोला—'यूनियन ने कल ठीक किया है—दस्तखत नहीं करेंगी ?'

क्षण भर में ही कल्याणी मुख विवर्ण हो उठा।

समर तनिक तिरछी नजर से मुस्कुरा कर बोला—'नरेन बाबू की भी राय है।'

कल्याणी किसी तरह दम खींच कर बोली—'मैं कल कर दूँगी।'

'कल अर्थात्—।'

'ठीक है....कल ही सही।' कह पुनः तनिक तिरछी नजर से मुस्कुरा कर सामने से चला गया।

वह मुस्कुराहट जैसे कल्याणी के हृदय में छूरी की धार की तरह चुभने लगी। बड़े साहब के कमरे में घुसकर अपनी कुर्सी पर कुछ देर तक वह बैठी रहा पाषाण की तरह। उस के मन ने कहा—'यह क्या हुआ !'

एक विराट विपर्यय के सामने खड़ी हो वह उस दिन किसी काम में मन न लगा सकी।

इसके सामने उस की नयी पदोन्नति की संभावना क्या टिक सकेगी ? अगर छँटाई हो गयी, तो क्या होगा उसके भावी जीवन की योजना का ! वह स्वयं कोई फैसला न कर सकी। उस दिन घर लौट कर डरते-डरते सारी बातें महामाया से कह कर उन की राय ली।

महामाया को घर की चिन्ता बहुत दिन से ही है। उनका सिद्धान्त

बिल्कुल सीधा है। महामाया बोली—'उस दिन इतनी बातें कहाँ थी—और आज यह !'

'क्या करूँ माँ, कहो।' कल्याणी ने देखा म्लान मुख से।

'करोगी अब क्या !' महामाया बोलीं—'यह इतना बड़ा परिवार-खुद चलाती हो, खुद ही समझ सकती हो। इतने लोगों के लिए अन्न जुटेगा कहाँ से ?'

'किन्तु यूनियन की राय है.......'

'चूल्हे में जाय तुम्हारी यूनियन।' महामाया झुंझला कर बोलीं—'मैं कुछ नहीं जानती हूँ। मुझे किसी तीर्थ पर भेज दो....तब तुम लोग मरो। नरेन क्या कहता है ?'

'वही यूनियन का सेक्रेटरी है। उसकी राय तो हड़ताल के ही पक्ष में मालूम होती है माँ।'

'हूँ !' महामाया ने भौंहें टेढ़ी कर जैसे पल भर में ही सारी बातें समझ ली। बोली—'मैं जानती हूँ, वह बहुत बड़ा धूर्त है। वह तुम्हें विपत्ति में डालना चाहता है। तुम मरोगी, तुम्हारा सत्यानाश कर के ही वह छोड़ेगा। मैंने उसी समय कहा था.......'

माँ के गाली-गलौज के सामने हाँ-ना कोई बात भी कल्याणी बोल न सकी। केवल एक दीर्घ निःश्वास फेंक कर वहाँ से चली गयी।

महामाया की रुक्ष मूर्ति के सामने से हट जाने पर भी कल्याणी किसी भावी घटना की आशंका से अपने हृदय को मुक्त न कर सकी।

उस दिन पूरी रात उसे नींद न आयी; वह करवटें ही बदलती रही। कल्याणी की सारी उज्ज्वल परिकल्पनाओं पर जैसे काले-काले घनघोर बादल घिर आये। नींद में निमग्न मिलू-बिलू के ऊपर जितनी बार उसकी आँखें पड़ीं, उतनी ही बार उसे लगा जैसे उनके जीवन के साथ अनाप-शनाप खिलवाड़ करने का उसे जरा भी अधिकारनहीं है। पुनः वही दारिद्र्य और क्षुधार्त मलीन मुख, वही अंधकारपूर्ण संकीर्ण जीवन ! उस

जीवन की ज्वाला को कल्याणी ने शिवशंकर के अंतिम दिनों में तथा उनकी मृत्यु के बाद उत्पन्न हुए संकटों से अच्छी तरह अनुभव किया है। पुनः उसी दम घुटानेवाले जीवन की ओर लौट जाना—इस कल्पना से ही कल्याणी का सारा शरीर झनझना उठता है। काफी दुःख-दुर्दशा के बाद प्रशांत प्रातः का आलोक उसकी आँखों पर मुस्करा उठा है—जिसकी उसने आजन्म कल्पना की है, स्वाद नहीं पाया है किसी दिन—आज उसे छोड़ कर एक नयी अग्नि-परीक्षा में उतरने का साहस उसमें नहीं है। फिर भी इस के मध्य में उसकी आँखों में नाच उठता है नरेन का मुख—उसी तरह नाच उठती है महामाया की क्रोधांध मूर्ति। इन सबके उद्वेग से उसने जैसे असहाय की तरह बैठे-बैठे ही सारी रात बिना सोये ही बिता दी।

****

:२०:
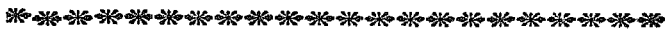
दूसरे दिन आफिस में घुसते ही यथारीति वही नौजवान क्लर्क समर हाथ में कागज कलम लिए उसके सामने आ पहुँचा।

'आज आपने दस्तखत करने को कहा है।'

'क्षमा कीजिये मुझे, कृपा कर क्षमा कीजिये मुझे।' कह कल्याणी अपने हताश, भीत मुख को छिपाने के ही लिए जैसे जल्दी-जल्दी बड़े साहब के कमरे में जा घुसी।

★

पीछे एक हल्की मुस्कुराहट गूँज उठी, ऐसा मालूम दिया। यही होगा, जैसे समर बहुत पहले ही से जानता था। उसका यह उपहास जैसे तेजधार वाले शीशों के टुकड़े के समान उसके हृदय में चुभ गया।

बड़े साहब अब तक भी आये नहीं थे। वह अपनी टेबिल पर सिर झुका कुछ देर तक बैठी रही। अचानक लगा जैसे उसका सिर घूम रहा है। निर्जीव-से हो गये कानों

में अब तक गूँज रही थी वही पीछे की विद्रूप भरी मुस्कुराहट एवं कटाक्ष—

'दलाल !'.......

''ऐ ! स्त्री लिंग में 'ई' मिलाकर बात कहो जी।'

प्रौढ़ कर्मचारियों को जैसे इस बात में मधुर रस मिल गया। अक्षय बाबू सामने के कई हिलते दाँतों को निकाल कर बोले—'भई, उसमें 'ई'-'ऊ' जो भी मिलाओ, तुम लोग बाजी नहीं मार सके।'

महेन्द्र बाबू कुत्सित भंगी बनाकर बोले—'यह क्या हमारे, तुम्हारे अथवा नरेन बाबू के वश की बात है, जरूरत है बड़े साहब की !'...... एक तीव्र क्रोध और घृणा जैसे उसकी बात में थी।

टेबिल के ऊपर सिर झुकाये कल्याणी पड़ी रही। कितनी देर तक इसी तरह पड़ी रही, स्वयं भी जान न सकी। जल के छींटे जब आँखों पर पड़े तब आँख खोल कर देखा—सामने बड़े साहब हूवर खड़े हैं। डर से बड़ी-बड़ी आँखें कर उसने बैठने की कोशिश की। हूवर साहब सदय स्वर में बोले—'और कुछ देर आराम कर लो मिस चटर्जी !'

दम खींच कर कल्याणी बोली—'मैं घर जाना चाहती हूँ।'

'हाँ, हाँ, जरूर जाओ।' हूवर साहब बोले—'मेरी मोटर तुम्हें पहुँचा आयेगी।'

डर के मारे कल्याणी बोल उठी—'नहीं-नहीं' मैं ट्राम से ही चली जाऊँगी।'

हूवर साहब मधुर मुस्कुराहट के साथ बोले—'बात क्या है ! ट्राम की भीड़ को ठेल कर तुम जा कैसे सकोगी ?' मोटर से जाने में दोष क्या है ?'

'वे पुनः अंट सट बकेंगे।' कल्याणी डर प्रकट कर बोली।

'अब समझा !' हूवर गालियाँ देते हुए बोल उठे—'स्कांउड्रल्स ! इन स्कांउड्रलों को मैं ठीक करता हूँ, कुछ दिन और सब्र करो।'

कल्याणी बैठी रही चुपचाप।

हूवर बोले—'शायद तुमने दस्तखत नहीं किया है ?'

कल्याणी मुँह फाड़ कर बोली—नहीं।'

इसी लिये वे ऐसी हरकत कर रहे हैं।' हूवर साहस दिलाते हुए बोले—'तुम डरो मत, मैं सब देख रहा हूं।'

यह आदमी हमेशा ही कम बोलता है। फिर भी उसकी स्वल्प बातों का कितना महत्व है, यह कल्याणी जानती है। साहस के साथ भयभीत आँखें उठा कर साहब की ओर उसने देखा।

हूवर ने दूसरी ओर मुँह फिरा कर पाइप का कश लगाते हुए कहा—'नरेन चटर्जी तुम्हारा अपना आदमी है ?'

कल्याणी सूखे मुँह से बोली—'नहीं।'

'तब टोले-पड़ोस का है ?' हूवर तनिक हँस कर बोले—'किन्तु इस आफिस में भर्ती कराया था उसने तुमको अपना आत्मीय बता कर।'

इस गोल-माल में सम्पर्क की एक जटिलता है—जिस प्रसंग के उल्लेख से कल्याणी स्तब्ध बैठी रह गयी। इसे न तो स्वीकार ही कर सकी, न अस्वीकार ही।

हूवर अन्यमनस्क हो कर बोले—'नरेन बहुत चालाक और काम का आदमी है। किन्तु दुख की बात है कि वही इस तमाम गड़बड़ी का मूल है। समझ रहा हूँ—अत्यन्त सतर्कता के साथ वह एक सांघातिक अवस्था की ओर अग्रसर होता जा रहा है।'

नरेन के साथ सम्पर्क की जटिलता और भावी संकट के आवर्त में पड़ कर कल्याणी भयभीत-सी हूवर की ओर ताकती रह गयी।

हूवर नरेन के उसी जटिल सम्पर्क के सूत्र को पकड़ कर पुनः बोले—'तुम अपने साथी को समझा नहीं सकतीं ?'

कल्याणी डर कर बोली—'उसके साथ इस समय मेरी कोई सद्भावना नहीं है।'

'ओ !' कह कर हूवर पाइप टानते-टानते फिर अन्यमनस्क हो उठे। मुँह घुमा कर कल्याणी को अनेक क्षण तक देखते रहे। फिर धीरे-धीरे बोले--'तुम्हारे परिवार के बारे में पूछ रहा हूँ, इस लिये कुछ अन्यथा मत समझना। कौन-कौन हैं तुम्हारे परिवार में—पिताजी ?'

'पिताजी नहीं है। एक प्रकार से पूरा परिवार मेरे ऊपर निर्भर है--भाई, बहनें, माँ.......'

इतने दिनों तक तुम्हारे सुन्दर कामों को ही देखता रहा हूँ--तुम्हारे कामों ने ही आकर्षित किया है'--हूवर अपने संयत गंभीर सदय स्वर में बोले---'अब तुम्हारे उज्ज्वल पारिवारिक जीवन को देख कर भी अवाक् हो रहा हूँ। मेरी बेटी भी काश ऐसी ही होती तो मेरे अभिमान की सीमा न होती !' हूवर जोर से हँस कर बोले—'किन्तु मेरे कोई बेटी नहीं है कल्याणी ! तुम्हारा नाम लेकर कह रहा हूँ इसलिये कुछ अन्य मत समझ लेना। सचमुच तुम्हारी कर्त्तव्य-चेतना ने मुझे मुग्ध कर लिया है।'

अल्पभाषी इस गंभीर प्रकृतिवाले व्यक्ति को आज कल्याणी ने एक नवीन रूप में देखा। इस विदेशी की बातों ने आज कल्याणी के अन्तर को स्पर्श कर लिया--जैसे उसके असहाय हृदय में साहस भर उठा, निर्भयता भर उठी !

हूवर ने पूछा--'तब तो तुम्हें अनेक लोगों का भरण-पोषण करना पड़ता है ?'

'हाँ, छ-सात आदमियों का।'

'इतनी-सी आमदनी से चल जाता है ?'

'किसी तरह चल ही जाता है।'

हूवर बोले---'भारतवर्ष में मैंने एक लम्बी जिन्दगी काट दी है। यूरोप में सुप्रतिष्ठ आत्म-निर्भरशील लड़कियों का अभाव नहीं है, किन्तु अभाव है तुम्हारी जैसी लड़कियों का—जो घर और बाहर--उभय जीवन

को सुन्दर बना सकें। तुम्हारे देश की धरती पर आज मैं यह एक नयी जाति देख रहा हूँ !'

हूवर की बातों से कल्याणी के हृदय में एक प्रकार की गुदगुदी का आवेग उठने लगा। इस व्यक्ति की सांत्वना में, शुभेच्छा में हठात् उसे अपने पिता की याद आ गयी।

हूवर दीर्घ निःश्वास खींच कर बोले—'तुम्हारे पारिवारिक जीवन के बारे में जान कर मुझे खुशी हुई है—साथ ही दुःख भी हुआ है कल्याणी। तुम से केवल इतना ही कह सकता हूँ कि यह आफिस कामवाले आदमी के मूल्य को समझता है, यह तुम प्रथम सुयोग में ही समझ लोगी, किन्तु कुछ इस समय कुछ ऐसी हवा चल रही है कि—

हूवर मानो अब और बैठ नहीं पा रहे थे। किसी भाँति उलझनों के वेग से वे पूरे कमरे में चहलकदमी करने लगे। इससे बाद रुक कर बोले—'अब क्या कुछ आराम मालूम हो रहा है तुमको ?'

कल्याणी ने सिर हिला कर उत्तर दिया।

हूवर बोले—'तब घर चली जाओ।'

कल्याणी झट उठ खड़ी हुई। किन्तु बड़े साहब के कमरे से निकलते समय उसके पैर काँपने लगे। उसे जाना पड़ेगा उन्हीं हिंस्र कर्मचारियों की बगल से होकर, गुजरने में उसका हृदय धक-धक कर उठा। फिर आँख-कान बंद कर वह कमरे से निकल पड़ी। सारा आफिस इस समय काम में व्यस्त है-संभव है, छुट्टी के बाद निकलना मुश्किल हो जाय।

किन्तु फिर भी उसे देख कर प्रत्येक टेबिल पर फुस-फुस आवाज होने लगी। पुनः वही आग की तरह चिनगारियाँ उसके युगल कानों को जलाने लगीं।

न जाने कौन बोल उठा—'नरेन बाबू को बहका कर घुस पड़ी थी तो।'

प्रौढ़ गणेश बाबू दबे गले से तुलसीदास का दोहा गुनगुना उठे,

"दिन का मोहिनी रात का बाघिनी
पलक पलक लोहू चूसे—"

अक्षय बाबू हार मानने वाले जीव थोड़े ही थे—टिटकारी देकर ईश्वर-गुप्त को जपने लगे

"जतो छूँड़ी गुलो तुड़ि मेरे केताब हाते निच्छे जबे
ए० बी ०शिखे बीबी सेजे बिलाती बोल कबेई कबे
आर किछु दिन थाक रे भाई पावेई पावे देखते पावे—
बङ्ग विधवार साजेर बाहर देखे हे !"

आफिस से जैसे दौड़ कर कल्याणी निकल कर बाहर आयी। पैर काँप रहे हैं, सिर चक्कर खा रहा है ! अपनी चेतना-शक्ति को प्राणपण से संयत कर ट्राम-स्टॉप के पास जाकर खड़ी हो गयी।

इसी समय पीछे से परिचित कंठ स्वर सुनाई पड़ा—'कल्याणी !'

घूम कर देखते ही भय से उसका मुँह सूख गया। पीछे नरेन था। उस समय उसे लगा जैसे यही आदमी उसके अपमान की जड़ है, लांछना का मूल है। यही उसके जीवन का शनिग्रह है—उसका सर्वनाश है। इसे क्या जीवन से दूर नहीं कर सकती !

नरेन पूछ बैठा—'हड़ताल के लिए हस्ताक्षर करना क्या तुमने आवश्यक नहीं समझा ?'

'इस से भी एक आवश्यकता और मेरे पथ में बाधक है।' कल्याणी दम खींच कर बोली—'इसे तुम जान कर भी नहीं जानते ?'

'जानता हूँ, किन्तु तुम क्या अकेले हो ?'

'हाँ, मैं अकेली हूँ—अपने गरीब परिवार में मैं एकबारगी अकेली हूँ।' ....लगा जैसे उसकी आँखों से झर-झर आँसू बरसने लगेंगे।

'किन्तु इस तरह अकेली रह कर तुम कब तक बच सकोगी ?'

'अकेली ही तो जिन्दा हूँ, जिन्दा भी रहूँगी। कौन मेरी सहायता करेगा ?' कल्याणी की बातों से जैसे एक दीप्त ज्वाला जल उठी !

उसकी बातों की ज्वाला के साथ-साथ उसमें एक आत्मविश्वासी दम्भ भी था। उसके सामने नरेन जैसे क्षण भर के लिए विचलित हो उठा, इसके बाद धीरे-धीरे बोला—'तुम अकेले जिन्दा रहोगी''''अपने दुःख-सुख के छँटाई हुए सहयोगी साथियों को छोड़ कर ?'

'दुःख-सुख के सहयोगी! जो मेरे शृङ्गार की बहार देखते हैं—देखते हैं केवल व्यभिचार—और टिटकारी मारते हैं, किन्तु मेरे क्षुधार्त असहाय परिवार को नहीं देखते।' कल्याणी बोली—'मैं जिन्दा रहना नहीं चाहती उनके साथ।'

'वे जो कुछ देखते हैं वही कहते हैं।' नरेन क्रोध के स्वर में बोला—'तुम्हारी उन्नति हो और उनकी छँटाई हो! तुम आफिस के बाद भी इसी पदोन्नति के लिए छोटे-बड़े साहबों के पीछे-पीछे दौड़ती फिरती हो। किन्तु छटाई होनेवालों के नाम भी वे पहले जान नहीं पाते।'

कल्याणी का गला सूख कर काठ हो गया है। सूखे होठों को चाट कर बोली—'तुम भी यही देखते हो ?'

'यही देख रहा हूँ कुछ दिनों से।' नरेन बोला—'यूनियन के पास अब फटकती भी नहीं। सहयोगियों से सम्पर्क तोड़ कर, नाता तोड़ कर तुम हूवर के पीछे-पीछे दौड़ती फिरती हो। अन्त तक कहाँ जाकर रुकोगी? जिन्दा रहना चाहती हो—ससम्मान जिन्दा रहना सीखो। आत्म-प्रवंचना के इस घृणित जीवन के साथ नहीं।'

'मेरा जीवन घृणित है!' कल्याणी बोली खिन्न मुख से।

'हाँ, ऐसे जीवन से घृणा ही होती है। तुम नरक में जा गिरी हो।' कहकर नरेन चला गया—घृणाकुल हो कर।

कल्याणी अकेली खड़ी रह गयी। उसकी युगल आँखें जैसे जल रही हैं। लगा जैसे वह गिर पड़ेगी!

ट्राम आ गयी। कल्याणी ट्राम में जा बैठी। रास्ते भर सोचती रही; इसी लांछना के साथ उसे प्रत्येक दिन आफिस जाना होगा—बोझिल हो

कर। मन ही मन एक आदमी को लक्ष्य कर बोली—'यही अच्छा है, तुम भी घृणा करो—मेरे सर्वनाश के कारण तुम्हीं हो। इसी तरह अपनी घृणा से धो-पोंछ कर मुझे अपने जीवन से दूर कर दो।'

हाँ, फिर भी वह काटती जायेगी दिन—अपने मौन कर्म-क्लांत पीड़ित जीवन से बिलू-मिलू के जीवन में—अपनी अनेक अनिद्रित रातों के एक परिकल्पित उज्ज्वल जीवन में। इस जीवन को वह बनायेगी ही, गढ़ेगी ही। मुक्त—सुन्दर—स्वच्छन्द!

:२१:
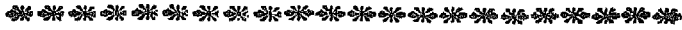
डलहौजी स्क्वायर में बहुत दिनों बाद नरेन की अवनी से मुलाकात हो गयी। अवनी बोला—'क्यों, तुम्हारा तो अब पता ही नहीं चलता, बात क्या है?'

स्ट्राइक की नोटिस आफिस में दे दी गयी है। इसके अतिरिक्त कल्याणी के ऊपर क्षोभ—इन सब कुछ की याद आते ही नरेन का माथा जलने लगा। वह बोला—'तुम्हारे यहाँ जाने में आज-कल घृणा आती है अवनी!'

अवनी धीरे से मधुर स्वर में बोला—'क्यों भाई, बेकार हूँ, किन्तु घृणा योग्य कौन-सा काम किया?'

'तुम नहीं, तुम्हारी बहन ने किया है। जरूर जानते होगे—छटाई के विरुद्ध हमारे आफिस में हड़ताल की तैयारी हो रही है।' नरेन बोला—'किन्तु तुम्हारी बहन अन्त में बड़े साहब के दल में है। इससे सहयोगियों के बीच मेरी लज्जा और लांछना की सीमा नहीं है।'

'यह तो ठीक ही है। लेकिन यह सब तो मुझे मालूम नहीं था।'

'ऐसी बात है! तुम्हें मालूम भी नहीं!' नरेन ने एक कठोर व्यंग्य करने के अवसर को हाथ से जाने नहीं दिया। बोला—'तुम लोगों के बोझ को खींचने के लिए ही उसको इस तरह नाचना पड़ता है—सुनता हूँ—वही कहती है ऐसा!'

'मेरे लिए, हम लोगों के लिए!' अवनी का वह अति सहज क्रोध उबल पड़ा झट से। बोला—'उसके इस अकारण दम्भ को बहुत बर्दाश्त किया है मैंने, अब नहीं कर पाऊँगा। घर में, बाहर, सभी जगह उसने मेरा यथेष्ठ अपमान किया है।'

एक कुटिल प्रतिहिंसा ने नरेन को जैसे घेर लिया—मुस्कराते हुए कटाक्ष करता-सा बोला—'अपमान तुम्हारा काफी हो रहा है—मर्यादा जैसे कुछ रह ही नहीं गयी—सब कुछ सुनोगे तब खुद ही समझ लोगे। वह एकदम नरक में पड़ चुकी है। आफिस में तो यही सब लेकर तरह-तरह की बातें सुनने को मिलती हैं।'

बात है ही ऐसी। अवनी क्रोध से गरजने लगा। बोला—'मैं आज ही कोई फैसला करके छोड़ूँगा नरेन!'

नरेन बोला—'जो हो, तुम्हारे घर पर आकर सब कहूँगा, यहाँ कह नहीं पा रहा हूँ। उसका आचरण आजकल बहुत ही अशोभनीय होता जा रहा है।'

सारी बातें सुनकर अवनी जैसे क्रोध से जल उठा। उसकी बेकारी की व्यग्रता दबी हुई थी इतने दिनों तक—सुधा के साथ अलग घर बसाने की भी एक मधुर कल्पना कर ली थी उसने छिपे-छिपे—वह दबी हुई व्यग्रता फट पड़ी और वह क्रोध की मूर्ति बन गया। इसका कारण यह है कि आनन्द के ही समान क्रोध भी अवनी के जीवन की स्वाभाविक अभिव्यक्ति है। घर लौट कर आते ही माँ के साथ झगड़ा करने लगा।

'तुम लोगों के इस संसार को छोड़कर मैं अभी चला जा रहा हूँ। मुझे समझा है क्या तुम लोगों ने !'

'हुआ क्या !' महामाया ने अवाक हो कर पूछा।

'बाकी क्या है।' अवनी बोला—'तुम्हारी कमाऊ बेटी चारो तरफ बकती फिर रही है—हमलोग उसके लिए बोझ हैं, हमलोगों के लिए उसे भारी असाध्य साधना करनी पड़ रही।'

महामाया विरक्त हो कर बोलीं—'कर तो रही ही है—एक लड़की होकर वह जो कर रही है, तुमने क्या किया है—बोलो ! तुम्हें शर्म आनी चाहिए। तुम चिल्ला क्यों रहे हो ! उसके विरुद्ध बक क्या रहे हो !'

'ठीक ही तो, तुम भी यही बात कह रही हो !'

महामाया किसी दिन भी पीछे नहीं हटी हैं, आज भी नहीं हटीं। अवनी ने जो आघात किया था उसे दुगुने वेग से वापस कर दिया, क्रोधित स्वर में बोलीं—'तुम्हारा उसने विवाह कर दिया, अभी उस दिन तक तुम्हारी पढ़ाई का खर्च देने को तैयार थी—और तुम हो, जो उसकी निन्दा कर रहे हो। घर छोड़ कर चले जाने की धमकी दे रहे हो। लाज नहीं आती तुम्हें ! विवाह करने योग्य एक बहन तुम्हारे कंधे पर सवार है, उसके लिए क्या कर रहे हो, बोलो न ? इस परिवार के लिए तुम क्या कर रहे हो ?'

महामाया बड़बड़ाती ही गईं। कटु सत्य बातें अवनी को गोली जैसी लग रही थी। उसकी अपनी इतनी अक्षमता को लेकर अब आगे इस मकान में रहना उसके लिए असंभव हो गया।

इस झगड़े के बीच में ही कल्याणी भी आफिस से आ गयी और यह सब देखते ही एकबारगी स्तब्ध हो उठी।

'इस घर को त्याग कर आज ही चला जा रहा हूँ'—यह घोषणा कर अवनी तेजी से निकल पड़ा। गली की मोड़ पर नरेन से भेंट हो गयी। नरेन बोला—'तुम्हारे घर ही तो चल रहा हूँ—तुम कहाँ चले ?'

बोला—'ओ नरेन, तुम आ गये हो।' अवनी उसे खींचकर ले जाने लगा—'चलो भाई, जहाँ कहीं भी हो एक डेरा खोज कर निकालना ही होगा मुझे। बस्ती[1] में होने से भी मुझे कोई आपत्ति नहीं। बिना खाये भी दोनों प्राणी सूख कर मर जायँ, यह भी मंजूर है, किन्तु यह दया का अन्न अब हमारे गले के नीचे नहीं उतरेगा।'

'उतरना भी नहीं चाहिए।' नरेन बोला—'किन्तु माथा ठंडा कर अवनी!'

'ऐसी हालत में माथा क्या ठण्ढा रहता है?'

'नहीं रहता है, यह भी ठीक है।'

नरेन को भी हिंसा का भाव बहुत दिनों से खाये जा रहा है, और यह हिंसा है कल्याणी के विरुद्ध—किन्तु उसकी हिंसा ठीक क्रोधोन्मत्त अवनी की हिंसा के समान नहीं है। बल्कि उसे प्रतिहिंसा कहना चाहिए।

किन्तु यह भी जैसे विस्फोटक बन कर फट पड़ने का अवसर नहीं पा रहा था। अवनी के क्रोध के साथ जैसे एकाकार हो गया।

नरेन बोला—'इस समय कहाँ जाओगे—हाँ, कम से कम मेरे घर चले चलो। इसके बाद घर खोज-ढूँढ़ कर जहाँ इच्छा हो चले जाना।'

अवनी गिड़गिड़ा कर बोला—'तुम मेरे अत्यन्त उपकारी बन्धु हो, यह स्वीकार करता हूँ। किन्तु मुझे माफ करो—नहीं जाना चाहता। बल्कि मैं बस्ती में जाकर रहूँगा।'

अवनी के क्रोध और गिड़गिड़ाहट को नरेन पहचानता है, इसीलिये उसने बात को और बढ़ाया नहीं।

अवनी बोला—'आत्म-विक्रय के अन्न से तो मृत्यु अच्छी है।'

१—बङ्गाल में बस्ती उस जगह को कहते हैं जहाँ निम्न श्रेणी के लोग रहते हैं और मकान टीन के बने होते हैं। —सम्पादक

'हजार बार अवनी !' इसके बाद नरेन कुछ सोच कर बोला—तुम अगर चले जाओगे तो अवश्य ही उन लोगों को कोई असुविधा न होगी—क्योंकि तुम्हारे उपार्जन पर वे लोग निर्भर करते नहीं। फिर भी तुम पर नैतिक जिम्मेदारी शांता की अवश्य रह जाती है।"

'ठहरो, मैं जरा मैनेज कर लूँ।' अवनी बोला अपने स्वाभाविक स्वभाव से ही—'उसकी जिम्मेदारी मैं ही लूँगा।'

न जाने क्या सोचते-सोचते नरेन अन्यमनस्क हो उठा। इसके बाद हठात् बोल उठा—'किन्तु क्या कर रही है— कहाँ जा रही है कल्याणी ! वह अन्त में ऐसी हो जायेगी—इतनी लालची हो जायगी, इसकी मैंने किसी दिन कल्पना भी नहीं की थी अवनी !'

अवनी बोला—'वह बदल गयी है...रुपये की गर्मी है न। समझते नहीं ? उस पर से वही जो तुम कहते हो लालच।'

'हाँ, लालच,' नरेन बोला—'मिस अलेनो की रिक्त जगह पर उसकी आँख गड़ी है।'

'मरे, उसके साथ मेरी अब नहीं बनेगी।' अवनी ने अपने सहज और अटल सिद्धांत की बात स्पष्ट कह दी—'धन के सुख से सन्तोष अच्छा है।'

दूसरे दिन सुबह से ही चक्कर काट कर न जाने कहाँ किस बस्ती में एक घर खोज कर लौट आया अवनी। इसके बाद अपने टूटे सूटकेस तथा दूसरे-दूसरे सामानों को ठीक-ठाक करने एवं बाँधने इत्यादि में व्यस्त हो उठा एवं अकारण ही सुधा को तैयार हो जाने के लिए बार-बार कहने लगा।

आफिस जाने के समय कल्याणी डरते-डरते आकर सामने खड़ी हो गयी। उसका मुँह सूख गया है, उसके पूरे दृष्टिकोण में ही जैसे पशुता आ गयी है। साँस खींच कर बोलीं—'सचमुच चले जाओगे भैया ?'

अवनी ने कोई बात न की।

'तुम भी गलत समझोगे मुझे ?'

अवनी ने फिर भी कोई जवाब नहीं दिया।

सब सामान बाँध-बूँध कर अपने नये घर के लिए निकल पड़ा।

महामाया तब रसोईघर में थीं। कल्याणी दौड़ी-दौड़ी गयी और माँ के पीछे खड़ी गयी। कातर स्वर में बोली—'यह क्या हुआ माँ! भैया तो सचमुच ही चले गये!'

'जाने दो।' महामाया मुँह उठाये बिना ही कठोर स्वर में बोली—'मर्द के लिए यह भी अच्छा है।'

'किन्तु भाभी!'

'साथ ले जा रहा है, ले जाने दो।' महामाया बोली—'बोझ क्या होता है, ज़रा समझने दो।'

माँ की जिद्द कल्याणी जानती है। चुपचाप हताश हो कर खड़ी रही।

अवनी अपना सब कुछ ले देकर रिक्शा पर जा बैठा। पीछे-पीछे गुमसुम सुधा भी जा बैठी।

क्षण भर में ही न जाने कितनी बातें कल्याणी को स्मरण हो आयीं। अवनी उसके बचपन का ही सहचर है। इतने दिनों की उसकी हजारों बातों और हजारों हँसी-खुशी के दिनों का घनिष्ट साथी है। वह चला जा रहा है—आज उसे गलत समझकर। पहले एक अभिमान का भाव उसके हृदय में उठा, फिर गिर पड़ा—चकनाचूर हो गया। वह दौड़ पड़ी बाहर की ओर।

पुकारा—'भैया!'

'ले चलो।' अवनी ने रिक्शेवाले को संकेत किया।

'भैया, सुनो!'

अवनी के कानों तक यह पुकार जैसे पहुँची ही नहीं। रिक्शे की टुनटुन आवाज धीरे-धीरे गली से विलीन हो गयी।

कल्याणी खड़ी रही, उसकी आँखों के सामने जैसे अंधकार छा उठा हो। उसे लगा जैसे यह पृथ्वी ही उसे छोड़ कर भागी जा रही हो!

इसी समय जैसे उसे अनुभव हुआ कि उसका जीवन कितना जल रहा है—बन्धु-बांधव भी उसके नहीं। ऐसा क्यों हुआ वह कुछ भी समझ नहीं पा रही थी। वह मन की आर्थिक संगति के केन्द्र के टेढ़े-मेढ़े चेहरे को समझ नहीं पा रही थी। उसका मन रह-रह कर आनन्द और उमंग से खोये पुराने दिनों की ओर भागने लगा।

:२२:

बीच में एक बड़ा-सा चबूतरा और उसके चारो ओर पंक्तिबद्ध कितने ही टीन के कमरे। रास्ते के सामने की तरफ कुछ संभ्रान्त परिवार के लोग रहते हैं जो गरीब है—इनका रहन-सहन ठीक शहर के ही समान। और देहात के लोग एकदम देहाती ही—मजदूर-मिस्त्री, दूकानदार और दाइयाँ।

★

अवनी का कमरा ठीक शहर के समान न होने पर भी शहर-देहात के बीच का-सा है। कमरे के सामने ही गली है। पीछे की तरफ एक मिला-जुला चौक।

और कमरा है एक ही।

सुधा बोली—'यही कमरा है!'

'हाँ, यही हमारा स्वर्ग है।' अवनी ने गंभीर होकर उत्तर दिया।

इस पारिवारिक झगड़े में सुधा मौन बनी रही है। वह जैसे अपनी बोझिल अवस्था को लेकर स्तब्ध हो उठी है। केवल सोचती है—सब के लिए जैसे वही उत्तरदायी है।

उसके चेहरे की ओर देखकर अवनी बोला—'क्यों, क्या हुआ ? चुप क्यों हो गयी !'

जिज्ञासु आँखें उठा कर सुधा बोली—'क्या बोलूँ !'

'अच्छा-बुरा जो भी हो ।'

सुधा खिन्न होकर बोली—'मेरा सब कुछ तुम्हीं अच्छी तरह समझते हो ।

'समझता हूँ, सचमुच अच्छी तरह समझता हूँ ।' अवनी बोला—यही मेरा स्वर्ग है सुधा–तुम भी यही समझना । अब कमरे को सजा डालो ।'

सुधा के साथ-साथ अवनी भी अपने इस स्वर्ग को सजाने में झाड़ू, रस्सी, हथौड़ी इत्यादि लेकर व्यस्त हो गया । कमरे के एक तरफ सोने का बिस्तरा लगा दिया, दूसरी तरफ बैठने का प्रबन्ध हुआ । बिस्तरे के सिरहाने उसका टूटा सूट-केस रख कर पुराने अखबारों से ढंक दिया गया । वह पेड़ साइडमिडसेफ बन गया—यही नहीं, अवनी के बैठने की टेबुल और उसके विस्मृतप्राय पुराने काव्यग्रंथों का सेल्फ भी । कमरे के बीचोबीच एक रस्सी बाँध कर उसके ऊपर एक बिस्तरे की चादर लटका दी गयी । कमरा दो भागों में बँट गया ।

अवनी बोला—'देखो किस तरह मैनेज कर डाला । चादर का भीतरी हिस्सा तुम्हारे लिए आनन्द महल, ड्रेसिंगरूम, और स्नान-घर—जो भी कहो, बन गया और बाहरी हिस्सा मेरा सदर कहो, बैठकखाना कहो, ड्रेसिंगरूम कहो, अन्यथा जो भी कहो । रात में चादर को उठा देने से ही कैसा एक शानादर बेडरूम बन जायेगा ।'

कमरे के इस बटबारे के समय सुधा के अधरों पर एक मधुर मुस्कान थिरक उठी ।

मुस्कान से सिक्त उस मुख की ओर निर्निमेष देखते हुए अवनी बोला —'मैं सुखी हूँ—सचमुच इतने दिनों बाद मैं सुखी हूँ ।'

हाय रे ! न जाने कब इस सुख की बात कही थी, आज उस छोटे बिस्तरे चादर से विभक्त किये अंधकारपूर्ण कमरे को एकटक देखते हुए एक वेदनादायक पारिवारिक कलह की घटनाओं के बाद जब इस बात की याद आ जाती है तो सुधा का हृदय करुणा से भर उठता है। अवनी का हृदय भी उसी प्रकार करुणापूर्ण हो उठता है। वह न जाने किस आनंद से उद्वेलित हो उन्मत्त की तरह कविता-पाठ करने लगा:

'मधुर हास की सुधा चिता
तेरा पुण्य प्रदेश
बसती है ललाम कामना
लक्ष्मी बन कर जहाँ अहर्निश
तेरे इस छोटे से घर में
क्षुद्र नहीं मैं कभी रहूँगा
जितना भी हो दैन्य कभी भी दीन न हूँगा
तुमने मुझे बनाया है सम्राट्
धन्य तुम हे गृहलक्ष्मी।'

हाय! यह कविता अवनी ने एक दिन और पढ़ी थी—वह दिन उसके लिए आनन्दपूर्ण दिन था और सुधा को लगा था जैसे यह पृथ्वी कितनी सुंदर है, मनुष्य कितना सुन्दर होता है, जीवन कितना महान है। आज सब जैसे कठिन विद्रूप के समान प्रतीत हो रहा है।

सुधा ने पूछा—'खाने का क्या होगा।'

'इस वक्त रसोई मत बनाओ। रोटी खरीद कर ला रहा हूँ—पाकेट में अब कितने पैसे हैं।' अवनी ने कहा—उस वक्त कुछ रुपये मिलेंगे, तब तुम्हारी गृहस्थी का बाजार होगा।'

हृदय के एक दुर्बल दबाव से अवनी मुक्त हो गया है। कल्याणी की खोखली योजनाएँ और प्रधानतः उसकी कमाई से चलने वाले परिवार में बेकार अवनी के पौरुष को प्रत्येक दिन ही आघात लगा है—उस

ग्लानि से मुक्ति पाकर अवनी जैसे उल्लसित हो उठा है पुनः पहले के ही समान। नये डेरे पर आकर पहले कई दिन अनाहार और अनशन की नौबत भी उठानी पड़ी थी, फिर भी अवनी को जैसे कुछ बुरा नहीं लगा। टूटे सूटकेस के बीच दबी बाँसुरी पुनः निकल आयी—मुख बंद कर हृदय में दबा दी गयी कविताएँ पुनः जाग उठीं नवीन रूप में।

सुधा केवल स्तब्ध हो उठी है जैसे इस नवीन परिवर्तन से। जगाने पर भी जैसे वह नहीं जागेगी।

अवनी ने पूछा—'इतने ही में मुर्झा गयीं।'

नये डेरे के तृतीय दिन के सुबह में भी अवनी के उसी उल्लसित मुख की ओर देखकर सुधा मंद मुस्कुराहट के साथ बोली—'आज भी रसोई के लिए कुछ नहीं है।'

'फिर और क्या।' अवनी ने अपनी भुजाओं की तरंगित पेशियों की लहर में जैसे सुधा को आबद्ध कर लिया। उसके होठ हिल उठे कविताओं से:

'छोड़ दो आज सभी गृह—काज
हटा दो सुमुखि नयन से लाज
सुकवि की काव्यकला कल्पना लता-सी
सज कर आओ मेरे पास
सफल हो आजीवन साधना
बनूँ मैं धन्य तुम्हारे अधरामृत से।'

सुधा को आज सब कुछ व्यंग के समान प्रतीत हो रहा है। खिन्न स्वर में धीरे-धीरे वह बोली—'छोड़ो, अच्छा नहीं लगता है।'

अवनी उसके अधरों के पास अपना मुख ले जाकर बोला—

'शान्ति कोमल शान्ति
यह मधुरता, और युग की क्लान्ति
चिर पिपासाकुल समीरण

तृषित जग का करुण कण-कण,
करुण कोमल तव
सुधा स्मित से सजल हो जाय
कामना का तरु किसलयों
से अरुण हो जाय।

सुधा ने उसके मुख को अपने हाथों से दबा लिया। बोली--'दोहाई तुम्हारी! छोड़ दो। मुझे रुलाई आ रही है।'

अवनी ने छोड़ दिया। देखा गंभीर दृष्टि से सुधा की ओर। बोला—'तुम्हें हुआ क्या है, बोलो तो सुनूँ?'

'कुछ नहीं। सोचती हूँ--इस तरह कितने दिन कटेंगे।'

'जितने दिन कट जायेंगे।' अवनी बोला--'बिना परवाह किये, मैं सुखी हूँ, मैं मुक्त हूँ।'

उसकी बातों में अब तक भी कवित्व का आवेग था।

सुधा मधुर स्वर में बोली—'दिन कैसे कटेंगे?'

'डरती हो—।'

'डरती नहीं हूँ। बिना खाये रहना मेरे भाग्य में बहुत पहले से ही बदा है।' सुधा म्लान हँसी हँसकर बोली—'किन्तु इस सबके लिए मैं स्वयं को ही जिम्मेदार समझती हूँ।'

'ऐसा क्यों? अवनी बोला—'क्या कह रही हो? पागल के समान, बे सिर-पैर की बातें।'

सुधा बोली—'मुझे केवल प्रतीत होता है—तुम्हारे परिवार में मेरे आते ही जैसे सब कुछ ऐसे हो गया।'

सुधा की बातों को उलट कर अवनी बोला—'हाँ, एक महान् इतिहास की घटना घट गयी। पृथ्वी की प्राकृतिक क्रान्ति में जो इतिहास बनता है—उसी तरह का एक विराट इतिहास, निद्रित अवनी मुखर्जी,

मृत अवनी मुखर्जी का जन्मान्तर हो गया जैसे। तुम्हारे प्रेम से वह जीवित हो उठा है जैसे द्वितीय बार।

सुधा चुप हो गयी। शायद अवनी के उस सहसा जाग्रत, उद्वेलित मुख के सामने अपनी आत्मानुसोचना में जलती हुई सुधा के हृदय में युक्ति और तर्क कोई बात जुट ही न सकी! चुपचाप उसने अपने आपको अवनी की शरण में छोड़ दिया। उसके साथ, अँगुलियाँ, उसकी केश-राशि-जैसे उसकी समस्त निस्तेज इन्द्रियों के ऊपर असीम आनन्द और प्यार के साथ अवनी की अँगुलियाँ खेलने लगीं।

अभुक्त, क्षुधार्त जिस शरीर में चंचलता नहीं, वरन्, जिसकी आँखों में निस्ताप विपन्नता है, उस शरीर के साथ एक पुरुष कितनी देर तक, और वह भी केवल अपने ही हृदय के आनन्द से उद्वेलित होकर रह सकता है? अवनी के सहज सरल हृदय को आघात लगा।

अवनी क्षुब्ध हो कर बोला—'हठात् तुम इस तरह मुरझा क्यों गयीं?'

शुष्क स्वर में सुधा बोली—'कुछ भी अच्छा नहीं लगता है।'

एक लम्बी साँस खींच कर अवनी अपने आप ही बोला—'दरिद्रता महान अभिशाप है।' कहकर वह उठ खड़ा हुआ।

अपराधिनी की तरह सुधा ने सचकित हो अवनी का एक हाथ धर दबाया। क्या पता—अवनी की क्षुब्ध साँस ने उसे खोंचा मार कर उसके निश्चंचल शरीर में चञ्चलता को जाग्रत किया या नहीं। किन्तु अवनी ने धीरे-धीरे अपना हाथ छुड़ा लिया। बोला—'लगता है—मैं हार गया। अपने विस्मृत काव्य सुधा तथा प्रेम से पेट की भूख को दबा न सका।' अवनी के स्तब्ध के विषण्ण आँखों में उन विस्मृत दिनों के करुण स्वप्नों का जैसे आलोकपात हुआ। धीरे-धीरे वह पुनः बोला—'हमें रुपयों की जरूरत है, काफी रुपयों की, क्यों सुधा?'

अवनी के इस अचानक भाव-परिवर्तन से सुधा डर गयी। विनय के स्वर में बोली—'ऐसी बात मत कहो।'

'कहूँगा नहीं!' वह आँखें फाड़ कर ताकता रह गया सुधा के विरस करुण अनशनक्लिष्ट मुख की ओर। इसके बाद धीरे-धीरे बोला—'रुपया चाहिए—तुम्हारे मुख पर मुस्कान न देखकर मेरा स्वर्ग भी नरक ही है सुधा! रुपया चाहिए, रुपया चाहिए ही!' कह कर वह पूरे कमरे में बेचैन हो कर चहलकदमी करने लगा। इसके बाद कुछ देर में ही कुर्ता पहन कर आँधी के समान कमरे से बाहर निकल गया।

'कहाँ जा रहे हो?' पीछे से पुकारा अचानक भयभीत सुधा ने।

'रुपया। अपने स्वर्ग की कुंजी की खोज में।' अवनी चला गया।

सुधा ने सचकित दृष्टि से उसे जाते हुए देखकर एक गिलास पानी पी लिया। पुनः पूर्ववत् आकर बैठ गयी खिड़की के पास निस्पन्द, नीरव। स्तब्ध दृष्टि से ताकती रह गयी वह। निर्निमेष दृष्टि से देखने लगी एक कुत्ते को—कुछ दूरी पर, गली के एक एकान्त कोने में एक सूखी हड्डी को वह चूस रहा था। तरह-तरह से, लार टपक रही थी उसके मुँह से। देखते-देखते सुधा ने एक लम्बी साँस खींची। जबर्दस्ती अपनी आँखें उधर से फेर लीं। फिर भी हड्डी के चूसने की आवाज कानों में आ रही है। उसे यह असह्य प्रतीत हुआ। खिड़की से हट कर बिस्तरे के पास जा खड़ी हुई वह—निर्निमेष दृष्टि से देखने लगी बिछौने को, रात की चुहल से सिमट गया बिस्तर, अगल-बगल दो तकिये।.......वहाँ अंकित है जैसे दो प्राणियों की कामना और जीवन के स्वप्न का चिह्न। किन्तु सब कुछ उसे अत्यन्त व्यर्थ, अत्यन्त स्वप्नहीन प्रतीत हो रहा है। एक लम्बी साँस खींच कर वह बैठ गयी बिस्तरे के एक कोने पर। टूटे सूटकेस को खोल कर उसमें से दावात और कलम निकाल ली। आयोजन के साथ चिट्ठी लिखने लगी—

'कल्याणी दीदी,

अपराधों के लिए मुझे क्षमा करो। अपने बोझ को लेकर जहाँ जितनी दूर क्यों न जाऊँ उसका भार कम नहीं होता। यह बात मकान पर भी समझा है, यहाँ आकर भी समझ रही हूँ। तुम्हें पहचानने में मैंने किसी दिन भी भूल नहीं की। दूसरे चाहें जो भी समझें, जो भी कहें। तुम्हें मेरा कोटि-कोटि प्रणाम। तुमने एक दिन मेरी रक्षा की है। तुम्हारे इस ऋण को जीवन में परिशोध नहीं कर सकती--इसकी योग्यता भी मुझमें नहीं है। यह वेदना चिरन्तन बनी रहेगी मेरे हृदय में। मुझे माफ करो कल्याणी दीदी।'

:२३:

सुधा ने अपनी चिट्ठी में अपना पता लिख दिया था। उसी पते को देख कर एक दिन शान्ता सुधा को देखने आ पहुँची। पता ढूँढ़ने-ढूँढ़ते वह थक गयी है, यह उसके चेहरे को देखने से ही मालूम हो जाता है। कमरे में प्रवेश कर बोली—'बाप रे, यह कमरा है! पता मिला भी तो कमरे को खोज न पायी।'

सुधा म्लान हँसी हँस कर बोली—'सभी अच्छे हैं तो शान्ता ?'

'हम लोग अच्छे नहीं रहेंगे तो क्या तुम लोग अच्छी रहोगी ?' शांता ने मजाक करते हुए कहा।

किन्तु सुधा का म्लान मुख इससे और भी म्लान हो उठा।

शान्ता ने पूछा—'भैया कहाँ हैं ?'

'सब कुछ तो समझती हो बहन, पेट की चिन्ता

में गये हैं। संभव है शाम तक आवें। आने का समय भी हुआ है—बैठो।' सुधा बोली—'अब उस मकान की खबर बताओ।'

'बताती हूँ, बताती हूँ, ठहरो भैया को आने दो।' यद्यपि शान्ता खबर सुनाने के लिए खुद कम लालायित नहीं है, फिर भी वह केवल सुधा को ही नहीं सुनाना चाहती। शान्ता बोली—'पहले तुम्हारा घर-संसार देखूँ तो। रसोई कहाँ बनाती हो?'

शान्ता खुद ही घूम-घूम कर सब कुछ देखने लगी। घर की सारी खबरें अन्ततः दबा दीं। इस घर की खबर अच्छी तरह जान लेने की इच्छा ही जैसे उसकी बलवती हो उठी थी।

शान्ता ने पूछा—'नरेन भैया आते हैं न?'

'आये थे एक-दो दिन।'

'फिर नहीं आये?' शान्ता ने साग्रह पूछा—'भैया ने पुनः उनके साथ झगड़ा तो नहीं कर लिया?'

'नहीं' ऐसी बात नहीं है।'

इसी समय अवनी आ पहुँचा। कमरे में घुसते ही शान्ता को देख अवाक होकर बोल उठा—'शान्ता!'

शान्ता मुस्कुरा कर बोली—'हाँ, मैं ही हूँ। इतनी देर बाद शान्ता को एक खबर सुनाने का मौका मिल गया। बोली—'क्यों भैया, चिट्ठी पाकर दी नहीं आई, मैं आई हूँ, इसलिये नाराज तो नहीं हो?'

'चिट्ठी!' अवनी ने भौंहें टेढ़ी कर लीं। विरक्ति के स्वर में बोला—'किस ने लिखी है चिट्ठी?'

'क्यों, भाभी ने'—शान्ता ने मधुर स्वर में हँसते हुए कहा—'और शायद तुम्हें मालूम नहीं है?'

अवनी ने अत्यंत विरक्ति के साथ एक बार सुधा की ओर देखा। उसके मुरझाये मुख को देख कर जैसे उसने सब कुछ समझ लिया।

नीरस स्वर में बोला—'चिट्ठी लिख कर यह हंगामा फिर क्यों? यह सब मुझे पसंद नहीं है—एकबारगी नहीं।'

शान्ता अच्छी लड़की की तरह बोली—'भाभी को तुम नाजायज ही धमका रहे हो भैया। अपना पता भी तो हम लोगों को नहीं दे आये। दीदी नहीं आयी न सही, मैं तो आ सकती थी। जो हो, एक अच्छा घर ढूँढ़ निकाला है। ढूँढ़ते-ढूँढ़ते थक गयी हूँ!'

अवनी बोला—'यही मेरा स्वर्ग है। तुम्हें नहीं पसंद आ सकता है—पक्के मकान में रहनेवाली हो तुम, तुम्हारी बात बड़ी है। और दो दिन बाद ही अच्छे मुहल्ले में इससे भी अच्छे मकान में जा रही हो।'

सामने शान्ता को पाकर अपनी जैसे अपने गुस्से को उसी के ऊपर उतारने लगा।

शान्ता नाराज तो हुई नहीं, उल्टे हँस पड़ी। बोली—'यह सब बातें अपनी बड़ी बहन को जाकर सुनाओ, वही बड़ी है। अब मुझे बताओ, मैं यहाँ कब आऊँ?'

'क्यों, अच्छी तरह ही तो हो वहाँ।' अवनी बोला उसी तरह ताना मारते हुए—'अच्छा-बुरा खाती हो, सज-सँवर कर घूमती फिर रही हो।

शान्ता ने हताश आँखों से देख कर कहा—'तुम्हीं ने तो कहा था, कुछ दिन बाद यहाँ आ जाना।'

'क्यों सुख से तुम्हें अरुचि हो रही है क्या?'

'हो रही है। मुझे तनिक भी वहाँ अच्छा नहीं लग रहा है भैया!' शान्ता बोली—'दीदी तो आज कल मुझ से बातें भी नहीं करतीं। उसकी नौकरी का दिमाग अब बर्दाश्त नहीं हो रहा है।'

सुधा के मौन मुख की ओर अर्थपूर्ण दृष्टि से देखकर अवनी जोर से हँस पड़ा। अर्थात् देखो, इस लड़की के हृदय पर भी कल्याणी के अहम् का आघात लगा है।

इसी समय बाहर नरेन का कंठ-स्वर सुनाई पड़ा—'अवनी, घर में हो?

शान्ता की आँखों में ज्योति जगमगा उठी । वह जैसे सहसा चौंक पड़ी । बोली—'नरेन भैया आये हैं, शायद भैया !'

'अरे आओ-आओ, बिना हिचकिचाहट अन्दर चले आओ ।' अवनी पुकार कर बोला—'ऊँ हूँ जूतों के साथ—इस में जरा भी गलती मत करो । इस गली के कुत्ते बड़े भूखे हैं—ले भागेंगे ।'

उसके शोर गुल से भरे स्वागत के उत्तर में अवनी बोला—'लगता है, अच्छे ही हो ।'

'गरीब हूँ ठीक, किन्तु हृदय की गर्मी रुपये की गर्मी से कम क्यों होगी भाई !' अवनी हँस कर बोला—'मरने के बाद चिन्ताओं में डूबे मनुष्यों को सारा दिन खोज-खोज कर निकलता हूँ और दलाली में जो पाता हूँ उसे ही दोनों प्राणी बाँट-बूट कर खाते हैं । किसी की परवाह नहीं करता, किसी के पास फटकने नहीं जाता ।'

'यही अच्छा है अवनी । आत्म-विक्रय के घृणित सुख से स्वाधिकार का सुख लाख गुना अच्छा है ।' इसके बाद उस मकान से आयी शान्ता को देखकर अचानक गंभीर हो उठा ।

नरेन के इस गभीर मुख की ओर देखकर अवनी ने मुस्कुरा कर पूछा—'अच्छा अब बताओ उस मकान की कुछ खबर-टबर रखते हो ?'

नरेन हाथ जोड़ कर बोला—'माफ करो भाई, उस मकान की बात मत उठाओ । वहाँ की याद आने से भी घृणा होती है । कल्याणी के बारे में तो आफिस में मुँह दिखाना भी मुश्किल हो गया है । छीः छीः ।—'

उनकी बातचीत के बीच शान्ता अचानक खिलखिला कर हँस पड़ी ।

अवनी ने पूछा—'हँस क्यों दिया ?'

'तुम लोगों की बातें सुनकर भैया !' शान्ता ताना मारती हुई बोली—'किस को कब तुम लोग सिर पर चढ़ा लेते हो और कब किस को उठा कर फेंक देते हो—मैं तो कुछ समझ ही नहीं पाती !'

'कल्याणी को मैंने सिर पर चढ़ाया है ?' अवनी क्रोधित हो उठा ।

शान्ता चुप हो गयी ।

नरेन को लगा जैसे यह ताना अवनी को नहीं, उसी को मारा गया है । इसीलिये वह धीरे-धीरे बोला—'हाँ, मैंने एक बड़ी भारी गलती की थी, यह ठीक है । उसी पाप का प्रायश्चित कर रहा हूँ अब अपने सहयोगियों की आवाजाकशी सुन-सुन कर ।'

'तुम्हारे आफिस की और क्या खबरें हैं ?' अवनी ने पूछा । 'स्ट्राइक शुरु हो गयी है ?'

'नहीं; स्ट्राइक की नोटिस दे दी गयी है । आगामी सप्ताह से शुरु होगी ।' नरेन बोला—'स्टाफ के सभी लोग स्ट्राइक के पक्ष में हैं—केवल मुट्ठी भर अफसरों और तुम्हारी बहन को छोड़ कर ।'

तब तो 'शान्ता ठीक ही कह रही थी ।' अवनी बोला—'उन्नति का मोह है ।'

शान्ता बोली—'आज कल घर लौटने में किसी-किसी दिन नौ-दस बज जाते हैं ।

'इतनी देर हो जाती है !' शान्ता की ओर देख कर नरेन अचानक चौंक उठा ।

शान्ता पुनः अपने आप ही हँस पड़ी ।

किन्तु यह हँसी जैसे फिर नरेन के हृदय में चुभ गयी । शान्ता को सुनाते हुए वह बोला—'गलती सबसे होती है, मुझसे भी हुई है ।' तनिक रुक कर फिर क्षुब्ध स्वर में बोला—'आफिस में भी मुझे कम आवाजकशिया नहीं सुननी पड़तीं । छलनामय जीवन के एक लोभ, एक मोह ने उसे आच्छादित कर लिया है ।'

नरेन का विक्षोभ, शान्ता की तेज धार के समान बातें अवनी के हृदय में काँटे की तरह चुभ-चुभ जाती हैं । अत्यन्त सहज मनुष्य की अत्यन्त सहज ईर्षा और आघात लगाने की एक इच्छा अवनी के हृदय

में भी थी, किन्तु नरेन—विशेषतः शान्ता की बातों में कल्याणी के अधः पतन का जो इङ्गित था, उसने अचानक उसके हृदय को जैसे एक घृणा के भाव से भी भर दिया। उनकी बातचीत से बीच में एकबार अचानक अवनी बोल उठा—'क्या मालूम! कल्याणी--वही कल्याणी मेरे इतने दिनों के सारे विश्वासों को चूर्ण-चूर्ण कर देगी!'

शान्ता ने देखा भैया के मुख की ओर।

नरेन भी अचानक अकबका-सा हो कई क्षणों तक अवनी की ओर ताकता रह गया। अवनी और कल्याणी में आपस में जो अपूर्व आकर्षण और बन्धुत्व था, वह नरेन से छिपा नहीं है।

शान्ता ने जैसे सब की ओर एक नजर देखकर सब कुछ समझ लिया। खुद ही उस प्रसङ्ग को रोक कर बोली—'जाने दो उन सब बातों को। मैं तुम्हारे यहाँ कब चली आऊँ भैया, यह बताओ।'

नरेन ने अवनी से पूछा—'शान्ता शायद यहाँ आ जाना चाहती है?'

अवनी के कुछ बोलने के पहले ही शान्ता ही बोल उठी—'हाँ, मुझे इस जीवन को उज्ज्वल बनाने का मोह नहीं है। तुम्हारे यहाँ खाये बिना भी मुझे अच्छा लगेगा।'

कहना न होगा कि ये बातें अवनी को अत्यन्त मीठी लगीं। वह नरेन और सुधा की ओर देखकर मन्द-मन्द मुस्कराने लगा। नरेन ने आँखें उठा कर इतने दिनों बाद शान्ता को देखा जैसे जी भर कर। जैसे पहले-पहल देख रहा हो—जैसे उसकी यह नयी जान-पहिचान हो।

नरेन की उन मुस्कुराती आखों की ओर एक नजर देख कर शांता बेचैन सी होकर उठ पड़ी। खड़ी हो कर बोली--'कहो भैया, कब आऊँ?'

अवनी ने कहा—'आओगी—तो आओ—लेने को कहा है तो लूँगा ही। जरा और मैनेज कर लूँ—ठहरो।'

'तब मैं अभी जाऊँ। काफी दूर जाना है। संध्या भी हो गयी।' कह कर तनिक चिन्तित दृष्टि से शान्ता ने नरेन की ओर देखा। बोली—'मुझे तनिक पहुँचा देंगे नरेन भैया ?'

'जरूर, चलो।' नरेन भी उठ खड़ा हुआ। बोला—'अच्छा, अब जाऊँ अवनी आज।'

विदा लेकर वे चले गये।

दोनों सट-सट कर पैदल ही चले जा रहे हैं। नरेन चुप है—अन्यमनस्क लेकिन शांता की आँखें मुस्कुरा रही हैं, मुख हँस रहा है। न जाने कहाँ से आज पूर्णता का ज्वार आया है उसके हृदय पर। वह कोई खतरनाक बात कहना चाहती है। लेकिन नरेन जैसे अपने हृदय की किसी गहराई में खो गया है। शान्ता के साथ न जाने क्या सोचते-सोचते वह बढ़ रहा है।

कनखियों से शान्ता ने उसे कई बार देखा। इसके बाद पूछ बैठी—'आप लोगों की स्ट्राइक कब शुरू हो रही है ?'

एक लम्बी साँस खींच कर नरेन ने कहा—'आज से ठीक बारह दिन बाद।'

तुम्हारा क्या ख्याल है, हड़ताल होगी ?' शान्ता ने फिर पूछा।

इन सब के बारे में शान्ता के हृदय में कोई कौतुहल जाग सकता है—इसकी नरेन ने कल्पना भी नहीं की थी किसी दिन। किन्तु आज कल्याणी के प्रति उसका हृदय जब एकबारगी विरूप है, तब उसके हृदय के तमपूर्ण कोने से अपरिचित शान्ता का यह कौतुहल नरेन को बहुत अच्छा लग रहा है। वह बोला—'अभी कुछ भी समझ नहीं पा रहा हूँ शान्ता।'

'इस बीच आपकी भी तो छटाई हो सकती है ?'

'हाँ, किसी दिन भी।'

'क्या होगा फिर ?'

शान्ता की बातों में केवल आग्रह ही नहीं है—एक सहृदय दुश्चिता का भाव भी झलक रहा है। नरेन को पल भर में ही याद हो आयी—एक और आदमी की बात, शान्ता की ही तरह विह्वलता और आतंक उसके मुख पर भी है। उसने भी ठीक यही कहा था। किन्तु उन दिन के और आज के भाव में अन्तर है।

शान्ता अपने आप ही बोली—'फिर भी यह आत्मविक्रय से अच्छा ही है।'

'अच्छा है?'

'हाँ और क्या नरेन भैया?' उसकी मेंबातों जैसे अभिमान के भाव चमक उठे। बोली—'मैं अधिक नहीं समझ पाती, यह ठीक है, मैं मूर्खा हूँ—किन्तु फिर भी क्या अच्छा है और क्या बुरा, अच्छी तरह समझती हूँ।'

नरेन के हृदय में जैसे प्रतिक्रिया का एक आवेग अँगड़ाइयाँ लेने लगा। इसका उद्देश्य और कुछ भी नहीं—कल्याणी और उसकी शिक्षा-दीक्षा। वह बोल उठा—'तुम्हें अधिक विद्या की जरूरत नही है शान्ता, सीधी-सादी बातें इसी तरह समझ लेना ही काफी है।

नरेन को लगा जैसे वह इतने दिनों से उनके घर आता-जाता है, लेकिन इस लड़की को वह आज तक अच्छी तरह पहचान ही न सका, पहचानने की चेष्टा भी नहीं की! वह केवल महामाया तक ही नहीं रह गयी है, अपितु उसके परिचय से भी बहुत दूर छूट गयी है। उसे कल्याणी की बातें भी याद हो आईं। उसने कहा था—'शान्ता ही तुम्हें प्यार करती है, शान्ता के ही साथ तुम्हारा विवाह करना उचित है।' तरह-तरह की बातों के एक दबे आवेग के साथ नरेन शान्ता के साथ सट-सट कर चलने लगा।

मकान के सामने आकर नरेन चौंक कर खड़ा हो गया। बोला—'अब जाऊँ शान्ता।'

'घर में नहीं चलेंगे ?' शान्ता की बातों में आन्तरिक आग्रह था।

'नहीं, अब लौट जाऊँ।' नरेन उदास मन से बोला।

शान्ता जैसे तनिक घबड़ा गयी। फिर भी उसी आग्रह और प्रत्याशा के साथ बोली—'कल फिर भैया के डेरे पर जाऊँगी—आयें आप भी ?'

उत्सुकता से भरी उसकी युगल आखें और प्रत्याशा से परिपूर्ण उसकी जिज्ञासा—उसके सामने खड़े हो कर नरेन कह न सका—नहीं आऊँगा।'

:२४:

अवनी के नये मकान पर

जिस तरह नरेन ने शान्ता के साथ एक नया परिचय प्राप्त किया, ठीक उसी तरह सुधा आज उसे एक अजनबी-सी प्रतीत हुई। दिन-दिन जैसे वह एक बारगी शिथिल होती गयी और बाहर के व्यवहारिक जगत से जैसे अपने को दूर कर एक दम संकुचित-सी हो उठी। एक तरफ घर की आलोचना, कल्याणी का प्रसंग अथवा कभी-कभी नरेन की स्ट्राइक की तरह-तरह की खबरों से यह नया अड्डा गूँजने लगा तो दूसरी तरफ इस अड्डे से सुधा अपने को एकबारगी दूर रखने लगी। वहाँ उपस्थित रहने पर भी वह किसी बातचीत में भाग नहीं लेती।

नरेन ने एक दिन पूछा—'सुधा को हुआ क्या है?'

'होगा क्या?' एक धीमी हँसी सुधा के होंठो पर थिरक गयी।

शान्ता ने टिप्पणी की—'दीदी की बातें हम लोग करते हैं—शायद वही भाभी को अच्छा नहीं लगता ।'

नरेन का मुख सहसा तनिक गंभीर हो उठा । वह बोला—'संभव है, हम लोग निरर्थक उसकी निन्दा किये जा रहे हैं, जो करना उचित नहीं है । उसके लिए मैं दुखित हूँ सुधा ।'

सुधा विमूढ़-सी बोल उठी—'नहीं-नहीं, उसके लिए नहीं नरेन बाबू । जो बात निन्दा के लायक है उसकी सभी निन्दा तो करेंगे ही । मैं कतई इसकी चिन्ता नहीं करती ।'

नरेन बोला—'फिर भी उस मकान से इस मकान में एक परिवर्तन तुममें देख रहा हूँ सुधा—इससे तुम इन्कार नहीं कर सकती ।'

केवल एक म्लान हँसी हँस कर सुधा ने इस बात को उड़ा दिया ।

संध्या हो गयी है—अवनी का अब तक भी पता नहीं । नरेन बोला—'अवनी तो अब तक भी नहीं लौटा !

उदासीन हो कर सुधा बोली—'क्या मालूम । देर होने पर भी तो कुछ पूछने का उपाय नहीं ।' कहकर वह फिर पूर्ववत हँस पड़ी ।

'नाराज हो जाता है शायद ?'

'नहीं, अभाव का अभिमान है ।'

सुधा की खिन्नताभरी बातें नरेन के हृदय को ठेस पहुँचाती हैं । उसे प्रतीत होता है—सुधा की उदासीनता का भी शायद यही कारण है ।

नरेन ने फिर पूछा—'घर से निकलता कब है ?'

'प्रातःकाल ही ।'

'दोपहर में वापस नहीं आता ?'

'पहले वापस आते थे, इधर कई दिनों से नहीं आते—' सुधा म्लान हँसी हँस कर बोली—'अचानक होश हुआ रुपये जमा करने का । घर में बैठे रहने से तो पेट भरेगा नहीं ।'

'घूमे, किन्तु प्रातः काल से अब तक ।'

सुधा चुप हो गयी।

शान्ता हँस कर बोली—'अब समझी, इसी से भाभी का मन खराब है।'

नरेन सिर हिला कर बोला—'नहीं नहीं शान्ता, यह अवनी का अन्याय है। अकेले-अकेले एक आदमी को कहीं अच्छा लगता है? आज दोपहर को भी नहीं आया था?'

सुधा ससंकोच बोली—'नहीं।'

शान्ता मुँह पर हाथ रखकर हँस पड़ी। बोली—'भैया उस मकान में दोपहर से निकलते भी न थे। मुझे तो लगता है मियाँ-बीबी में कुछ झगड़ा-झंझट हुआ है भाभी।'

नरेन बोला—'अवनी में यही एक भारी दोष है। हठी बहुत है वह अपनी धुन में रहता है। जब जिस पर उतारू हो जायगा, बस उसी के पीछे दीवाना। उसके इस दोष को बर्दाश्त कर लो सुधा भाभी। खैर, यह तो बताओ, अवनी के स्वर्ग में आज क्या-क्या भोजन बना है?'

सुधा खिन्न हो कर बोली—'स्वर्ग के भोजन की कितनी बखान करूँ—पोलाव, कलिया, कोफ्ता, कोर्मा—'

'अच्छा! अच्छा!'

सुधा तनिक चुप रह कर फिर बोली—'मेरे लिए एक काम की व्यवस्था कर देंगे नरेन भैया?'

'काम! नरेन इस आग्रहशीला बाला के मुख की ओर क्षणों तक ताकता रह गया। फिर बोला—'कौन काम?'

सुधा लजा कर बोली—'कार्पोरेशन के किसी प्राइमरी स्कूल में ही सही........सब समझते तो हैं—'

वह अपनी बातें पूरी नहीं कर पायी। जिस तरह जल्दीबाजी में यह प्रसङ्ग आरम्भ किया था उसी तरह रुक भी गयी। फिर भी उसकी इन अपूर्ण बातों में उसका आग्रह और उसकी व्याकुलता इस तरह स्पष्ट रूप में

झलक उठी कि नरेन क्षणभर उसके संकुचित, लज्जित मुख की ओर निर्निमेष ताकता रह गया।

उनकी बातचीत के बीच में ही अवनी आ धमका। आते ही उस पर नरेन और शान्ता—दोनों गरज पड़े—

'यह तुम्हारी भारी गलती है.......।'

'हुआ क्या!' अवनी ने पूछा चौंक कर।

'तुम सुबह से ही गायब हो और अभी आ रहे हो!' शान्ता बोली—'भाभी रूठ कर बैठी हैं। यह क्या?'

'तुम्हारे उस मकान का जीवन सुखमय है।' अवनी ताना देकर बोला—' 'मैं कहाँ गरीब आदमी। खट कर खाना पड़ता है। बैठे रहने से खाना मिलेगा?'

नरेन बोला—'तुम्हारे इस नये घर प्रथम दिन आकर तो तुम लोगों के मुख से ऐसी बातें सुनी नहीं अवनी! मालूम होता है कोई क्रोधपूर्ण बात कही थी।'

कहा था जरूर। लेकिन अब परिवर्तण हो गया है। समुद्र के फेन के समान सूख-सूख कर वह अवनी अब कठोर हो गया है।

अवनी ने पलक मारते एक बार सुधा के सूखे विवर्ण मुख की ओर देख लिया। इससे सुधा का खिन्न मुख और भी खिन्न हो उठा। बाजार के झोले को सुधा के हाथ में देते हुए अवनी बोला—'जल्दी कुछ बना डालो सुधा—पेट में जैसे विश्वब्रह्मांड जल रहा है। झोले में ही सब कुछ है।'

'इसका मतलब! अब रसोई बनेगी?' सुधा के सूखे मुख की ओर देखकर नरेन ने पूछा—'यही तुम्हारे स्वर्ग के भोजन का नमूना है क्या? खैरियत है कि कुछ माँग न बैठा।'

सुधा बाजार के झोले को लेकर वहाँ से चुपचाप चली गयी।

नरेन मधुर स्वर में बोला—'जो हो, अतिशय मत करो अवनी। जितना भी समझ पाया हूँ—सुधा के हृदय को गहरी चोट पहुँची है।'

'कुछ कहा है शायद ?' अवनी ने भौंहें टेढ़ी कर पूछा।

शान्ता हँस कर बोल उठी—"हाँ, और इसी को लेकर फिर झगड़ा करो हम लोगों के चले जाने के बाद !"

अवनी चुप हो गया। शान्ता की बात से उसके चेहरे पर प्रसन्नता नहीं आयी।

इस प्रसङ्ग को और आगे बढ़ाने की नरेन की इच्छा नहीं थी। वरन् पूरे दिन भर के बाद दोनों के मिलने में स्वयं को बाधक-सा अनुभव करके खड़ा हो कर बोला—'आज अब जाऊँ अवनी।'

'वाह मैं भी तो जाऊँगी'—शान्ता भी उठ खड़ी हुई। बोली—'अन्यथा कौन मुझे वहाँ तक पहुँचा देगा ? चलिये।'

उन्हें विदा करते-करते अवनी बोला—'तुम्हारे आफिस की क्या खबर है नरेन ?'

'पहले ही जैसी। कल सब बताऊँगा। नरेन उसे वापस कर बोला—'तुम जाओ, झगड़ा-टंटा खत्म करो, पेट में भी तो आग जल ही रही है। हम लोग भी जायँ।'

अवनी चौंक कर बोला—'झगड़ा-टंटा ! क्या कहते हो ?'

नरेन हँस कर बोला—'हाँ एक आदमी को अकेली छोड़ सुबह से शाम तक चक्कर काटते फिरते हो ! यह किसको अच्छा लगता है ?'

'ओ !' कहकर अवनी हँसा फिर सहसा गम्भीर हो उठा।

वे चले गये।

गली से निकल आकर शान्ता जैसे अपने आप को ही सुना कर बोली—'भैया के इस घर को छोड़ कर उस मकान में जाने की इच्छा से भी मुझे जैसे बुखार आ जाता है।'

नरेन ने पूछा 'क्यों ?'

'क्या मालूम !' शान्ता चलते-चलते अन्यमनस्क हो कर बोली— 'यहाँ अभाव है, अनशन है, फिर भी एक आदमी के लिए एक आदमी को चिन्ता है, फिक्र है। भैया और भाभी के झगड़े से इसी का आभास मिलता है। मुझे तो बड़ा अच्छा लगा है।'

बात के कहने में हृदय की जितनी भी अकृत्रिम व्यथा फूटकर निकल सकती है—शान्ता की ये बातें उस वेदना से रिक्त नहीं, ओत-प्रोत हैं। नरेन ने अपनी आँखें उठाकर एक क्षण के लिए उसके मुख की ओर देखा। उसे भी अच्छी लगीं इस बालिका की बातें। शान्ता की बातों में एक आवेग है, एक व्यथा है और है एक संवेदनशील हृदय। नरेन को सब कुछ अच्छा लगा। वह तनिक हँस कर बोला—'इनका गरीब डेरा तुम्हें बहुत पसन्द आ गया है देखता हूँ।'

भैया ने प्रथम दिन कहा था—'यह स्वर्ग है स्वर्ग।' शान्ता बोली— 'आज मैं भी स्वीकार करती हूँ—यह स्वर्ग ही है।'

नरेन अन्यमनस्क होकर बोला—'तुम्हारे भैया की दुनिया गरीब जरूर है—लेकिन इससे भी गरीब—इससे भी पीड़ित परिवार हैं। जैसे हमारे छटाई किये गये दो-चार कर्मचारी भाइयों के परिवार। चरम दुःख में पड़े उनके नये किस्म के परिवार को देख कर तुम और भी खुश हो सकती हो शान्ता।'

शान्ता साग्रह बोली - 'देखने की तो मेरी बड़ी इच्छा होती है। चलिये न चलें ?'

'जरूर—' नरेन बोला—'एक दिन ले चलूँगा तुम्हें एक आदमी के घर। जिसे तुम स्वर्ग कहती हो, वह तुम्हें दिखा लाऊँगा। अत्यन्त दुःख से तैयार हुआ है वह स्वर्ग !'

:२५:

अवनी के नये घर में शान्ता नित्यप्रति आने लगी—सुधा समझती है—वह प्रतिदिन कितने बड़े आग्रह दबाव को लेकर आती है। पीछे की बारादरी के छप्पर पर जब संध्या की छाया घनीभूत होने लगती है तब सुधा समझ लेती है—अब शान्ता के आने का समय हो गया। उसके कुछ क्षण बाद ही नरेन भी आफिस से लौटते समय यहीं आ जाता है, नरेन के बाद अवनी भी पहुँच जाता है। घनीभूत हो रही संध्या की छाया को देख वह दरवाजे की जंजीर बजने की आवाज सुनने के लिए कान खड़ा किये खड़ी रहती है। किन्तु उस दिन जंजीर असमय ही बज उठी। सुधा दरवाजा खोल चौंक उठी। सामने कल्याणी, उसके पीछे एक मोटिया के सिर पर रोजमर्रा की वस्तुएँ—मक्खन, बिस्कुट से लेकर साड़ी-धोती तक।

सुधा अस्फुट स्वर में बोली—'कल्याणी दीदी तुम!'

'हाँ, मैं ही ।' कल्याणी तनिक हस कर बोली—'चीजों को ठीक से रख लो । इसके बाद चाहो तो अभागिनी कल्याणी को खदेड़ देना ।'

'दीदी !' सुधा ने कल्याणी का हाथ अपने हाथों में ले लिया-सादर साथ खींच कर भीतर ले गयी ।

'बाप रे, यही घर है । अंधकार, सीड़ से भरा । तुम लोग बीमार पड़ोगे-कहे देती हूँ ।' अत्यन्त सहज स्वर में कल्याणी बोली—'वह जरा भी संकोच या दुविधा का अनुभव नहीं कर रही थी । बोली—'रसोई-घर किधर है ?'

कहती-कहती वह एक सीढ़ी के ऊपर बने बरामदे की ओर बढ़ गयी । यही सुधा का रसोई-घर है । ना-रसोई की कालिख तो आज तक भी कहीं नहीं लगी है । कल्याणी ने देखा सब समझा । उसका चेहरा विषाद से गंभीर हो उठा । बोली – 'आज भी अभी रसोई नहीं बनी है ?'

उसके सामने अब सुधा खड़ी नहीं रह सकी । भाग खड़ी हुई । उसकी आँखें आँसुओं से भर उठीं । उन्हें हाथों से ढँक लिया । तकिये में मुँह छिपा कर सिसक-सिसक कर रोने लगी ।

एक दीर्घ निःश्वास छोड़ कल्याणी उसके पास जा बैठी । उसके मुँह से कोई बात न निकली । धीरे-धीरे वह सुधा के बालों में अपनी अँगुलियाँ नचाने लगी । दो मौन नारी-हृदय अपने अन्तर की पीड़ाओं को जैसे एक ही समान अनुभव करने लगे ।

इसी समय पुनः बाहर की जंजीर बज उठी । अवनी ने मधुर स्वर में पुकारा—'सुधा !'

बिजली छू जाने के समान चौंककर सुधा ने कल्याणी की ओर देखा । रुँआसे स्वर में ही वह बोली—'तुम क्यों आई कल्याणी दीदी !' इसके बाद साड़ी-धोती के बंडल को जल्दी-जल्दी अपनी टूटी संदूकची के ऊपर फेंक चीजों की दौरी को रसोई-घर के एक कोने में खींच ले गयी ।

इसके बाद उसने कल्याणी को रसोईघर में ले जाकर बाहर से जंजीर बन्द कर दी।

इधर बाहर की जंजीर लगातार बजती ही रही।

क्षण भर में ही आँख-मुख पोंछ संयत हो सुधा ने बाहर की जंजीर खोल दी।

अवनी और नरेन कमरे में घुस आये।

नरेन जरा जोर-जोर से बोल उठा —'जय हो सुधा भाभी की! अवनी की नौकरी की खुशी का भोज आज ही हो जाना चाहिए।'

यह जैसे एक अविश्वसनीय अच्छी खबर का मज़ाक हो। सुधा आँखें फाड़-फाड़ कर ताकती रह गयी।

अवनी हँस कर बोला—'जो हो एक नौकरी तो मिली सुधा! किन्तु तुम्हारे बाजार का थैला आज पाकेट में ही शर्म के मारे छिप गया है। भण्डार में कुछ हो तो बनाओ।'

'छी-छी अवनी!' पाकेट से रुपये निकालते हुए नरेन बोला—बाजार के पास से ही हो कर आ रहे हैं—तुम वास्तव में रैस्कल हो, कुछ कहा तक नहीं।'

सुधा खिन्न हो कर बोली—'रहने दीजिये नरेन बाबू, चल जायेगा किसी तरह। आप लोग बैठिये।' कह वह रसोईघर की ओर का दरवाजा खोल कर निकली और अन्दर से जंजीर चढ़ा दी। हताश-सी कल्याणी के सामने जा खड़ी हुई।

कल्याणी ने उधर चीजों को दौरी से निकाल-निकाल कर सजा दिया है। उसके मुख पर न तो संकोच के भाव हैं, न दुविधा के—उल्टे हठात् अप्रत्याशित घटना की एक दबा कौतूहल उसके मुख पर नाच उठा है। मुस्कुराकर बोली—'भैया को नौकरी मिल गयी?'

'मिली तो....आनंद कहा है!' सुधा को मानो रुलाई आ रही है।

कल्याणी हँस कर बोली—'तुम चूल्हा जला दो भाभी! उनको

खाने को दो पहले। क्या एक पावरोटी नहीं मँगाई जा सकती? लेकिन, हाँ....वह देखो, बिस्कुट भी तो हैं।'

सुधा रुँआसे स्वर में बोली—'सब कुछ तो हो सकता है दीदी, किन्तु...'

कल्याणी मुस्कुराकर बोली—'फिर और क्या चाहिये? अब बिस्कुट का टीन काटो और मक्खन का टीन भी।'

कल्याणी ने इस तरह बातें कहीं जैसे कुछ हुआ ही नहीं है। घर के भीतर से सारी बातें ही इस रसोईघर के कोने में आ पहुँचती हैं। दोनों साथियों की बातें, हँसना, खिलखिलाना, बेकारी के बाद पहली नौकरी की उमंग!

शान्ता भी अब आ पहुँची है। वह भी उनकी बातचीत में हिस्सा ले रही है। शान्ता बोली—'भाभी कहाँ हैं, भाभी को तो देख ही नहीं पा रही!'

अवनी बोला—'आओ, बैठो। तुम्हारी भाभी रसोईघर में हैं।'

सुधा का मुख सूख गया।

इसी समय सुनाई पड़ा नरेन का स्वर। वह मजाक करते हुए शान्ता से बोला—'गरीब अवनी का गोरख-धंधा रोज ही तो देख रहा हूँ, तुम को ताना दे रही है शान्ता।'

'मैं गरीब जो हूँ।' शान्ता ने उत्तर दिया—'बड़े लोगों का आँख दिखाना सह नहीं पाती, इसीलिये हर रोज़ तो भाग कर यहाँ आती हूँ।'

सुधाने सूखे मुख से कल्याणी की ओर देखा। कल्याणी का सुन्दर मुख उदास हो गया है, वह अन्यमनस्क-सी हो उठी और मुख नीचे कर थालों में खाना सजाने में तन्मय हो गयी। सब सजाकर बोली—'ले जाओ भाभी, उन्हें खाना दे आओ।'

एक लम्बी सांस खींच सुधा यंत्रवत् उठ खड़ी हुई। धीरे से जंजीर खोल भोजन की थाली ले कर आ गयी इस कमरे में।

उन थालियों की ओर देखते नरेन चिल्ला पड़ा—'यह देखो, देखते न देखते सुधा भाभी ने सचमुच एक भोज का आयोजन कर डाला! ओह, मालूम नहीं जब तुम्हारी नौकरी लग जायेगी तब कितना खिलाओगी।'

अवनी एक बार थालों और एक बार सुधा की ओर देख कर आश्चर्य के साथ बोल उठा—'यह सब किस स्वर्ग से उतार लाई हो सुधा?'

'मैनेज तुम्हीं तो एक करते हो!' कह सुधा चल पड़ी—खड़ी नहीं हुई। उसका मन मानों रसोईघर के कोने में ही जा लगा है। जल्दी-जल्दी इधर की जंजीर चढ़ा वह पुनः कल्याणी के पास आ गयी।

उस कमरे से तरह-तरह की बातें सुनाई पड़ रही हैं। खास कर अवनी का वह टेढ़ा प्रश्न और शान्ता का मुँह-तोड़ जवाब सुनकर सुधा मौन हो गयी थी।

अवनी ने पूछा—'कहो, तुम्हारे बड़े घर का क्या हाल है?'

शान्ता तनिक हँस कर तीक्ष्ण स्वर में बोली—'खबर आजकल रोज नयी-नयी हो रही है। अभी तो हाल ही में एक ड्रेसिंग टेबिल आई है।'

अवनी मजाक कर बोला—'अहा, उसमें तो तुम भी मुख देखोगी। शृंगार करोगी।'

'शृंगार ही क्या।' शान्ता हँस कर बोली—'विशाल शीशा जिसमें सिरके बाल से पैर की अंगुली तक नहीं दिखाई पड़ी तो फिर मजा ही क्या! शृंगार साहब को पसंद होना चाहिए तो!'

अवनी मौन हो गया था।

किन्तु शांता बोलती ही गयी—'हम गरीब आदमी हैं...हमारी बातें कौन सोचेगा भैया!' हमलोग साहब की मोटर पर चढ़कर घूमने भी नहीं जाते, रात के दस-दस बजे तक हवा भी नहीं खाते फिरते।'

अवनी अचानक कर्कश स्वर में चिल्ला उठा—'आजकल आफिस से उसे मोटर भी मिली है क्या?'

शान्ता उसी तरह ताना देने के स्वर में बोली—'यह बात नरेन भैया से पूछो। वही अच्छी तरह जानते हैं।'

कल्याणी का मुख जैसे एकबारगी रक्त-शून्य हो गया है। उस मुख को देख सुधा विचलित हो रही है। एक दबी वेदना के साथ वह उठ खड़ी हुई।

उस कमरे की बातें अब भी सुनाई पड़ रही हैं।

शान्ता कौतूहल के साथ बोली—'भैया को नौकरी मिलते न मिलते, देखती हूँ, भाभी के लिए अच्छी-अच्छी साड़ियाँ भी आ गयीं।'

'साड़ी! कहाँ?' अवनी के स्वर में आश्चर्य है।

'वही तो—'

सुधा की छाती धक्-धक् कर उठी। हाय! साड़ी के बंडल को जल्दीबाजी में संदूकची के ऊपर ही फेंक आयी है।

उस कमरे में एक तूफान के आभास की कल्पना कर सुधा कल्याणी का हाथ पकड़ खींचने लगी—'और नहीं, एक क्षण भी नहीं दीदी, तुम अब कभी मत आना...हम मर भी जायँ तब भी नहीं–उठो, चलो!'

कल्याणी की खिन्न मलिन सूखी युगल आँखें आँसुओं से छलछला उठीं।

पीछे के एक दरवाजे से कल्याणी को निकाल देने के लिए सुधा उसके हाथ पकड़ जोर-जोर से खींचने लगी। बोली—'हम लोगों की बातें एकदम भूल जाओ दीदी! अपने मन के अनुसार तुम मिलू-बिलू को बनाओ, ताकि वे बेईमान न बन सकें।'

इसके बाद झुककर कल्याणी को प्रणाम कर बोली—'अंतिम बार प्रणाम करने दो दीदी, मैं जन्मांतर पर विश्वास नहीं करती, भाग्य पर भी नहीं! फिर भी मन ही मन यही कामना करती हूँ—काश मैं तुम्हारी बहन होकर जन्म लेती!'

उधर अवनी रसोईघर के दरवाजे पर धक्के दे रहा है—गर्जन कर रहा है। सुधा कल्याणी को विदा कर जल्दी दरवाजा खोल देने के लिए दौड़ी आयी।

दरवाजा खोल दिया।

अवनी जोर से चिल्लाकर बोला—'दरवाजा बंद करके कहाँ भाग। गयी थी?'

'इस लिए कि उस कमरे में धुंआ न जा सके।'

'यह धोती-साड़ी कौन दे गया है?' क्रोध के साथ अवनी ने साड़ी-धोती के बंडल को सुधा के मुँह के सामने ले जाकर पूछा।

सुधा का भयभीत मुख कुछ देर बाद ही कठोर हो गया। सूखे गले से बोली—

'कल्याणी दीदी।'

'यह मैंने पहले ही समझ लिया था।' अवनी ने सक्रोध कहा—'इस भिक्षा के दान को लात से मार कर फेंक क्यों नहीं दिया?'

'भिक्षा का दान क्यों है!' सुधा ने अविचलित स्वर में कहा—'यह उसके स्नेह का दान है....प्यार का दान!'

'सुधा!' अवनी और गरज उठा।

सुधा पूर्ववत् कठोर स्वर में बोली—'नहीं, आज तुम डरा-धमका कर मेरा मुँह बन्द नहीं कर सकते। तुम सभी उससे ईर्ष्या करते हो, जलते हो, यह लोगों की अयोग्यता की जलन है, गरीबी की ईर्ष्या है।'

'नहीं, घृणा की जलन है।' अवनी तेजी के साथ सुधा के सामने से हट गया। कमरे में घुस साड़ी-धोती के बंडल को शान्ता के सामने फेंक दिया। बोला—'कह देना हम उसके दान के भरोसे नहीं जीते। रास्ते पर भिखारियों की कमी नहीं, उन्हें देने को कहो। वाह रे स्पर्द्धा!'

उस दिन की संध्या की बैठकी यों ही भंग हो गयी।

जाते-जाते शान्ता विकृति के स्वर में नरेन से बोली—'वह भी एक ढंग है! दीदी को क्या जरूरत थी—इनमें आकर झगड़ा लगाने की।'

नरेन चुप रहा। चुपचाप ही वह शान्ता के साथ-साथ चलने लगा सिर नीचा किये।

❋❋❋❋❋❋❋❋❋❋❋❋❋❋❋❋❋❋❋❋❋
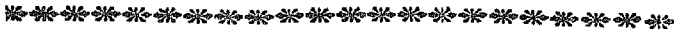
:२६: अवनी का कथित स्वर्ग

उस दिन अंधकार से स्तब्ध हो उठा था। रात काफी बीत चुकी थी। गली में सन्नाटा छा चुका था। सुधा तब भी जगी है, खिड़की का पल्ला पकड़े खड़ी है। इस गली का कुत्ता कहीं अंधकार में बैठ यत्नपूर्वक रखी हड्डी को चूसने में निमग्न है। उसके कटर-कटर शब्दों ने जैसे अंधकार को भी वीभत्स बना दिया है।

★

अवनी कुछ देर तक अकेले बिस्तर पर पड़ करवटें बदलता रहा। फिर उठ बैठा। ताकता रह गया सुधा की ओर। चेष्टा की उसके मुख के भावों को समझने की। किन्तु जैसे कुछ भी समझ न सका। सुधा अपनी गहन नीरवता के साथ अंधकार में खो-सी गयी है।

धीरे से अवनी ने पुकारा—'सुधा!'

सुधा एक लम्बी सांस खींच जैसे चौंक पड़ी। बोली—'कहो।'

अवनी ने कहा—'रात अधिक हो गयी।'

'आती हूँ।' कह वह खड़ी ही रही पूर्ववत्।

अवनी उसके पास आ खड़ा हुआ। तनिक क्षुब्ध स्वर में बोला—'हुआ क्या है तुम्हें, कहो तो?'

'होगा क्या!' सुधा बोली।

'बदल गयी।' अवनी पुनः क्षुब्ध होकर बोला—'तुम अब पहले की सुधा नहीं रह गयी।'

'तुम भी तो अब पहले के नहीं हो।'

अवनी क्षण भर चुप रहा! जैसे चुप रह कर ही अपनी कैफियतें बटोर लीं। बोला—'नरेन और शांता से उस दिन शिकायत की थी—सुना है। किन्तु मैं तो गरीब आदमी हूँ, पेट के लिए घूमना तो पड़ेगा ही—क्यों?'

'जरूर।'

'तब!' अवनी बोला—इसके अलावा सुबह से शाम तक चक्कर क्यों काटता फिरता हूँ? तुम्हारे ही लिये तो। समझती नहीं—तुम्हें मैं सुखी देखना चाहता हूँ।'

इन बातों से सुधा को चोट लगती है। एक दिन कल्याणी ने भी इस तरह आवेग भरे स्वर में उसे समझाया था। अवनी के ही समान कल्याणी की बातों में रिक्तता न थी—वह सुधा जानती है। किन्तु उन बातों ने तब भी जिस तरह याद दिला दी थी—सुधा एक निरुपाय बोझ के सिवा और कुछ नहीं—उसी तरह आज भी उसे प्रतीत हुआ—उसके लिए एक आदमी के परिश्रम का अन्त नहीं है। इस परिश्रम में उसी आदमी की आत्म-तुष्टि चाहे जितनी भी क्यों न हो, सुधा की ओर से निःसंकोच गौरव है कहाँ? सुधा बोली—'उस मकान में कल्याणी दीदी भी ऐसे ही कहती थीं।'

'इसका मतलब?'

'इससे शायद सचमुच ही एक आदमी को सुख नहीं है। उस मकान में क्या तुम सुखी थे?'

'तुम क्या कहना चाहती हो?'

'और कुछ भी नहीं—मनुष्य के अपमान, आनंद और सुख की बात कहती हूँ।'

लगा अति निकट बैठकर भी सुधा बहुत दूर से बोल रही हो। उसके मुख से जीवन की सामान्य परिधि की बातें निकल रही थीं किन्तु जैसे उनमें तीक्ष्ण अनुभूति भरी हो। वह बोली—

'आज तुमने जिसको अपमानित कर भगा दिया—उस कल्याणी दीदी की आशा-आकांक्षाओं की बातें मैं जानती हूँ। सब के लिए ही वह अपने आप को उत्सर्ग कर रही है—यह भी जानती हूँ। उसके आनंद और सुख को भी जानती हूँ। किन्तु उसमें हम लोगों को सुख नहीं मिलता, शांति नहीं मिलती। उल्टे यह सब तुम्हारे हृदय में भी चुभता था दिन पर दिन।'

'चुभता तो था ही।' अवनी सीधे बोला—'उसकी नौकरी की वह गर्मी और अहंकार—'

सुधा रोक कर बोली—'ना, तुम उसे और चाहे जो कहो, गर्मी और अहंकार मत कहो। उसने सब के बोझ को सिर पर उठा लेना चाहा था। उसमें उसका आनद और गौरव चाहे जितना भी क्यों न हो, हम लोगों का आनंद और गौरव जरा भी न था। आज सोचती हूँ—सचमुच वह क्या थी—कितनी महान थी!'

'हूँ!' इतनी देर बाद जैसे अवनी सुधा की बातों के असली अभिप्राय को समझ सका वह अभिप्राय और कुछ नहीं, बस कल्याणी का गुण-गान। नाराज होकर बोला—'तब तुम चली जाओ उसी के पास।'

'जाऊँगी, लेकिन बोझ बनकर नहीं जाऊँगा।' सुधा बोली—'अगर किसी दिन उसी के समान आत्मनिर्भर हो सकी अगर उसी के समान

इतना बड़ा त्याग कर सकी, तभी उसके चरणों के पास जाकर खड़ी हो सकूँगी। अन्यथा संभव है, तुम्हारे ही समान मैं भी उसे हेय कर दूँगी।'

अवनी क्षुब्ध होकर बोला—'मेरे समान ?'

'हाँ, तुम्हारे समान।' सुधा बल देकर बोली—'जो आत्मनिर्भर नहीं है, उसके आत्मत्याग का भी कोई मूल्य नहीं, यह बात रोज-रोज समझ रही हूँ। तुम्हारे इसी नये घर में आकर।'

अवनी उत्तेजित होकर बोला—'समझ रहा हूँ, कल्याणी आकर तुम्हारा दिमाग और खराब कर गयी है।'

सुधा तीव्र कंठ से बोली—'जिसे पहचानते नहीं उसे हेय करने की चेष्टा मत करो।'

'तुम्हीं तो केवल यह पहचानना जानती हो।' अवनी बोला—'उन सब ने गलती की है—शान्ता, नरेन, सब ने....'

अवनी की बात पूरी भी नहीं हुई कि सुधा बीच में ही टोक कर बोली—'शान्ता! शान्ता क्यों, किस जलन से रोज यहाँ विष फैला जाती है, यह मैं जानती हूँ....नरेन बाबू भी क्यों जलते हैं, सो भी। किन्तु तुम कैसे भूल जाते हो उसकी सारी बातें!'

'मैं भूल जाना चाहता हूँ—उसका नाम अपने जीवन से एक दम निकाल फेंकना चाहता हूँ!'

'तुम हो अकृतज्ञ—जो एक तुम्हारे सुख-दुख, अच्छे-बुरे के बीच सब कुछ थी, जिसने तुम्हारे दुर्दिन के बोझे को मुस्कुराते हुए वहन किया है, मुझ को लेकर जिस दिन विपत्ति में फँसे थे—किसने उस दिन तुम्हें साहस दिया था! सहायता की थी? इतने बड़े तुम्हारे संसार की गाड़ी कौन खींच रही थी?'

इतनी सत्य बातों के सामने अवनी जैसे काठ बन गया, वह मौन हो गया। उसके मुँह में जैसे कोई बात ही नहीं!

सुधा बोली—'भूल पाओगे तुम उसे? वही तो—कब बीमार पड़े थे,

क्या टॉनिक खाया था—आज भी तो उसकी याद वही दिला गयी है। बेईमानी करके तुम भूल सकते हो किन्तु वह नहीं भूल सकती।'

अचानक अवनी जैसे विचलित हो उठा। टॉनिक की उस बोतल की ओर एकटक देख मौन मुख नीचे किये वह केवल कमरे में चहल-कदमी करने लगा। इसके बाद अत्यंत नाटकीय रूप में सुधा के सामने जाकर खड़ा हो गया। उसके दोनों हाथ अपनी मुट्ठियों में कस कर पकड़ लिया। बोला—'अपने इस साधारण घर के अन्दर से उन सब बातों को एकबारगी मिटा डालो सुधा! कौन कब क्या था—यह एक दम भूल जाओ। मैं सब भूल जाना चाहता हूँ....यहाँ के प्रतिदिन के अभाव और अनशन में भी मैं स्वर्ग के आनंद का अनुभव करता हूँ। यही मेरा चरम सत्य है।'

'स्वर्ग! आनंद!! स्वार्थ!!!' कठोर विद्रूप के स्वर में सुधा बोल उठी—'आज समझी यह मेरी लज्जा है, मेरा अपमान है।'

'सुधा!' अवनी जैसे एक भीषण आघात से तिलमिला कर चीत्कार कर उठा। पर कुछ उसके मुँह से निकला नहीं....वेदना और आश्चर्य के साथ केवल सुधा की ओर ताकता रह गया।

सुधा बोली—'कल्याणी दीदी के जिस आत्मोत्सर्ग के आनन्द से एक दिन उस मकान से भी लज्जित और अपमानित होकर कहीं भाग जाने के लिए मन छटपटा उठा था—ठीक उसी तरह आज यहाँ से भी भाग जाने के लिए मन छटपटा रहा है!'

किन्तु कहाँ जायेगी वह?

वह जाय चाहे न जाये—अवनी आज चुपचाप बैठा रह गया। सुबह से शाम तक के परिश्रम का आनंद आज जैसे सूखकर विलीन हो गया। उसे अपनी कल्पना की अनेक बातें याद हो आईं। एक दिन कल्याणी को केन्द्र बनकर ही तो उसने उन कल्पनाओं का जाल बुना था;

किन्तु अन्तमें बेकार जीवन की व्यर्थता को लेकर अवनी वहाँ से भाग आया था। इसके बाद सुधा को केन्द्र बना कर अपनी रिक्त कल्पनाओं को सत्य करना चाहा था; किन्तु निष्ठुर दुर्भाग्य के साथ सुधा के संसार में भी उसकी वे मधुर कल्पनाएँ चूर्ण-विचूर्ण हो गयीं। उसकी मधुर कल्पनाओं की दुनिया सुधा के हृदय पर भी कभी आघत करेगी, यह अवनी ने सोचा भी न था। उसे आज प्रतीत हो रहा है जैसे उसका सब कुछ व्यर्थ हो गया। अत्यंत करुण स्वर में मन ही मन वह बोला—'उसके स्वप्नों, उसकी कल्पनाओं का कोई मूल्य नहीं—जगत में इनका कोई अस्तित्व नहीं।'

अंधकार पर आँखें गड़ा अवनी सोचने लगा।

उस अंधकार में हड्डी चूसने के केवल कटर-कटर शब्द सुनाई पड़ रहा है। दरिद्रता से पीड़ित एक नीरस दुःखी जीवन—खण्ड-खण्ड होकर सूखी हड्डी के ही समान जैसे उसके सामने पड़ा हुआ है!

उसी अंधकार पर आँखें गड़ाये सुधा भी बैठी है। कल्याणी को केन्द्र कर आज जो नाटक हो गया उससे उसका हृदय उद्वेलित हो रहा है। उसी उद्वेलन से आज सब कुछ उसके सामने जैसे स्पष्ट हो गया है। नरेन का क्रोध, शान्ता की ईर्ष्या, अवनी की हेयता—सब कुछ आज उसके सामने स्पष्ट हो गया है। इन सब के बीच आज उसका हृदय छट-पटा रहा है—काश कल्याणी के समान समस्त क्षुद्रताओं के ऊपर सिर ऊँचा कर वह खड़ी हो पाती! काश, उसे एक काम मिल पाता! किन्तु काम कहाँ है? इस क्षुद्रता, नारी-जीवन की इस तुच्छता और हेयता से रक्षा पाने का पथ कहाँ है?

हड्डी चूसते-चूसते गली का वह कुत्ता सहसा भों-भों कर उठा। संभवतः उसका कोई स्वजातीय उसी हड्डी के लोभ में वहाँ आ पहुँचा है। अंधकार में कुछ दिखाई नहीं पड़ा।

:२७:

प्रतिदिन संध्या के समय एक उन्मन प्रतीक्षा इस मकान में शान्ता को उद्विग्न किये रहती है। एक बात, एक ताना, एक आदमी की एक पूर्ण दृष्टि इस मकान में जैसे निरंतर उसके पीछे-पीछे घूमा करती है। संध्या के समय वह छटपटा-सी उठती है।

★

धूप की छाया तनिक मलिन होते ही वह बेचैन हो उठती है। महामाया अब उसे रसोईघर में रोक कर रख नहीं पातीं। रसोई-घर के धुएँ से झुलसे चेहरे को स्नान कर साफ कर लेती और शृङ्गार करने के लिए कल्याणी के कमरे की जंजीर बजाती।

उस दिन महामाया बोलीं—'मिलू-बिलू को भी भी अपने साथ ले जाओ न।'

'आज नहीं माँ!' शान्ता बोली—'नरेन भैया आज मुझे एक जगह ले जायेंगे।'

बेटी के सलज्ज मुख की ओर देख महामायाने एक

पलक में ही बहुत कुछ सोच लिया ! चौंक भी उठी। पूछा—'नरेन क्या वहाँ रोज आता है ?'

'हाँ।' आँखें नीची कर शान्ता ने उत्तर दिया।

क्षण भर में भी महामाया ने बहुत कुछ अनुमान कर लिया। इसके बाद अचानक जैसे नरेन पर उनका क्रोध उबल पड़ा बोलीं'—'वह इस मकान में तो अब आता नहीं !'

'मुझे देरी हो गयी माँ !' कह शान्ता ने जल्दी-जल्दी कमरे का दरवाजा बन्द कर लिया।

माँ के जिज्ञासु प्रसन्न मुख को याद कर शान्ता जैसे अपने हृदय की किसी गुप्त पूर्णता से परिपूर्ण हो शीशे के सामने आकर खड़ी रह गयी कई क्षणों तक। माँ के मुख की याद से उसका हृदय जैसे भर उठा है। अपने को देखा उसने अच्छी तरह। उसे अपना मुख भी आज बहुत सुन्दर प्रतीत हुआ। संध्या घनीभूत हो रही है—घनीभूत हो रहा है एक आदमी के साथ मिलने का समय। इस उच्छ्वसित मुहूर्त से जैसे वह परिपूर्ण हो उठी। इस उच्छ्वसित मुहूर्त के आनंद-आवेग से उसने अपने आपको शीशे के सामने धीरे-धीरे अनावृत कर डाला। उसे आज अपना अंग-प्रत्यग सुन्दर प्रतीत हुआ—जैसे किसी सुन्दर की उच्छ्वसित तरंग के साथ वह भी बहने लगी हो। एक आदमी की याद आते ही उसका सर्वांग सिहर उठता है। वह अपने युगल हाथों से अपने मुख और आँखों को बंद किये क्षणों बैठी रही—अनावृत, आनंदित। इसके बाद शृंगार करने में तन्मय हो उठी।

शृंगार समाप्त कर वह एकटक शीशे की ओर देखती रह गयी हताशा-सी। हाय ! यह तो हुआ नहीं। उसे प्रतीत हुआ—इस तरह साज-शृंगार कर एक गरीब कर्मचारी के घर जाना क्या नरेन पसंद करेगा ? हरगिज नहीं। निश्चय नहीं करेगा। पुनः उसने अपने हाथों सजाये अपने शरीर के शृंगार को मिटा दिया। फिर सीधे-सादे ढँग से

अपने को सजा लिया। इसके बाद संध्या की धूमिल रोशनी को निर्निमेष देखती सम्पूर्ण दिवस की उत्कंठा के साथ निकल पड़ी अवनी के घर के लिए।

किन्तु कहाँ है नरेन! संध्या तो समाप्त हो गयी। रात आयी-आयी। अब भी पता नहीं नरेन का। अवनी के घर पर उत्कंठित प्रतीक्षा करती हुई शान्ता घर के काम में लग गयी।

अन्त में संध्या के अंतिम क्षण के भी बीत जाने पर नरेन आ पहुँचा।

शान्ता उसकी ओर देख मुँह बिचका कर बोल उठी—'वाह! अच्छे हैं आप! आप की प्रतीक्षा में कब से बैठी हूँ।'

कहाँ जाना है, किस लिये जाना है--नरेन को कुछ भी याद नहीं। वह तनिक चौंक कर बोला—'कहाँ जाओगी?'

शान्ता तीव्र अभिमान के स्वर में बोली—'अरे वाह! आपको कुछ याद ही नहीं! आप ही ने तो कहा था, अपने किसी मित्र के घर ले जायेंगे....'

नरेन को अब सुधि आई। बोला—'ओ....ठीक ही तो!'

नरेन की यह इतनी बड़ी भूल शान्ता को अच्छी नहीं लगी। वह मौन हो गयी। उसे लगा जैसे आज का सारा आयोजन ही व्यर्थ हो गया।

अवनी शान्ता के आवेशपूर्ण मुख की ओर एक बार देख कर नरेन से पूछा—'कहाँ जाने की बात है?'

नरेन तनिक हँस कर बोला—'अपनी गरीबी के स्वर्ग के दर्शन पर तो केवल तुम्हारा ही एकाधिकार नहीं है!'

इस बात से आज अवनी अचानक सुधा की ओर देख गंभीर हो उठा। कल ही से उस स्वर्ग के मोह से उसे विरक्ति हो चुकी है।

अवनी के बिछौने पर टाँगे पसार नरेन सो गया। सोते-सोते बोला—'सुधा भाभी, एक कप चाय होगी क्या ?'

सुधा अवनी की ओर देख कर लाज के साथ बोली—'चाय है किन्तु दूध नहीं।'

'दूध की जरूरत ही क्या है ? वही दो न। समझे नरेन!' अवनी सफाई देकर बोला—'दूध डालकर हमलोग चाय नहीं पीते। ठीक नहीं लगती। क्या जरूरत है दूध की ? आजकल का मिलावटी दूध—अथवा पाउडर का दूध क्या अच्छा होता है ?'

'बस-बस अवनी, बस कर !'—नरेन हँस कर बोला—'तुम्हारी यही चाय ही मैं पीऊँगा। मैं हृदय से मानता हूँ—दूध अत्यन्त खराब चीज है।' कह उसने शान्ता की ओर देखा। हँस कर फिर बोला—'यही तो हमारे स्वर्ग का प्रत्यक्ष आभास है—इसे देखने के लिए और कहाँ दौड़ कर जाओगी शांता ? यही देखो न, हम लोग दूध मिला कर चाय नहीं पीते—कारण, दूध खराब होता है। चाय के साथ किसी चीज़ की जरूरत नहीं—कारण इससे चाय का स्वाद ही जाता रहता है। चूल्हे में आग जलायी नहीं जाती फिर भी हमलोग कलिया-कबाब पका कर खाना चाहते हैं। अपने स्वर्ग की और कितनी बड़ाई करूँ ? अवनी बीड़ी दो, बीड़ी!' कह नरेन खिलखिलाकर हँसने लगा।

किन्तु इस हँसी से अवनी खुश तो हुआ नहीं उल्टे उसके हृदय पर एक आघात लगा। उसका मुँह काला पड़ गया। उसके मुँह की ओर देख सुधा भी झट से उठ पड़ी।

नरेन के समझ में कुछ भी नहीं आया। वह तनिक और मजा लेते हुए बोला—'एक ही सांस में कैसा स्वर्ग बना डाला अवनी, देखा ? क्या बीड़ी दो।'

'वही तो है—उसी दियासलाई में ही।' कुर्ता खोलते-खोलते अवनी बोला—'दो अधजली बीड़ी हैं—चाहो तो एक पी सकते हो।'

नरेन ने साग्रह दियासलाई की ओर हाथ बढ़ा दिया।

उसमें से एक अधजली बीड़ी निकाल उसे शान्ता की नाक के पास ले जाकर बोला--'और यह अधजली बीड़ी--इसे हम फेंक नहीं देते--यत्नपूर्वक मेहमान के लिए रख छोड़ते हैं। यही तो हमारे स्वर्ग का जीवन है!'

शान्ता अवनी की ओर देख कर बोली--'कब मैं यहाँ आऊँ? साफ-साफ कहो भैया!'

अवनी और नरेन की आँखें टकरा गयीं। क्षण भर बाद ही अवनी हँसते हुए बोला--'अरे--ठहरो, ठहरो, तुम्हारे आनेसे पहले मैं तुम्हारे बोझ को किसी के सिर पर रख तो लूँ। फिर सब मैनेज कर लूँगा।'

अवनी की बात सुन कर शांता चुप हो गयी। और मन ही मन अवनी की कही हलकी बातों के गुरुत्व पर सोचने लगी। इस क्षण नरेन की आँखों से उसकी आँखें टकरा गयीं। उसे प्रतीत हुआ--संभव है, मेरे बारे में इन दोनों साथियों में कुछ बात-चीत हो गयी है। आँखें उठा कर उसने एक बार नरेन को देखा। किन्तु नरेन चाय के कई घूँट पी कर अब अवनी की अधजली बीड़ी पीने में मशगूल हो गया था।

चाय पीना समाप्त कर नरेन सिर झाड़ कर उठ खड़ा हुआ। बोला--'अच्छा, अब जाऊँ सुधा भाभी। खूब अच्छी चाय पी। जाते-जाते तुम्हें एक खुशखबरी सुनाता जाऊँ। तुम्हारे लिए नौकरी ठीक हो गयी है।'

अवनी ने चौंक कर एक बार सुधा की ओर फिर नरेन की ओर देखा। सुधा नरेन से नौकरी तक की बात कह चुकी है यह उसे पता भी नहीं। अवाक होकर बोला--'नौकरी!'

'नियमपूर्वक नौकरी।' नरेन कनखियों से देख कर बोला--'इस युग के सत्य को तुम ही ठीक-ठीक पहचान सके हो भाई। तुम सत्य-द्रष्ट

ऋषि ही हो। अब नाम लो भवनानन्द। नौकरी में स्त्रियों का पौबारह है। और हम लोग हैं अभागे—कोई नौकरी के लिए चक्कर काटता है और किसी की नौकरी पर छंटाई की तलवार झूल रही है। जो हो, दुःख के समय में याद रखना सुधा भाभी!'

लज्जा और आनन्द के दबे आभास से सुधा चुपचाप खड़ी की खड़ी रह गयी। क्षणभर तक उसके मुँह से कोई बात ही न निकली। इसके बाद धीरे-धीरे बोली—'सच कह रहे हैं या कि....'

नरेन बोला—'जिस तरह सच है चन्द्रमा, सच है सूर्य, सच है.....'

अब सुधा से रहा न गया। वह चंचल हो उठी। बोली—'दोहाई आपकी, ठीक-ठीक बतलाइये।'

नरेन बोला—'कल सुबह तैयार रहना—तभी समझ लोगी सच है कि झूठ। आज दो घंटे तक धरना देने के बाद एक महाशय से बात-चीत कर आया हूँ। उन्होंने वादा किया है।' शान्ता की ओर देखकर बोला—'इसीलिये तो आज आने में इतनी देर हो गयी।'

इस बात से शान्ता को खुशी नहीं हुई—सुधा की नौकरी की बात से तो और भी नहीं। उसे सब कुछ आज खराब ही लग रहा था। उसका मुख फूल कर तुम्बा बन गया।

सुधा ने सलज्ज आग्रह से पूछा—'कहाँ, काम क्या करना पड़ेगा?'

'जो चाहा था, वही मास्टरनी का, लेकिन कार्पोरेशन के स्कूल में नहीं। देशी साहबों का मिज़ाज आजकल बड़ा भारी है।' नरेन हँसते-हँसते बोला—'अभी तो स्कूल के शिशुविभाग में। अभी इसी को शुरू कर दो। इसके बाद परिश्रम कर दो-चार दर्जा पास कर लो, और ट्रेनिंग ले लो तो फिर क्या, पौ बारह है! जय हो।' कह नरेन चलने के लिए तैयार हो गया। शान्ता की ओर देखकर बोला—'शान्ता, चलोगी नहीं?'

'हाँ, चलिये।'

शान्ता चुपचाप नरेन के पीछे-पीछे चलने लगी। कुछ क्षण तक जैसे उसके मुँह में कोई बात ही न निकले। सुधा की नौकरी की खबर से जैसे उसका सब कुछ गड़बड़ हो गया है और एक दबी ईर्ष्या जैसे उसके हृदय में करवटें लेने लगी है। उसे प्रतीत हो रहा था, काश! एक ऐसी ही खुशखबरी नरेन किसी दिन उसे दे पाता। किन्तु उसकी संभावना तनिक भी नहीं। नहीं है, इसीलिये उसको गुस्सा आ रहा है—और यही गुस्सा उसके हृदय के टेढ़े पथ से बरस पड़ा। मन ही मन तनिक हँस कर बोली—'फिर वही नौकरी! इस बार और क्या होता है देखिये।'

'क्या होगा!' उसकी बातों का अर्थ न समझ नरेश ने उसके मुखकी ओर देखा।

शांता पूर्ववत् हँसकर बोली—'पहले भी तो इसी तरह एक व्यक्तिको नौकरी दिला दी थी। जिसमें सब जल मर रहे हैं।'

नरेन चुप रह गया।

शांता बोली—'यों हो कितने परामर्श थे, किससे उनका हित होगा किससे नहीं।'

एक तीक्ष्ण यंत्रणा के आभास से नरेन का मुख जैसे काला पड़ गया। उसके मुँह से कोई बात न निकल सकी।

शांता हँसकर फिर बोली—'दूसरे की भलाई करते-करते ही आप गये!'

:२८:
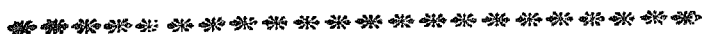
गंभीरता अवनी को कभी नहीं भाती। उसकी आँखों, मुख और हृदय पर इसका आभास भी नहीं मिल पाता। फिर भी नाना घात-प्रतिघातों को सहते-सहते उसका हृदय और मुख इस से अपने को आच्छन्न किये बिना न रह सके। किशोरावस्था और यौवनावस्था के उसके सपने टूट चुके हैं। कल्याणी की बात अब एक कड़ुवी स्मृति बन चुकी है। यहाँ तक कि सुधा को लेकर उसके हृदय में जो एक दरिद्र किन्तु सहज स्वर्ग की कल्पना थी, उसे भी सुधा ने चकनाचूर कर दिया है। अतः उसका हृदयाकाश जो स्निग्ध भले ही न हो, निर्मल अवश्य था—अब उस पर निराशा के घन छा चुके हैं—क्रोध के मेघ असफलता के मेघ, नीरसता के मेघ। यहाँ तक कि अनेक दिनों की मनवांछित नौकरी के मिल जाने पर भी मेघों की काली छाया मिट न सकी। उसका कविता-पाठ बन्द हो गया है, कविता की पुस्तकों ने पुनः अपना मुख उसके सूटकेस

के अन्दर छिपा लिया है। बाँसुरी पुनः किसी फटे कपड़े के नीचे दब चुकी है। रुक गयी है उसकी रसिकता। लेकिन सुधा की सेवा अथवा सान्निध्य का अभाव नहीं हुआ। पहले की ही तरह वह उसके अति समीप है। फिर भी उसके चारों तरफ़ जैसे उदासीनता छाई रहती है। इस उदासीनता में अवनी जैसे खो-सा गया है और उसके मुख और आँखों पर जैसे एक म्रियमाण छाया डोलती फिर रही है। इसी छाया को मुख और आँखों पर ला कर दस-पाँच तक नौकरी बजायी है, जहाँ-तहाँ मारे-मारे फिरा है और फिर शरण ली है सुधा के पास। मन ही मन कहा है--जीवन इसी तरह का ही है। इसी तरह इस शहर में लाखों व्यक्ति—क्लर्क, नौकर, भद्रलोक ने कालेज से निकल नौकरी की शरण ली है, यौवन को पार कर प्रौढ़ता प्राप्त की है और वृद्धावस्था में जा पहुँचे हैं। इसके बीच उसके स्वर्ग की कल्पना नितान्त बचपना, क्षणस्थायी और मिथ्या हो चुकी है। कौन जानता है ऐसी कल्पना और बचपना और कोई करता है या नहीं। इस घिसे-घिसाये छोटे-से जीवन और अवसर के बीच बचपने के लिए स्थान कहाँ है। यह तो केवल दो दिन नयी बीवी के साथ विवाहित जीवन के आनन्द अह्लाद का स्वाद भर लेना है। इसी तरह का एक मेघ-मण्डल छा चुका है अवनी के बाहर-भीतर।

किन्तु उस मेघमण्डल को छा कर घनीभूत होने नहीं दिया सुधा की नौकरी ने। नरेन की कोशिश से सचमुच ही उसे एक अध्यापिका की नौकरी मिल गई है। जीवनकी धारा बदल गयी। सुधा के नवीन जाग्रत हृदय के सहस्र आनन्द-स्रोतों के प्रवाह से अवनी के हृदय के मेघों की छाया न जाने कहाँ विलीन हो गयी। उनका जीवन जैसे नवीन रूप से आरम्भ हो गया। नये नवीन का मोह और आनन्द जैसे इस पूरी बस्ती पर छा गया। जैसे इस छोटे-से घर का अंधकार विलीन हो गया।

चार बजते ही सभी कलम रख देते हैं। इसके बाद कागजपत्र फाइल आदि इधर-उधर करते-करते बाकी एक घंटा समय किसी तरह कट

जाना चाहिये। सौदागरी आफिसों की कर्मधारा मंथर गति से चलती है। किन्तु उस दिन पाँच बजने को आये अवनी के उठने का नाम नहीं।

पास की टेबिल से तारानाथ बाबू चश्मा पोंछते-पोंछते बोले, 'क्यों भाया, आज हुआ क्या ? दूसरे दिन तो चार बजते न बजते उठबैठ करने लगते हो। बहूरानी के साथ झगड़ा तो नहीं कर लिया है !

अवनी जरा हँसकर बोला, 'ना यों ही।'

'ऊँहूँ, तारकनाथ बाबू बोले' 'छिपा नहीं पाओगे भाया ! तुम्हारा मुख और आँखें कह रही हैं।'

अवनी तनिक हँसकर बोला, 'ना जरा काम आगे बढ़ा लेता हूँ।'

'क्या मालूम भाया ! तारकनाथ बाबू बोले' 'बीबी के साथ झगड़ा होने पर मेरा काम भी इसी तरह बहुत बढ़ जाता था। सिर्फ क्या आफिस में ही देरी करता और भी न जाने कितने जरूरी-जरूरी काम निपटाकर दस बजे रात में घर जाता। उधर बीबी चिन्ता में डूबी रहती।'

अगल-बगल के नौजवान कर्मचारी मुहं दाबकर हंसने लगे। अवनी बोला, 'फिर !'

'फिर और क्या।' तारानाथ बाबू जोर से हंसकर बोले, 'रात में मुहब्बत उमड़ पड़ती।'

अवनी अन्त में बोल ही पड़ा, 'झगड़ा तकरार नहीं हुआ है तारानाथ भैया ! मेरी पत्नी यहीं आयेगी, इसीलिये जरा इन्तजार कर रहा हूँ।'

प्रौढ़ तारानाथ बाबू जाने क्यों तनिक चौंक उठे। बोले, 'वह कहाँ आयेंगी ! यहाँ ? कह क्या रहे हो भाया ?'

'सिनेमा जायेंगी इसीलिये यहीं से।' कह अवनी हँस पड़ा। तारानाथ बाबूके आश्चर्य से भरे मुख की ओर देखकर फिर बोला, 'उन्होंने नयी नौकरी का वेतन पाया है इसलिये आज मुझे सिनेमा दिखायेंगी।

'तुम्हारा और उनका हिसाब-किताब अलग- अलग है क्या ?'

'नहीं ऐसी बात नहीं है—मतलब'—अवनी रुक गया। सुधा की एक मामूली बात को वह कैसे व्यक्त करे, यह समझ न सका।

तारानाथ बाबू बोले—'क्या जानूँ भाई, स्वाधीन औरतों का जमाना समझ नहीं पाता।' इस प्रसंग की खुशी उन्हें अच्छी भी लग रही है, अच्छी नहीं भी लग रही है। जो भी हो, पुराने जमाने के आदमी हैं तारानाथ बाबू। अंत में टेबिल छोड़कर उठ खड़े हुए। बोले—'नये युग की नयी रीति-नीति आई। दोनों जने मिलकर सिनेमा जाओ या जहन्नम में जाओ, मुझे पांच-पैंतीस बजे की ट्रेन पकड़नी ही पड़ेगी नहीं तो मेरी बीबी चिन्ता करते-करते व्याकुल हो उठेगी।'

टन-टन कर पांच बज गये। तारानाथ बाबू की ओर देख कर सभी नौजवान हँस पड़े।

एक-एक कर आफिस से सभी चले गये। अवनी अकेले बैठा रहा।

थोड़ी देर बाद दरबान ने सुधा के आने की खबर दी। कागज-पत्र ठीक-ठाक कर अवनी उठ खड़ा हुआ।

सुधा के हाथ में कुछ ही रुपये हैं—केवल सात दिन के वेतन के रुपये। किन्तु इन्हें ही पाकर आज सुधा की खुशी की सीमा नहीं है। सिनेमा देखेगी, अवनी को दिखायेगी, यह खरीदेगी, वह खरीदेगी। उसके जीवन को आज जैसे एक नया आनंद मिल रहा है।

सिनेमा से निकलकर सुधा बोली—'मुझे कई छोटी-मोटी चीजें खरीदनी हैं, मुझे न्यू मार्केट तक ले चलो।'

'सीधे न्यू मार्केट में ?' अवनी जरा चौंककर हँस पड़ा।

सुधा सलज्ज हँसकर बोली—'मैं कभी नहीं गयी हूँ—बहुत दिनों से जाने की इच्छा—'

'चलो फिर !'

चीजें खरीदी गयीं अवनी के लिए ही अधिक—उसके लिए कुर्त्ता, रूमाल, एक सुन्दर सिगरेट-केस। और एक गुड्डा।

खरीदने से अधिक देखने की इच्छा सुधा की अधिक है। मार्केट से निकलकर जाते-जाते ही ठिठककर खड़ी हो गयी। सामने विलायती ढङ्ग से सजाया गया एक रेस्तराँ, चकमक-चकमक कर रहा है, बिजली बत्तियाँ उसके सामानों पर चमक रही हैं। सुधा एकटक देखकर बोली—'चलो जरा चाय पीलें। आफिस से निकलकर तुम कुछ खा भी नहीं सके हो।'

रेस्तराँ में वे घुस गये। चाय के साथ-साथ कुछ खाने की चीजों का भी आर्डर देकर सुधा ने एक अद्भुत सुख से अपनी आँखें बन्द कर लीं। किन्तु उसका यह सुख ज्यादा देर तक टिका नहीं। चाय के साथ क्या खाया ही है किन्तु उसका बिल देख कर ही सुधा का मुख सूख गया। खरीद-फरोख्त के बाद जो कुछ रुपये बचे थे उन्हें गिनकर बाहर निकल वह रोने जैसा ही मुहं बनाकर बोली—'मालूम होता तो कभी इसमें नहीं घुसती।'

अवनी हँसकर बोला—'वाह! खाओगी, पैसा नहीं दोगी!!

'किन्तु क्या इतना!' सुधा होंठ बिचकाकर बोली—'यह हमारे लिए नहीं है। अब चलो, टहलते-टहलते घर चलें।'

'सर्वनाश!' अवनी चौंक पड़ा। बोला—'इतनी रातमें यह चार मिल रास्ता? दोहाई है तुम्हें। ट्राम का भाड़ा मैं देता हूं।'

सुधा बोली—'हरगिज नहीं। आज तुम्हें एक भी पैसा नहीं देना होगा।'

अवनी ने स्निग्ध दृष्टि से सुधा को देखा। आज उसे अपना ही पैसा खर्च करने में आनन्द मिल रहा है। वह आनन्द जैसे मुख और आँखों पर उछल रहा है। फिर भी चार मील पैदल चलने के डर से बोला—'ट्राम-भाड़े में कितने पैसे लगेंगे ही।'

सुधा बोली—'ओह ! इस पैसे का मानों हिसाब नहीं है । चलो न बात करते-करते चले चलें । जानते हो आज घूमने-फिरने में मेरा मन बहुत लग रहा है । इस तरह किसी दिन घूम-फिर तो नहीं पायी हूँ न ।'

सुधा की ये बातें अवनी के दिल में टीस पहुँचाती हैं । वह मुग्ध आँखों से अनेक क्षण तक सुधा की ओर अपलक देखता रह गया ।

सुधा कटाक्ष कर बोली—'अब से जरा हिसाब-किताब करके सोच-विचार के चलना होगा ।' इसके बाद फिर वही, अफसोस—'ओह ! कितने रुपये रेस्तोराँ में नष्ट कर आयी—जरा सोचकर देखो ।'

रुपये की चोट से सुधा मर्माहत हो उठी है, वह पैदल ही चलेगी । वह चार मील लम्बा रास्ता उसके साथ-साथ चलते-चलते अवनी को प्रतीत हुआ जैसे अपनी खुशी और मर्जी से उसने इतने ही दिनों में सुधा को अनुकूल बना लेना चाहा है किन्तु उसका भी अपना स्वतन्त्र विचार है, हिस्सा है, अस्तित्व है, आज पहली बार अवनी को इसका अनुभव हुआ । आज उसने जीवन-पथ पर एक साथ बढ़ने का, एक साथ चलने का साथी पाया है; विचार-खुशी और आनन्द का साथी पाया है । केवल चार मील ही नहीं—जीवन के अनन्त पथ को वह इस तरह अक्लांत भाव से पार कर सकता है ।

दूसरे दिन न जाने किस बात की छुट्टी थी ।

सुबह ही नरेन आकर हाजिर हो गया । बनावटी गुस्से के साथ सुधा की ओर देख कर बोला—'खैर जो हो, मुलाकात तो हो गयी । किन्तु इस तरह का काण्ड हो जायगा, यह बात यदि पहले मालूम होती तो तुम्हारी नौकरी किसी सूरत में भी ठीक नहीं होने देता सुधा भाभी ।'

सुधा हँसकर बोली—'क्यों ! क्यों !' नरेन गुस्से के साथ ही बोला—'इस तरह रास्ते पर बैठाकर न जाने तुम लोग कहाँ-कहाँ चक्कर काटते

फिर रहे हो। घर पर आया तो पता ही नहीं। संध्या की ऐसी अड्डेबाजी भङ्ग कर दी।

अवनी और सुधा की आँखें टकरा गयीं और वे हँसने लगे।

अवनी के सामने हिसाब की एक कापी थी। उसकी ओर ताना मार नरेन बोला—'लगता है, कुछ हिसाब-किताब हो रहा था।'

कापी को झपट कर सुधा ने उठा लिया और बोली—'रहने दीजिए, आप को अब यह देखने की जरूरत नहीं।

नरेन हँसकर बोला—'क्यों अवनी, और कोई प्लान-टूलान मैनेज कर रहे हो क्या ?'

अवनी खिलखिलाकर हँस पड़ा। यही उसकी पुरानी हँसीका ढंग है—वह ढंग उसे पुनः मिल गया है। अवनी बोला—'नहीं, प्लान इस बार सुधा कर रही है। कल से ही उसके पीछे-पीछे चक्कर काटता फिर रहा हूँ।'

'ठीक ही है, ठीक ही है !'

गत महीने के सात दिनों की तनख्वाह मिली है। उसका ऐडवेंचर है। दोनों आदमी कल बारह बजे रात को घर लौटे। इसके साथ-साथ और क्या कांड हुआ सो सुनो —'

'नहीं हरगिज नहीं कह सकते।' सुधा धमकाकर बोली।

अवनी हँसते-हँसते बोला—'वेतन के रुपये मिलते ही इनको अचानक यह ख्याल आ गया कि मुझे सिनेमा दिखायेंगी। इसीलिये कल आफिस में जा हाजिर हुईं।'

सिनेमा, रेस्तराँ का लम्बा-चौड़ा बिल, न्यू मार्केट का बाजार--चार मील लम्बा रास्ता पारकर रात के बारह बजे घर आना इत्यादि अवनी ने कुछ भी बिना कहे नहीं छोड़ा। सुधा सलज्ज और ससंकोच बैठी रह गयी।

बात एकदम मामूली, फिर भी न जाने कहाँ इसमें एक असाधारण

बात छिपी है। इसीलिये ये बातें नरेन को बड़ी अच्छी लग रही थीं। सुधा और अवनी को भी अच्छी लग रही हैं। सुधा को अच्छी लग रही है, वह अचानक जाग पड़ी, अपने हृदय की खुशी और अवनी परितृप्ति से परिपूर्ण मुख। अच्छा लग रहा है बस्ती का यह अंधकार, यह शीतल घर।

नरेन ने आँखें घुमाकर देखा—घर की सजावट में भी एक चकमक-चकमक परिवर्तन हो गया है। एक नयी चीज उसकी आँखों में पड़ी, एक गुड्डा।

नरेन हँस कर बोला—'क्यों अवनी, देखता हूँ, अब यह सब भी आने लगा!'

सुधा लाज से गड़ गयी। अब उस घर में बैठा न गया, दौड़कर बाहर निकल भागी। दरवाजे के पास से तनिक तिरछी नजर से झाँक कर बोलती गयी—'आज आप को यहीं पर खाना होगा नरेन बाबू!'

'बाप रे। तुम्हारे इस स्वर्ग का खाना। वही कलिया, कबाब, कुर्मा।' नरेन हँसकर बोला—'दोहाई तुमको, तब पहले बाहर से कुछ खाये आऊँ।'

सुधा हँसकर बोली—'वह स्वर्ग आप के मित्र का है।'

अवनी के होंठों पर भी मुस्कुराहट नाच उठी। साथ ही एक छाया भी उसके हँसी से भरे मुख पर डोल गयी। अवनी हँसकर बोला—'स्वर्ग का भी पुनर्जन्म होता है नरेन। मेरा भी हुआ है।'

'इसका मतलब? तुम्हारा यह स्वर्ग क्या किसी दिन निःशेष हो गया था।'

'हो गया था। तुम लोग जानते नहीं।' अवनी मुस्कराकर बोला—'वह पुनः पैदा हुआ है।'

'अच्छी बात है!' नरेन ने पूछा—'और उसके देव-देवी का?'

'उनका भी पुनर्जन्म हुआ है। कम से कम मेरे इस घर का तो हुआ ही है।'

हुआ है—नरेन को प्रतीत होता है—उस होने का एक आभास जैसे सुधा और अवनी के मुख और आँखों पर छलक रहा है। घर यही एक है, अतः उनकी छोटी-छोटी बातें भी नरेन की आँखो से छिपी न रह सकीं।

सुधा का पूरा प्रातः काल रसोई-घर में ही बीत गया। खाना खत्म होने पर वह नरेन और अवनी के पास आ कर बैठ गयी। पहली बात है उसके हिसाब की—कौन जानता है, इस हिसाब की बात इतनी देर तक किस तरह चुभती रही है कि नहीं।

सुधा नरेन की ओर देखकर बोली—'मेरा हिसाब देखकर आप हँस पड़े थे—किन्तु अपने मित्र को समझा जाइये। अंटसंट चीजों में रुपये खर्च करने का उन्हें अभ्यास है। यह देखिये, एक मेम-साहब मार्का भैनिटी बैग खरीदा है मेरे लिए। क्या जरूरत थी, आप ही बताइये।'

अवनी रोककर बोला—'आह! तुमको स्कूल जाना पड़ता है, जरूरत पड़ती है?'

'यह जरूरत तो एक थैले से भी पूरी हो सकती है।'

'तुम ठहरो।' अवनी बोला—'मेरे लिए इस सिगरेट केस की क्या जरूरत थी। बताओ। इसमें क्या रुपये नष्ट नहीं हुए? और कल तुमने चार मील रास्ता—'

नरेन ठहाका मार हँसने लगा। बोला—'तुम लोगों की गहराई का पता चल गया। अब देखना है, शाम को तुम लोग कब लौटते हो?'

'घूमने ही कहाँ जाते हैं? कितने दिनों से तो वह स्कूल से सीधे आफिस ही चली जाती हैं—मेरे पास।'

'रोज?'

सुधा लजाकर बोली—'अकेले घर आना अच्छा नहीं लगता।'

'दोनों आदमी जाते कब हो?'

'जाते हैं एक ही साथ। वह स्कूल चली जाती हैं और मैं—' अवनी बोला—'प्राय: कई दिनों से रोज ही लेट हो रहा हूँ।'

'तब तो खूब!' नरेन हँसते-हँसते बोला—'अच्छी जोड़ी चल रही है तुम लोगों की।' इसके बाद गुड्डे की ओर अँगुली से इशारा करके बोला—'अभी तो खूब मजे में चक्कर काटती फिर रही हो किन्तु इसी तरह के जन्तु का जब आविर्भाव होगा तब क्या करोगी?'

'उसे तब कल्याणी दीदी देखेंगी।' झट-पट बोल सुधा रुक गयी। ठिठक गयी।

केवल सुधा ही नहीं—ठिठक गये नरेन और अवनी भी—ठिठक उठा जैसे सारा घर भी।

बातें समाप्त हो गयीं। समाप्त हो गये एक गीत के मर्मभेदी स्वर की भाँति नरेन के हृदय में नाचने लगा सुधा और अवनी का संसार। उसे प्रतीत होता है—जैसे उसने भी कभी इसी तरह के परिपूर्ण, आनन्दित एक जीवन का स्वप्न देखा था। इसी तरह के दो आदमियों के हाथों से, दो आदमियों के उपार्जन से स्थिापित बेहिसाबी, सहानुभूतिशील, मोहमय एक छोटे से संसार का स्वप्न। यह जैसे बहुत दिनों की बात हो।........

जाते-जाते नरेन सुधा से बोला—'और दो दिन बाद ही हम लोगों की स्ट्राइक शुरू हो जायेगी भाभी। इस बार एक हाथ में लड़ाई और दूसरे में भिक्षा-पात्र है। अभागों के चंदे के कोष में तुम्हारे अकृपण हाथ से दो पैसे अधिक मिलें यह ख्याल रखना।'

सुधा बोली—'इसके लिए मैंने पहले ही अन्दाज से निकाल कर अलग रख दिया है। उनका और अपना हिस्सा।'

नरेन मुग्ध दृष्टि से इस बेहिसाबी अचानक नौकरी में लगी लड़की के मुँह की ओर ताकता रह गया। मधुर मुस्कुराहट के साथ बोला—'क्या कहूँ, लक्ष्मी तुम्हारे घर चिरंतन बंधी रहें, तुम्हारा हिसाबी-बेहिसाबी हाथ

इसी तरह सब समय सबके लिए खुला रहे। चिरंतन इसी तरह देकर खाना।'

सुख और दुःख, आनन्द और वेदना मिश्रित एक अद्भुत हृदय के साथ नरेन ने उस दिन वहाँ से विदा ली। वह रास्ते भर सोचता रहा, 'ये सुखी हैं, इन्होंने जैसे किसी दुर्लभ पूर्णता का सधान प्राप्त कर लिया हो।
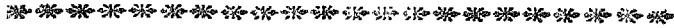
:२६:

अन्त में नरेन के आफिस में स्ट्राइक शुरू हो गयी। प्रथम दो-एक दिन तक नरेन अत्यधिक व्यस्त रहा। फिर भी आफिस से लौटते समय अवनी के घर जरूर चला जाता। दिन भर गरमागरम बहस और दौड़-धूप के बाद यहाँ पहुँचने पर उसे शांति मिलती है, सुख मिलता है, स्निग्धता मिलती है। उत्तेजित गति शान्त हो जाती है। रात चाहे जितनी गुजर जाय एक कप चाय पीये बिना नहीं टलता।

सन्ध्या बीत जाने पर शान्ता भी आती है, कुछ देर वहां रहती है, किसी के आने की प्रतीक्षा में कान खड़े किये रहती है। किन्तु वह आदमी इतनी रात बीत जाने पर आता है कि शान्ता के लिये इतनी देर तक इन्तजार करना संभव नहीं। इसी तरह बिना भेंट-मुलाकात के ही कितने ही दिन कट गये। उसके हृदय की प्रतीक्षा और धैर्य की परिधि संकुचित होती जा रही है दिन पर दिन।

इसके बाद एक दिन मुलाकात हो गयी। नरेन जल्दीबाजी में घर में घुस आया। आकर रोज की तरह बिस्तरे पर चित सो गया। सोते-सोते बोला—'कहाँ हो सुधा भाभी! एक कप चाय है क्या?'

रसोई-घर से हँसते हुए झांक कर सुधा बोली—'आ रही हूँ।'

शान्ता न जाने क्या बोलना चाहती थी। इस आदमी के आज दर्शन पाकर उसका दबा गुस्सा जैसे उभर पड़ा हो। किन्तु नरेन के उदास, म्लान मुख की ओर देख वह ठिठक गयी। उसकी ओर देख जरा हँसकर बोली—'खूब! कितने दिनों से दर्शन भी नहीं हुए आपके।'

'फुरसत कहां है शान्ता!' नरेन बोला—'फिर भी रात हो जाने पर भी तुम्हारे भैया के स्वर्ग का चक्कर काट जाता हूँ एकबार।'

अब और क्या कहेगा, शान्ता सोच न सकी। हालाँकि इन कई दिनों में ही असंख्य बातें उसके हृदय में जमा हो गयी हैं। शायद इन्हीं बातों के दबाव से उसका कंठस्वर जैसे क्षणों रुद्ध बना रहा।

नरेन ने धीरे-धीरे चाय पी ली। उसके बाद उठ खड़ा हुआ। बोला—'जोरों से सर दर्द कर रहा है। आज अब जाऊं भाभी।'

'वाह रे, मैं भी तो चलूंगी।' शान्ता भी उठ खड़ी हुई।

नरेन से सटकर शान्ता चल रही है। आज भी उसका हृदय जैसे नरेन से कुछ सुनने के लिए उत्कंठित है। प्रत्येक दिन ही उसे प्रतीत हुआ है—क्या जाने, नरेन संभव है, उससे कुछ बोले।

उस दिन नरेन बोला—मन-वन बहुत खराब हो गया है शान्ता, चलो आज जरा घूमते चलें। घर अभी लौटने की इच्छा नहीं हो रही है।'

शान्ता जैसे धन्य हो उठी। उसका हृदय अकारण आशंका से कांप उठा, बोली—'चलिये।'

आ बैठे वे उसी पार्क में—घास के ऊपर जहां आकर नरेन एक दिन और बैठा था। उस दिन साथ थी कल्याणी। शहर की सरहद पर स्थित पार्क, निर्जन, शीतल अन्धकार, दूर-दूर तक फैली बिजली बत्तियों की रोशनी। उसे ओट कर खड़ी हैं पेड़ पौधों की टेढ़ी-मेढ़ी डालियां। छिपा लिया है इन्होंने रोशनी को छाया में। इसी अन्धकार में निर्निमेष देखकर नरेन जैसे चुपचाप अपने हृदय में अंकित एक चिन्ह को ढूँढ़ने लगा।

शान्ता ने मृदुस्वर में पूछा—'आप के अफिस की क्या खबर है? स्ट्राइक शुरू हो गयी है?'

'स्ट्राइक तो कल से शुरू हो गयी है। इसीलिये बहुत व्यस्त हूँ—काम का दबाव बढ़ गया, दुश्चिंता बढ़ गयी है।

'इसीलिये आपके आने में भी देर हो जाती है। आज बड़ी देर तक इन्तजार में बैठी रही आशा लगाये।' शान्ता के हृदय का दबा गुस्सा अब शान्त हो गया। बोली—'आप लोगों की स्ट्राइक का झमेला मेरी समझ में तो कुछ आता ही नहीं। खैर स्ट्राइक में सभी शरीक हुए हैं—केवल मेरी दीदी और बड़े साहब को छोड़कर?'

'नहीं, और भी कई अफसर हैं, आफिस के कुछ पुराने विश्वासी नौकर भी हैं।' नरेन ने कहा धीरे-धीरे।

'दीदी को देखा है?'

'देखा है। छुट्टी के बाद भी न जाने क्या टाइप कर रही थी। इसके बाद बड़े साहब ने बुलाया तो उठकर चली गयी।'

शान्ता मुँह बिचका कर बोली—'टाइप ना राख। बड़े साहब कब बुलायेंगे इसी की प्रतीक्षा में ढोंग किये बैठी रहती है।' इसके बाद गुस्से के स्वर में बोली—'मैं अब उस घर में नहीं रहूँगी। यह सब सुन कर मन करता है, आज चली आऊँ!'

नरेन चुपचाप न जाने क्या सोचने लगा।

शान्ता के हृदय में उस समय जैसे एक तूफान उठ रहा हो। अनेक दिनों की प्रतीक्षा, कामना और आशा—बहुत दिनों से उसके हृदय में जैसे उद्वेलित हो रही हैं—अपने आप को ही केन्द्र-बिन्दु मान न जाने कितनी बार अपने अन्धे प्रेम को बनाया है और बिगाड़ दिया है। वही जैसे आज दबा कर रख नहीं पा रही है। नरेन के सामने अपने हृदय के भाव को प्रकट करने का ऐसा निर्जन—ऐसा एकान्त, स्निग्ध मुहूर्त उसे किसी दिन प्राप्त नहीं हुआ था। किन्तु नरेन गंभीर है, कुछ अन्यमनस्क और नीरव भी। फिर भी आज शांता का रोम-रोम जैसे बातें करने के लिए छुट-पटा रहा है।

शांता बोली—'भैया ने एक दिन कहा था—बस्ती का अन्धकारमय वह घर ही उसका स्वर्ग है। यह सचमुच कितनी सत्य बात है।' अपने उच्छ्वसित आवेग के दबाव से जैसे शान्ता खुद ही रुक गयी।

नरेन धीरे से बोला—'तब तुम भी उसे स्वर्ग ही समझती हो शायद ?'

'और क्या !' शान्ता जोर देकर बोली—'उनको अभाव है, कमी है, यह ठीक है, किन्तु उनके प्रेम के सामने यह सब तुच्छ है।'

नरेन पूर्ववत् अन्यमनस्क होकर बोला—'जीवन में यही क्या सब कुछ है शान्ता ?'

नरेन की इस बात को सुनकर शांता को लगा जैसे नरेन उसकी परीक्षा कर रहा हो। जानना चाहता हो—उसके प्रेम की गंभीरता कितनी है, उसका रूप क्या है, कैसा है। इसीलिये अवनी और सुधा के पारस्परिक प्रेम के आधार पर वह जैसे अपने हृदय के भाव को प्रकट कर देना चाहती है। सर हिलाकर बोली—'सर्वस्व है, वही सर्वस्व है। मेरे

लिये इससे बढ़ कर अन्य कुछ नहीं !' इसके बाद तनिक अभिमान के स्वर में बोली—'मूर्खा हूँ तो, संभव है इतना समझ नहीं पाती, किन्तु भला-बुरा तो समझ ही सकती हूं।'

अभिमान का स्वर नरेन से छिपा न रह सका। मृदुस्वर में वह बोला—'उतना ही यथेष्ट है शांता। उतने ही से तुम जीवन में सुखी रहोगी। इससे बढ़ कर दूसरी कोई बात नहीं।

अदम्य उच्छ्वास से शांता की युगल आँखें जैसे चौंधियां उठीं। जिसको लेकर उसके समस्त दुखो-सुखो की कल्पना है—उसी व्यक्ति से आशीर्वाद के समान एक बात सुन वह अपने को रोक न सकी। अद्भुत आनंद से स्पंदित हो दोनों हाथों से अपना मुंह ढंक वह कई बार बोल उठी—'मैं नहीं जानती, मैं नहीं जानती।'

नरेन पुनः उसी तरह मधुर स्वर में बोला-धीरे-धीरे—'मैं जानता हूं।' तनिक रुक कर फिर बोला—'एक दिन तुम भी जानोगी।'

क्या जानेगी शान्ता—कौन बतायेगा उसे, कौन देगा उसे उसकी इस परम कामना की वस्तुको ? वह तो खुद नरेन ही। किन्तु नरेन की बात से वह इस बातको स्पष्ट समझ न सकी। उसी तरह सजल स्वर में वह बोली—'उस मकान में मुझे अब जरा भी अच्छा नहीं लगता। एक दिन के लिए भी नहीं।'

नरेन जैसे थक गया है। जैसे परिवेश के साथ, परिवर्तन के साथ, यहाँ तक कि खुद अपने आपके साथ दिन पर दिन संघर्ष करते-करते वह क्लान्त हो उठा है, थक गया है। सांत्वना देकर धीरे-धीरे बोला—'होगी, तुम्हारे लिये एक व्यवस्था होगी शान्ता। उस मकान में तुम्हारी क्या हालत है, मैं अच्छी तरह समझ रहा हूँ।'

नरेन के स्वर में जो सहानुभूति और स्निग्धता थी—उसी से जैसे वह धन्यहो उठी। नरेन की अंतिम बात को अपना परम संबल मान

चुप बैठी रह गयी। उसका हृदय परिपूर्ण है। नरेन के तनिक अँगड़ाई लेकर बैठते ही उसका हृदय अचानक उछल पड़ा। कांप उठे उसके दोनों हाथ। उसे प्रतीत हुआ जैसे उसके दोनो हाथों को नरेन अपनी मुट्ठियों में कसकर अब पकड़ लेगा। उसके बाद....

किन्तु नहीं। नरेन पूर्ववत् बैठा रहा—चिन्तातुर, ध्यानमग्न। अब इन दोनों को घेरकर अन्धकार घनीभूत होता जा रहा था।

: ३० :
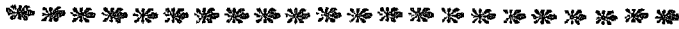
उस दिन अवनी के नये मकान की खिड़की से चोर की तरह विदा होने के बाद रास्ते भर कल्याणी केवल उन्हीं बातों को सोचते-सोचते आयी थी—जो ठीक ही हुई। इस प्रकार का घोर अपमान भी जैसे उसके लिए जरूरी था। इससे भी अच्छा ही हुआ। घनघोर आघातों को सहते-सहते, तिरस्कार और तीखे कटाक्षों से मानव-चरित्र पर जो भाव स्वभावतः अंकित होते हैं—कल्याणी के चरित्र और मन पर भी वैसा ही एक भाव उदय होने में देरी न हुई। घर लौटने पर बार-बार उसने मन ही मन कहा—पढ़ लिखकर, चिर-कालीन नारी भाग्य की जंजीर तोड़कर, सौ एक महीना पाने पर भी चारों तरफ एक साथ ही सौभाग्य का उसका इतना तिरस्कार! प्रेम ने उसके जीवन में घृणा और कुत्सा को जन्म दिया। परिवार के स्वजनों की

प्रीति और स्नेह की ज्वाला में प्राण जैसे झुलसने लगे और मां महामाया ने संसार का मनोरम भार उस पर डाल दिया है।

ठीक है—कह कर सब कुछ को उसने जैसे झाड़ फेंका। अब उसका एक ही कर्त्तव्य रह गया—आफिस और घर। मन ही मन वह बोली, अगर आज इतना भी न होता तो वह मर ही जाती। इसके बाद प्रायः महाक्रोध से अपने मन को आफिस के कार्य में तल्लीन कर दिया। जो कुछ हो—जीवन में किसी दिन एक व्यक्ति ने एक महान उपकार करके अर्थनैतिक मुक्ति में उसे मदद की थी। भाग्य से वह भी मिल गया था। नहीं तो आज इस असम्मान में मृत्यु को छोड़कर दूसरा कोई आश्रय नहीं था। वही मुक्ति का आश्रय मात्र आज उसका एक मात्र अवलम्ब रह गया है।

किन्तु उस जगह भी कई एक दिनों से स्ट्राइक शुरू हो गयी है। सहकर्मियोंके कुत्सित व्यंगों और आक्रोश के बीच वह आफिस जाने लगी—एकमात्र आश्रय थे हूवर साहेब और उनकी हुड लगी मोटरगाड़ी।

हड़ताल का तीसरा दिन है। डायरेक्टर साहेबों की एक गुप्त बैठक हो जाने पर एक हूवर साहेब को छोड़कर सभी चले गए।

सारा आफिस निर्जन। कहीं-कहीं दो-एक धीमी बत्तियां जल रही हैं। खास कमरे के बाहर बूढ़ा बेयरा शान्त-क्लांत हो एक स्टूल पर बैठा है। कमरे के भीतर से जूते का शब्द सुनाई पड़ रहा है—लगता है कोई बेचैनी के साथ चहलकदमी कर रहा है।

आफिस में हड़ताल है। कुछ अफसरों तथा कल्याणी के समान कुछ विश्वासपात्र कर्मचारियों के अतिरिक्त सभी हड़ताल के पक्ष में हैं। कलकत्ते का आफिस भी डगमगा रहा है—इसकी लहर से बम्बई का हेड-आफिस भी बच नहीं सका है और वहां से हड़ताल की लहर कम्पनी की भारत-व्यापी शाखाओं-परिशाखाओं तक फैल गयी है।

हुवर साहब की आँखें लाल हो उठी हैं। मुख तमतमाया हुआ है,

भारी मुख और भी भारी प्रतीत हो रहा है और भी गंभीर। चहलकदमी करते-करते हुवर एक स्थान पर ठिठक गया। जटिल चिन्ताओं के चक्कर से जैसे आँखें उठाकर उसने कल्याणी की ओर देखा एक बार।

'श्रीमती चटर्जी!'

कल्याणी ने मुँह फेरकर देखा बड़े साहब की ओर।

'तुम लोगों के नाम मैंने हेड आफिस में लिखकर भेज दिये हैं। वह आफिस समझे अपने योग्य कर्मचारियों की कद्र करना, जो आँधी-तूफान के बीच खड़े होकर आफिस की रक्षा करते हैं।'

कौन जाने, हो सकता है, वेतन कुछ और बढ़े। किन्तु आज कल्याणी हक्का-बक्का सी ताकती रह गयी। हड़ताली कर्मचारियों की क्रोधित हरकतें और हुवर का गंभीर मुख—आज सब कुछ उसे जैसे भयभीत कर रहा है।

हुवर बोले—'इसी नरेन मुखर्जी ने एक दिन इस आफिस में तुम्हारी नौकरी ठीक की थी, किन्तु आज इस स्काउंड्रल की हरकत देखती हो न। सबको मिलाकर आज आफिस का सर्वनाश करने पर तुला है।'

असहाय आँखों से ताकती कल्याणी चुपचाप बैठी रह गयी पाषाण की तरह।

'जानता हूँ, तुम्हारे साथ उसकी गहरी मित्रता थी।'

'थी, किन्तु अब नहीं है।' डरती डरती कल्याणी बोली। उसे याद हो आया—इस मित्रता की बात हुवर ने एक दिन और उठाई थी।

'स्वाभाविक, न रहना ही स्वाभाविक है—एक बदमाश के साथ अधिक दिनों तक मित्रता नहीं रखी जा सकती।' हुवर तनिक रुककर फिर बोले—'किन्तु आफिस के स्वार्थ के लिए—हम सब के स्वार्थ के लिए अपनी पुरानी मित्रता को तनिक और घनिष्ठ बना लेना होगा कल्याणी।'

कल्याणी भयभीत-सी साहब की ओर देखती रह गयी। उसकी बातें उसके हृदय में जैसे हथौड़ी की चोट के समान व्यथा पहुँचाने लगीं। क्या करेगी वह—उसे क्या करना होगा!

'जानता हूँ, वह स्काउँड्रल तुमसे प्यार करता था हालाँ कि तुम्हारे योग्य है नहीं—फिर भी—'

हुवर ठिठक गया कल्याणी के चेहरे की ओर देखकर। वह चेहरा कागज के समान सफेद हो गया है। कौन योग्य है और कौन अयोग्य—इसका निर्णय एक ऐसा आदमी कर रहा है जो उसकी नौकरी का मालिक है। बातें उसकी सच हों या झूठ—लेकिन कल्याणी उसके सामने चुपचाप एकबारगी असहाय-सी बैठी रह गयी।

उसकी इस असहायता की परवाह न कर नौकरी का मालिक दनादन बोलता गया, 'जैसे भी हो, इस हड़ताल से उसे हटाना होगा, लौटाना होगा। रुपये चाहे जितने भी क्यों न लगें, आफिस तुम्हें देगा।'

'मुझे यह काम करना होगा, कल्याणी आर्तनाद कर उठी।

'हाँ, केवल तुम इस कामको कर सकती हो। तुम्हारी एक नजर ही उस चरित्र-भ्रष्ट के लिए काफी है। केवल पुरानी मित्रता को तनिक उभार भर देना है।'

ये बातें सुन कल्याणी काठ की तरह मौन बैठी रही। पिता के तुल्य जिस आदमी पर एक दिन विश्वास किया था उस आदमी ने जैसे अचानक अपना रूप बदल दिया है। सहसा उसे लगा जैसे उसके सामने एक भयानक राक्षस खड़ा है और अपने एक भीषण ग्रास के सामने प्रतीक्षा कर रहा है।

निश्चय यह आफिस इसके लिए तुम्हें उपयुक्त अर्थ देगा। कितना चाहिए, बोलो!'

हाय रे हृदय! कितने दिनों की मन की यह गाँठ।...उसे जैसे

इस आदमी ने निमिष मात्र में ही खींच-खाँचकर लाकर तराजू पर लाद दिया।

'कितना चाहिये ?' हुवर ने देखा स्थिर दृष्टि से।

प्रेम नहीं, प्रेम का अभिनय। वह जैसे कोई भड़ैत है, वेश्या के सिवा और कुछ नहीं।

इस शान्त, सुशील, निरीह लड़की के हृदय में जितनी भी प्रतिरोध-शक्ति शिथिल पड़ी थी उसने अपनी पूरी ताकत के साथ उसे झकझोर कर खड़ाकर दिया। उसने बोलना चाहा--'मैं इस आफिस की स्टेनो-ग्राफिस्ट हूँ--और कुछ भी नहीं। मेरा काम किसी को भुलावा देकर उसका सर्वनाश करना नहीं है।' किन्तु वह कुछ भी बोल न सकी। उसके युगल होंठ हिले अस्पष्ट बातों को जैसे दबाते-दबाते हुवर के गंभीर मुख की ओर देखते ही एक पुञ्जीभूत घृणा जैसे उसके हृदय में उद्वेलित होने लगी। हाय रे, इस आदमी के ऊपर अपने भावी स्वप्नों को साकार करने के लिये कितना भरोसा किया था। ....

हुवर बोले--'इसके लिए अगर कहीं बाहर जाना चाहती हो तो....'

'नहीं।'

'तब' हुवर बोले, 'यह केवल एक मनोरंजन है! कई दिनों तक उसे यहाँ से हटाये रहना है, बस जरा फ्री हो जाओ, साहसी बन जाओ, अन्यथा जीवन में उन्नति कैसे करोगी? जानती तो हो कल्याणी, मैं तुम्हारा शुभाकांक्षी हूँ।'

'आप ने क्या समझ रखा है मुझे ?'

उसके उत्तेजित मुख को देख बुद्धिमान के समान साहब ने शायद निमिषमात्र में ही सब कुछ समझ लिया। कल्याणी की बातें बरस पड़ने के पहले ही बोल उठे—'ठीक है, तुमसे इतना नहीं हो सकेगा, यही तो? समझ लिया, जितना भी हो भारतवर्ष की लड़की यूरोप की लड़की नहीं बन सकती।'

'आप मुझे जो समझ रहे हैं ...' स्वर काँपने लगे कल्याणी के।

'तुम्हारे बारे में मैं कुछ भी नहीं सोच रहा हूँ श्रीमती चटर्जी। मैं केवल आफिस के बारे में सोच रहा हूँ। आफिस की मर्यादा की बात। अच्छा ठीक है। कागज कलम लो—लिखो।'

कल्याणी डरती-सी ताकती रह गयी।

'लो—लिखो। जरा नरमी से लिखना तुम्हारी भाषा तुम्हीं अच्छी तरह समझती हो। मैं कितनी बंगला जानता ही हूँ।' हुवरने अत्यन्त सहज स्वर में मधुरता के साथ कहा, 'कल संध्या के बाद नरेन को मैदान के पश्चिमी कोने पर अथवा चाँदपाल घाटपर आने के लिये कहो एक बार। यहाँ जरा एक खास बात है, यही कहना, और क्या।'

'क्या-क्या कहना चाहते हैं आप?' कल्याणी के स्वर काँपने लगे।

हुवर बोले—'यही लिखकर तुम उसके पास भेज दो। इसके बाद तुम्हारी कोई जिम्मेदारी नहीं। यहाँ तक कि निर्दिष्ट स्थान पर तुम्हारे नहीं जाने से भी काम चल जायेगा।'

क्या करेंगे ये—अगर वह आवे—अगर वह आज उसकी पुकार पर दौड़ पड़े। कल्याणी को लगा जैसे वह स्वयं एक रहस्यमयी घात की तेज छूरी की धार के ऊपर खड़ी है। उस उद्यत मृत्यु के सामने खड़ी होकर जबर्दस्ती खींचकर दूर कर दिया गया सम्पूर्ण विस्मृत अतीत जैसे एक ही मुहूर्त में उसके सामने नाच उठा। हृदय काँप उठा उसका।

'लिखो फिर।'

'मैं नहीं लिख सकूँगी,' कल्याणी चीत्कार कर उठी।

'इसके लिए भी आफिस तुम्हें रुपये देगा। कितना चाहती हो? इसके अतिरिक्त तरक्की होगी। तुम्हारे योग्य काम का सम्मान करेगा आफिस।'

'नहीं चाहिये, रुपया तुम्हारा नहीं चाहिए मुझे।' कल्याणी अन्त में रुद्ध गले से चिल्ला उठी।

'तुम्हारी पदोन्नति-तुम्हारा सम्मान—'

एक क्रोधोन्मत्त प्रकाश-रेखा चमकने लगी उसकी आँखों में। कल्याणी सिर हिला कर बोल उठी—'चाहिये नहीं मुझे यह सम्मान, यह पदोन्नति—'

'श्रीमती चटर्जी।'

'नहीं,—मैं इस आफिस में काम भी नहीं चाहती।'

'मैं तुम्हारा शुभचिन्तक हूँ, अब भी कह रहा हूँ, इस आफिस के सम्मान की रक्षा करो। तुम्हारा हित होगा।'

किन्तु उसका आत्म-सम्मान, समग्र नारी-सत्ता, जैसे अन्तिम मुहूर्त में और भी जाग्रत हो उठा। सिर हिलाकर दाँतों से दाँतों को काटती बोल उठी—'सम्मान-सम्मान!'

'सम्मान नहीं है केवल मुझे, सम्मान नहीं है केवल एक लड़की को।' इसके बाद वह तूफान के समान कमरे से भाग निकलने लगी।

हुवर का स्वर एक क्षण में ही बदल गया। धमकी के स्वर में बोले—'श्रीमती चटर्जी! तुम विपत्ति के मुँह में बढ़ती जा रही हो किन्तु।'

कल्याणी क्रोध और अपमान से काँपती घूमकर खड़ी हो गयी। बोली—'इसीलिये जाऊँगी। इन चार सौ कर्मचारियों भूखे कर्मचारियों के पास जाकर कहूँगी—'कितनी बड़ी शैतानी का जाल रचा गया है इस कमरे में बैठकर।'

'श्रीमती चटर्जी।' हुवर ने फिर धमकाया।

कल्याणी और खड़ी न रह सकी। दौड़ती हुई बाहर निकल गयी। बेयरा कान लाये सब सुन रहा था—बातों की कटौवल, हुवर का गर्जन-तर्जन। झट से ही वह कल्याणी के सामने से हट गया।

इसी समय भीतर से आवाज आई।

'बेयरा!'........

साथ ही क्रोधित हाथों से घंटी बजने लगी, टनटन !

उस दिन कल्याणी लौट आयी घर विक्षिप्त-सी। उसकी स्वप्निल आँखों और सम्पूर्ण शरीर में दुसह क्लांति छा गयी है।

क्लांति के इस बोझे को खींचती-खींचती वह घर पहुँची। आकर कुछ देर तक चुपचाप निर्जीव की तरह बैठी रही। आफिस के कपड़े तक को नहीं उतारा—यहाँ तक कि पैर के जूते तक को भी खोल न सकी। बैठे बैठे ही उसकी आँखें घर के एक कोने में सजा कर रखी गयी पैर की उस छाप पर जा अटकी। याद आया—कब न जाने कितने साल पहले किसी ने कागज की इस छाप के छोटे-छोटे दोनों पैरों में घुँघरू पहना दिये थे। साथ ही साथ उसकी युगल आँखें अब अपने पैरों में पहने जूतों पर जा पड़ीं। साधारण एक छोटे-से जीवन में इन पैरों से न जाने कितना चक्कर काटा है और वही पैर आज क्लांत-श्रान्त हो उठे हैं, जैसे अब उनमें चलने की ही शक्ति नहीं। एक लम्बी सांस खींची कल्याणी ने। पैर से जूतों को खोल एक तरफ सरका दिया। इसके बाद दोनों हाथों से सिर को पकड़े कई क्षणों तक चुपचाप बैठी रही। उसके कान के पास, उसके हृदय के पास न जाने कौन एक विद्रूप, एक व्यंग के समान बोलने लगा; तुम्हारी मुक्ति का स्वप्न, तुम्हारी आर्थिक मुक्ति का आनन्द, तुम्हारी आत्म-निर्भरता। .... यही उसका वास्तविक रूप है ?

महामाया ने उसके कमरे में झाँक कर देखा और ठिठक गयीं। उसके रक्तहीन मुर्दे के सदृश मुख की ओर देख वह जैसे किसी एक अमंगल की आशंका कर चौंक उठीं। पूछा—'क्या हुआ है तुम्हें। शरीर खराब है ?'

पहले तो कल्याणी के मुँह से कोई बात ही न निकली। डरती-सी माँको केवल देखती रह गयी।

महामाया व्याकुल-सी कमरे में घुस उसके सामने आकर खड़ी हो गयीं। पूछा—'बात क्या है, बोलती क्यों नहीं ?'

कल्याणी के होंठ अन्त में हिले। वह बोली—'मेरी नौकरी चली गयी माँ।'

'चली गयी! क्यों?'

'यह मुझसे मत पूछो मा!' विनती के स्वर में कल्याणी बोली।

'यह कैसी बचपना।' महामाया पल भर में ही उद्विग्न हो उठीं। रुखाई के साथ बोलीं—'क्या हुआ है, मुझसे कहो न!'

कल्याणी फिर भी नहीं बोली। चुपचाप बैठी रही।

महामाया कठोर स्वर में बोल उठीं—'हुआ क्या? कहो न!'

कल्याणी बोली—'तुम्हें मेरी यह नौकरी एक दिन अच्छी नहीं लगी थी माँ।'

कल्याणी की आखें सूख गयी हैं। मुँह सूख गया है। बातों में कड़वाहट आ गयी है। किन्तु महामाया जैसे चीत्कार कर उठीं—'अरे, तुम्हारे ही सर्वनाश के डर से पसंद नहीं किया था। उसी नरेन के डरसे। किन्तु आज तो तुम सभी के लिये सर्वनाश को निमंत्रण दे रही हो—अभागिनी कहीं की। चलेगा कैसे? रक्षा करो इस परिवार की।'

कल्याणी मौन! जैसे पाषाण हो।

'क्यों, क्यों नौकरी नहीं करोगी?' माहामाया फिर गरज उठीं।

कल्याणी का मुख जैसे यंत्रणा से कराह उठा हो। अपने को संयत करके बोली—'वे मुझसे दूसरा काम कराना चाहते हैं—खराब काम माँ!'

'क्या काम! कैसा कि जिससे तुम्हारा महाभारत अशुद्ध हो जाता।'

कल्याणी के हृदय पर एक प्रचण्ड आघात लगा। मर्माहत मुख से वह महामाया के क्षुब्ध-क्रुद्ध मुख की ओर ताकती रह गयी। महामाया जैसे पागल हो उठी हैं—नौकरी चाहिए ही—अर्थ चाहिए ही—इस परिवार की गाड़ी को खींचने के लिए आदमी की जरूरत है ही चाहे जैसे हो। उस मुख की ओर देख कल्याणी एकबारगी जैसे स्तब्ध, असहाय के समान बैठी रह गयी। असह्य स्वर में बोली—'वे मुझसे नरेन भैया के नाम एक

बुरी चिट्ठी लिखाना चाहते हैं। अर्थात् उसे फँसाकर अन्यत्र लेकर चले जाने को कहते हैं।'

'तो जाओ।' क्यों जाओ, उसका परिणाम क्या होगा—इतना समझने की मनःस्थिति महामाया की नहीं है—सारा संसार, सारी बदनीयती जैसे आज पेट की ज्वाला के सामने तुच्छ हो गयी है, नगण्य हो गयी है। वह बोलीं—'पहले जिन्दा रहो—इस परिवार को जिन्दा रखो!'

'तुम माँ होकर ऐसी बात कह रही हो माँ! वह बड़ी लज्जा शर्म की बात जो है....वह....बड़े....'कल्याणी बोल न सकी, जैसे किसी ने उसका गला धर दबोचा हो, वह झट से उठ खड़ी हुई।

महामाया बेचैनी के स्वर में फिर बोलीं—'तो लिख दो न चिट्ठी—चाहे वह जैसी भी चिट्ठी हो—लिख दो। लिखना होगा तुमको—अन्यथा जिन्दा कैसे रहेगी रे अभागिनी?'

कल्याणी जैसे आर्तनाद कर उठी—'नहीं, मैं नहीं लिख सकूँगी, हरगिज नहीं।'

'नहीं लिख सकोगी! क्यों नहीं लिख सकोगी?' महामाया कर्कश स्वर में बोली—'नरेन तुम्हारे लिये अपरिचित तो है नहीं! फिर लिखने में दोष क्या, जानेगा ही कौन?'

कोई नहीं जानेगा, फिर भी अर्थ के द्वारा खरीदा गया यह प्रेमाभिनय जिनके लिये मोटी रकम देने की बात कहने से भी हुवर की जबान न रुकी। यह आज अपनी सम्पूर्ण विकृति और वीभत्सता के साथ आँखोंके सामने नाच रहा है! लगता है—ये सभी जैसे कूड़े के ढेर पर उसे फेंक देने के लिए उसके पवित्र हृदय के साथ अपने नापाक हाथों से खींचा-तानी कर रहे हैं।

'नहीं-नहीं-नहीं।' हाथ से मुँह को ढँककर कल्याणी इस बार रो पड़ी। कल्याणी की रुलाई सुनकर घर में घुसते-घुसते दरवाजे पर ही ठिठक कर शान्ता खड़ी हो गयी।

महामाया पुनः चीत्कार कर उठीं—'फिर कौन बचायेगा इस संसार को ? और एक जवान लड़की छाती पर सवार है घर में। कौन उसकी शादी करेगा ? उसकी दुश्चिन्ता के मारे मेरे गले के नीचे कौर तक नहीं उतरता री अभागिनी!'

कल्याणी रोती रही केवल।

महामाया बोली—'तब अपने ही हाथों से गला दबा कर मार डाल दोनों बच्चों को और विवाह-योग्य उस जवान बहन से कह दो अपने जहर से इस संसार को और विषाक्त न बनाकर गले में रस्सी बाँध कर फाँसी लगाले। यही कह दो, कह दो यही। कैसे-कैसे पाप यहाँ हुए थे मेरे पेट से, हे भगवान!' शाप देते-देते महामायाने अपने कमरे में जाकर धड़ाम से फाटक बन्द कर लिया।

शान्ता स्तब्ध खड़ी रह गयी वहीं। इस परिवार में इस संसार में वह विष तुल्य है—उसका अस्तित्व अकल्याणकर है, अमंगल है—माँ की यह बात उसके हृदय में शूल की तरह चुभ रही है। मन ही मन बोली—कल ही चली जाऊँगी अवनी के डेरे पर—दुःख के उस स्वर्ग में। और उसके कानों में गूँजने लगा नरेन के पुरुष कंठ-स्वर का आश्वासन —

'होगा—होगा, होगा।'

नहीं, वह अब डरती नहीं।

:३१:

शान्ता दूसरे ही दिन चली आई अवनी के डेरे पर। हाथ में कागज के अन्दर लपेटी दो-एक साड़ियाँ लेकर।

अवनी बोला—'क्यों री इतने नावक्त क्यों?'

शान्ता बोली—'उस घर का दरवाजा बन्द कर चली आई भैया।

'आखिर में सचमुच तुम आ ही गयी?'

'उस मकान में रहने के लिए अब मत कहो भैया। मेरा वहाँ रहना अकल्याणकर है, मेरी सांस भी विष है ऐसा कहते हैं।'

'किसने ऐसा कहा, कल्याणी ने?'

'मा ने।' शान्ता होंठ फुलाकर बोली—'दीदी भी क्या मन ही मन ऐसी बात नहीं कहती है समझते हो?'

सुधा की ओर देख अवनी मौन हो गया। सुधा ने पूछा—'माँ के साथ झगड़ा-वगड़ा तो नहीं किया है?'

'मैं क्यों करने लगी झगड़ा।'

शान्ता बोली—'कल घर लौट कर सुना—माँ और दीदी के बीच में न जाने किस बात को लेकर बतकटौवल चल रही थी। इसी के कारण दीदी शायद कल आफिस भी नहीं गयी। उस मकान में लौट जाने के लिए मुझे कहो मत भैया।'

अवनी बोला—'तब रहो। किन्तु उनका मतलब क्या है?'

शान्ता होंठ बिचकाकर बोली—'क्या जानूँ मैं।'

सुधा ने जानना चाहा—'माँ के साथ कल्याणी दीदी का झगड़ा तो नहीं हुआ है?'

शान्ता अशान्त होकर बोली—'मा की लाड़ली बेटी है-उसके बारे में मुझे कुछ भी मालूम नहीं भाभी। उनके बड़लोगी दिमाग की मुझे कोई थाह नहीं मिलती।' अन्त में एक खोंचा मार कर बोली—'तुम एक चिट्ठी भेज कर सब खबर जान लो तो अच्छा हो। तुम तो चिट्ठी-पत्री लिखती ही हो।'

सुधा और अवनी ने एक दूसरे के मुख को देखा लेकिन किसी के मुँह से कोई बात न निकली।

फिलहाल यह प्रसंग स्थगित हो गया।

पूरी दोपहरी मन ही मन शान्ता इन्तजार करती रही। हजारों मन-गढ़न्त बातों से अपने को प्रस्तुत किये रही—कि वह आज नरेन से मन की बात कहेगी। कहेगी—नरक से मुक्त होकर वह आयी है। स्वर्ग के लिए ही चली आयी है। यही उसके जीवन का ध्रुव सत्य है, दीर्घ दिनों की कामना है।

धीरे-धीरे सन्ध्या की छाया ज्यों-ज्यों मलिन होने लगी त्यों-त्यों शांता अशान्त होने लगी। कान खड़ा किये उत्कंठित-सी बैठी रही वह गली के ओर एकटक ताकती। कब एक परिचित पगध्वनि सुन पड़ेगी...सुन पड़ेगा पुरुष कंठस्वर!

अन्त में शान्ता की वह संध्या आ ही पहुँची।

नरेन के गले का मधुर शांत स्वर बाहर से सुनाई पड़ा—'अवनी है ?'

हृदय स्पंदित हो उठा शांता का। घबड़ा कर वह उठ बैठी।

अवनी बोला—'आओ नरेन।'

नरेन घर में घुस आया।

अवनी चौंक उठा नरेन का चेहरा देखकर। वह जैसे तूफान से टकराकर टूट गया एक जहाज हो। आखों और मुख पर न जाने कैसी चूर्णविचूर्ण हो गयी एक क्लांति। उसके बीच में भी जैसे वह स्तब्ध है—ध्यानस्थ है। सब मिलाकर जैसे कैसी एक अनिवार्य असहायता आज उसके पौरुषपूर्ण मुख-मण्डल पर नाच रही है।

उसके मुख की ओर देख कर अवनी ने पूछा—'छँटाई की लिस्ट में और कितने लोगों के नाम आये हैं ?'

'पूरी लिस्ट आज ही तो निकली है।'

'तुम्हारा नाम भी है ?'

'पहले ही।'

इसी की उम्मीद थी। फिर भी सभी मौन बने रहे।

'किन्तु आज यहीं रुक जाने से काम नहीं चलेगा अवनी—और भी एक बात जाननी है।' नरेन हँस कर बोला—'दूसरा नाम किसका है जानते हो ?'

जिज्ञासु दृष्टि से सभी ने देखा नरेन को।

नरेन बोला—'कल्याणी का है।'

'कल्याणी का ?'..........

इसकी उम्मीद न थी। सभी जैसे आश्चर्य-चकित हो गये।

केवल शांता बोली—'नरेन भैया ऐसी-ऐसी मज़ाक की बातें कहते हो!'—

नरेनने उसी तरह गंभीर मुख से धीरे-धीरे कहा—'बात सचमुच आश्चर्य में डालने लायक ही है।'

अवनी बोल उठा—'कल्याणी की नौकरी भी तब गयी!'

शान्ता बोली—'नौकरी नहीं रहने से मजे में कट जायगा। रुपये कम तो एकट्ठे नहीं किये हैं।'

शान्ता की बात को दबा कर अवनी बोल उठा—'तुम ठहरो शान्ता। क्या कह रहे हो तुम नरेन कुछ समझ में नहीं आता।'

'हाँ तुम्हारी तरह, हमारी तरह और भी कितनों ही ने समझा है जैसे मज़ाक ही है। किन्तु इतना बड़ा सत्य और अचरज भरा काण्ड-विश्वास नहीं करने योग्य ही बात है।'

सुधा ने अपनी युगल गंभीर आँखें उठा कर अवनी को देखा! अवनी चंचल हो उठा। उसके हृदय में एक विस्मृत आवेग जैसे अनेक दिन बाद पुनः धीरे-धीरे उद्वेलित होने लगा। अस्थिर स्वर में वह केवल बोला—'जरा साफ-साफ कहो नरेन, मैं कुछ भी नहीं समझ पा रहा हूँ।'

'पहले तो मैं भी कुछ समझ नहीं सका अवनी।" धीरे-धीरे नरेन बोला—'मैं ने सब कुछ गलत समझा है—हम सभी ने, हममेंसे कोई भी उसे समझ नहीं सका। गरीबी की आग से, प्रतिहिंसा-वश गुस्सेसे आफिस के सभी ने उसके साथ घोर अन्याय किया है। तरह-तरह की कुत्सित बातों से उसे प्रत्येक दिन मर्माहत किया है।'

'तब सब कुछ झूठ है?'

'इससे बढ़कर झूठ क्या हो सकता है अवनी?' नरेन के मुख पर वेदना का आभास है। आत्म-गतरूप में वह बोल उठा—'सोचा था, वह

एकदम मर गयी है। किन्तु नहीं, मरी नहीं है वह— जिन्दा है अपनी पूरी मर्यादा और अपने पूरे आत्म-सम्मान के साथ।'

उसकी इस बात को सुन और उसके इस आत्मविभोर मुख की ओर देख शान्ता का मुख जैसे स्याह हो गया। उसके मुँह से अब कोई बात ही न निकली! लगा जैसे उसकी जीभ और भीतर घुसती जा रही है—आँखों के सामने की सारी वस्तुएँ जैसे धुँधली होती जा रही हैं। किस तरह अपने को कठोर बनाये बैठी रही वह।

अवनी बेचैन होकर पूरे कमरे में चहलकदमी करने लगा। क्षण भर बाद ही नरेन के सामने खड़ा होकर पूछ बैठा—'उसकी नौकरी आखिर गयी क्यों?'

नरेन बोला—'बड़े साहेब के बेयरे के मुँह से जितना सुन सका हूँ उससे यही समझ सका हूँ कि उसने कितनी मेरी रक्षा की है मालूम नहीं, किन्तु रक्षा की है उसने अपनी—रक्षा की है इस देश की सम्पूर्ण नारी-जाति की।'

सुधा दम खींचकर सब कुछ सुन रही थी—पूछा—'फिर?'

नरेन बोला—'सुनता हूँ, वह नौकरी छोड़ देगी—बड़े साहब से यही कहकर चली आयी है') किन्तु उसके बारे में उनका मिजाज ठिकाने आ गया है। हड़ताल और न बढ़ सके इसलिये समझौता करने की शर्तें लिख भेजी है।'

'तब तो सब गड़बड़ी खत्म ही हो गयी।' अवनी ने कहा।

नरेन बोला—'नहीं अवनी, उनकी शर्त है, वे हमारी सभी शर्तें मानने को राजी हैं जरूर, लेकिन कल्याणी को छोड़ कर। आफिस के काम के लिए कहते हैं वह विपज्जनक है, अविश्वसनीय है।'

'केवल कल्याणी—केवल कल्याणी की ही नौकरी नहीं रहेगी!' अवनी फिर न जाने कैसी एक यंत्रणा के भार से दबकर पूरे कमरे में

चहलकदमी करने लगा। नरेन के सामने तनिक रुक कर बोला—'तुम्हारी यूनियन की क्या राय है—क्या कहते हैं सभी!'

नरेन ने चिन्तातुर मुख उठाकर कहा—'इसी बात पर विचार करने के लिए आज रात में यूनियन की जरूरी मीटिंग होनेवाली है अवनी!'

शान्ता जैसे और मौन बैठ न सकी। बोल उठी—'तुम लोगों की बातों का सिर-पैर मेरी समझ में कुछ भी नहीं आया। क्या जानूँ बाबा! इसी बड़े साहब की मोटर पर घूमना, रात-बिरात घर लौटना, जल्दी-जल्दी वेतन बढ़ना—'

नरेन कई क्षण तक स्तब्ध आँखों से शान्ता के मुख की ओर ताकता रह गया। इसके बाद घृणा भरे स्वर में बोल उठा—'छिः इतना अपवित्र है तुम्हारा हृदय शान्ता!'

'क्या मेरा—!' एक तीव्र आघात से शान्ता जैसे आर्तवाद कर उठी और असहाया की तरह आँखें फाड़े ताकती रह गयी।

नरेन पूर्ववत् घृणा भरे स्वर में बोला—'अपवित्र, नापाक, गंदा, जघन्य। अपनी दीदी को तुम पहचानती नहीं हो शान्ता!'

क्षण भर के लिए शान्ता ने अपनी आँखें मूँद लीं। उसे लगा जैसे उसके पैर के नीचे से जमीन खिसकती जा रही है। उसकी, अनेक दिनों की साधना, कामना भहरा कर जैसे तितर-बितर हो गयी।

कल्याणी निर्मल है, कल्याणी अपनी मर्यादा में अपने गौरव में वैसी ही दीप्तिमयी है, यह बात अवनीको पुनः बेचैन कर उठी, वह पुनः चंचल हो उठा। उसके हृदय का दबा आवेग पुनः उभर पड़ा और वह तीव्र गति से कमरे में चहलकदमी करने लगा। हठात् भरे गले से बोल उठा—'वह सत्य है, पवित्र है, तुम सब उसे समझ न सके। मैं जानता था, वह इतनी सहज नहीं है, इतनी सस्ती नहीं है।'

'यूनियन की मीटिंग में आज क्या होगा, पता नहीं। उसके साथ

मिलना भी जरूरी है। संभव है—कल सुबह ही मुझे जाना पड़ेगा।'

नरेन ने कहा—'किन्तु कौन-सा मुँह लेकर उसके सामने जाकर खड़ा होऊँगा अवनी।'

सुधा मधुर स्वर में बोली—'मैं जाऊँगी।'

सुधाके मुख की ओर देखकर अवनी चंचल होकर बोला—'हाँ, चलो सुधा—इस घर को छोड़कर कल सुबह ही वहीं चले चलें।' सहज आवेग से अवनी के होठ हिलने लगे—'अनेक दिन एक साथ चले हैं, स्वप्न देखे हैं, मनुष्य हुए हैं, आज वह अकेली हो गयी है; बिलू मिलू शान्ता—सब को मैं उसके कंधे पर लाद आया हूँ।' कहते-कहते इस आवेग-विह्वल व्यक्ति की आँखें भर आयीं। नरेन के एक हाथ को अपने हाथ से दबाकर बोला—'तुम लोग जानते नहीं नरेन, वह मेरे हृदय में किस तरह छा गयी है। इस घर में आने पर भी उसने मुझे प्रतिदिन अस्थिर किया है। जानते हो आने के समय उसने कहा था—तुम भी गलती करोगे भैया। दिन पर दिन तरह-तरह की बातें सुनी हैं तुम लोगों के मुँह से और प्रत्येक दिन ही उसकी यह बात याद पड़ी है।'

युगल बन्धु एक दूसरे की ओर मुग्ध दृष्टि से क्षणों देखते रह गये।

'प्रत्येक दिन तुम लोगों ने अनेक बातें कही हैं—गलत समझाया है—गलत समझा है मैंने खुद भी। किन्तु क्रोधवश चाहे जो भी समझूँ, जो भी करूँ—मन ही मन जानता था—वह क्या है।'

सुधा बोली—'मैं जानती हूँ, मुझसे अधिक तुम भी नहीं जानते हो।' इन लोगों के विक्षुब्ध विस्फोट के बीच से शान्ता कब चली गयी है—इसका किसी को पता भी न लगा। कमरे के एक तरफ उसकी कई साड़ियों का वह कागज में लपेटा बंडल पड़ा हुआ है।

अवनी पुनः अशान्त होकर चहलकदमी करने लगा।

नरेन उठ खड़ा हुआ। बोला—'मैं चलूँ अवनी। मेरी मीटिंग है। कल सुबह में तब तुम लोग जा रहे हो?'

'जा तो रहे ही हैं नरेन, संभव होता तो मैं आज ही चला जाता। आज वह एकबारगी अकेली पड़ गयी है, क्या कर रही है—क्या सोच रही है, कुछ भी नहीं समझ पा रहा हूँ।'

'मैं जाऊँ।' नरेन धीरे-धीरे कमरे से निकल गया।

इस घर से विदा ले एक लम्बी साँस खींच वह रास्ते पर चलने लगा। आज अकेले है—आज शान्ता नहीं है उसके साथ—यह बात उसे याद भी न आयी। अन्यमनस्क होकर पथ पर बढ़ने लगा। उसकी आशा, विश्वास और स्वप्नकामना का मोहदर्प-नष्ट अतीत एक बार फिर जैसे स्मरण हो आया है। उसके आलोक से वह जैसे बिलकुल स्तब्ध और विभ्रांत हो उठा है।

:३२:

★

कल्याणी की आँखों में नींद नहीं। न जाने ऐसी कितनी ही रातें उसे बितानी पड़ी हैं। तन्द्राहीन और स्वप्नहीन नेत्रों में कड़ुवाहट थी। आज सब कुछ उसे जैसे भारस्वरूप मालूम हो रहा है। उसके द्वारा चित्रित उसकी सभी रंगीन तस्वीरें आज जैसे असीम अन्धकार में डूब गयी हैं। खिलू-मिलू की निद्रित आंखों की ओर देख कर भविष्य की जो एक उज्वल तस्वीर एक दिन उसकी आंखों में नाच उठती थी—आज उनके प्रति एक गुरुतर दायित्व से उसका हृदय भर उठा है। जैसे भी हो इन युगल कोमल बच्चों के लिए दो मुट्ठी अन्न का इन्तजाम करना ही होगा। महामाया के भूखे-सूखे कठोर मुख का कठिन आदेश है—नौकरी करनी ही होगी—जिन्दा रहना ही होगा। और आफिस में हुवर साहब का वह गंभीर मुख—उसका निर्देश भी उसे मानना ही होगा। हायरे, कहां गया उसकी मुक्ति का उद्वेलित आनंद—

स्वप्नाकुल हृदय का उच्छ्वसित आवेग। सब जैसे आज उसके हृदय पर दुसह बोझे के समान लद गये हैं। चुप-चाप कुछ देर तक कल्याणी रोती रही। रात तब गंभीर हो चुकी थी।

सांत्वना की आशा में कल्याणी ने मुख उठाकर एक बार उस महावर मंडित पैर की छाप की ओर आंसू भरे नेत्रों से देखा! मा महामाया ने एक दिन कहा था—'वहीं है तुम्हारे लिए सम्पूर्ण सांत्वना, सम्पूर्ण साहस।'

मा के सती धर्म का आदर्श! जिसका अलिखित विधान युग-युग से शिरोधार्य करती आ रही हैं केवल इस घर की बहुएं ही नहीं, अपितु और भी हजारों नारियां, कन्याएं। किन्तु जीवन में जो किसी को भी प्राप्त न कर सकी उसके लिए युगल पैरों की यह छाप वेदना, आघात और शून्यता के अतिरिक्त और क्या दे सकती है? उसके लिए यह आश्रय नहीं है, बल्कि एक दुर्वह यंत्रणा का ही प्रतीक है।

कहाँ है सांत्वना? वरन् युगल पैरों की इस छाप के ऊपर हठात् आँखें पड़ते ही उनमें चमक उठता है -अग्निदग्ध—आर्तनाद से पूर्ण एक भयंकर मुख। वह किसी सुदूर अतीत के नारी कंठस्वर के एक तीव्र आर्तनाद के साथ एकाकार हो मिल जाता है आज की इस स्टेनो-ग्राफिस्ट कल्याणी चटर्जी के अवरुद्ध क्रंदन की लहरों के साथ। अन्तर कहाँ है? केवल अत्याचार, बंधन और उत्पीड़न का ढंग बदल गया है। केवल एक मुलम्मा पड़ गया है—इसीलिये सूक्ष्म प्रतीत होता है। मुक्ति कहाँ है! शान्ति कहाँ है! सांत्वना कहाँ है! अनेक स्तर पार कर लेने पर भी क्रन्दन से अभिशप्त वही एक नारी।

ना, अब वह विश्वास नहीं करती उस मोहाच्छन्न अतीत के ऊपर, विश्वास नहीं करती कलई किये गये वर्तमान पर। और भविष्य,—आज की काली रात के ही समान अन्धकारमय, दुसःह और दुर्भर। एक

यंत्रणा के सिवा उसका कोई रूप, उसकी कोई आशा अथवा आश्वासन कल्याणी की आँखों में नहीं चमका।

उसकी आँखें पिता की तस्वीर पर जा अँटकीं। उसके नीचे ही विश्वविद्यालय के समावर्तन-उत्सव पर ली गयी उसकी अपनी तस्वीर है, अवनी की तस्वीर है! याद आने लगीं पिता की बातें। कहा था—शिक्षा की बात, मुक्ति की बात। स्वप्न देखा था—जीवन भर सुखी, सुन्दर और सबल एक परिवार का—वंशपरम्परा का। ये बातें यादकर एक व्यर्थता, वेदना और विद्रूपके अतिरिक्त कल्याणी के हृदय में और किसी चीज का उदय नहीं होता।

पिता की तस्वीर के सामने खड़ी होकर वह हाथ जोड़ लेती है। कहती है—'बोलो, बोलो मैं क्या करूँ, क्या करूँ मैं—'

सारी रात बीत गयी बेचैनी से करवटें ही बदलते।

इसके बाद सुरंग के सदृश इस गली का अंधकार धीरे-धीरे हलका होने लगा। कहाँ, न जाने किस मेघमुक्त आकाश के प्रान्तर पर भोर मुस्कुराता आ रहा है अब, जिसे इस गली के अन्दर से देखा नहीं जा सकता। इसी आ रहे आलोक की ओर आँखें किये कल्याणी बैठी रह गयी। अतीत की अजस्र स्मृतियां जैसे इस रंगीन भोर के साथ उसके हृदय नाचती आ रही हैं। जीवन था....आशा थी....स्वप्न था........

अनिद्रित रात की समस्त ग्लानियों को दूर कर कल्याणी उठ खड़ी हुई। उसका माथा टनटन कर रहा है—युगल आँखें जल रही हैं। दरवाजा खुला।

दरवाजे की किल्ली में खोंसा हुआ कागज का एक टुकड़ा उड़कर जमीन पर जा गिरा। शान्ता के हाथ का लिखा कागज। उठाकर पढ़ने लगी। शान्ता ने लिखा है—

'दीदी, तुम्हारा स्वप्न और कामनीं सार्थक हो यही प्रार्थना करती हूँ।

मैं एक बोझ के सिवा और कुछ भी नहीं! उसी बोझे को दूर किये दे रही हूं।'

तरह-तरह की आशंकाओं से हृदय कांप उठा कल्याणी का, दौड़ कर गयी महामाया के कमरे में। शान्ता वहाँ नहीं है। चिल्लाकर पुकारा, मा- शान्ता कहाँ है। शान्ता—'

दौड़ पड़ी वहाँ से बाहरवाले कमरे की ओर। दरवाजा जैसे बंद रहता है, वैसे ही बन्द है। कल काफी रात बीत जाने पर लौटी है---यह वह जानती है। किन्तु कहाँ गयी वह! कैसी एक गंभीर आशंका से उसका हृदय कांप उठा। दौड़ पड़ी बाथरूम की तरफ।

बन्द दरवाजे पर धक्का मारा कल्याणी ने। वह आर्तनाद कर उठी।

प्रकाश--अन्धकार की रहस्यमयता के बीच शान्ता का बीस वर्षीय शरीर—असंख्य आशाओं और कामनाओं का पुंजीभूत शरीर झूल रहा है दीवार से सट कर।

महामाया अपने भाग्य की विडंबना की बातें याद कर सिर पीट रही हैं, डर के मारे आँखें फाड़-फाड़ कर मिलू-बिलू उन्हें एक टक देख रहे हैं। शोर-गुल सुन कर पड़ोस के लोग भी जाग गये हैं। दो-एक कर के आने लगे हैं वहाँ। अब भी अच्छी तरह भोर नहीं हुआ था।

कल्याणी की आँखें और मुख जैसे पाषाण हो गये हैं। शान्ता की चिट्ठी पुनः एक बार अपनी आखों के सामने ले गयी। चिट्ठी की एक-एक पंक्ति उसके हृदय में आग धधका देती है—'दीदी, तुम्हारा स्वप्न और कामना सार्थक हो!'

स्वप्न और कामना!

ये बातें जैसे एक कठोरतर विद्रूप और अपमान के समान चारों तरफ से उस को घेर लेती हैं। बिलू मिलू के भयभीत फैले मुख-जैसे वे मौन हो कर ही कह रहे हैं, क्या-क्या करेगी हम लोगों के लिए कहा था....? पैर की वह छाप, पिता की वह तस्वीर, अपनी तस्वीर, अवनी की

तस्वीर—घर के कण-कण का स्वप्न और कामना—ये सारी बातें जैसे एक विकट व्यंग के समान उसके चारों तरफ चक्कर काट रही हैं। यह उसकी अनगिनत कल्पनाओं, कामनाओं और स्वप्नों का साक्षी है। देखते-देखते एक प्रज्वलित ज्योति थिरक उठती है कल्याणी की आँखों में।

इस प्रज्वलित ज्योति में सबसे पहले उसकी आँखें अपनी उस विश्व-विद्यालय की समावर्तन उत्सव के अवसर पर ली गयी तस्वीर पर जा अँटकती हैं। दाँतों से दाँतों को दबा कर वह बोली—'मुक्ति!—भविष्य का सुखी और स्वस्थ जीवन। स्वप्न देखा था!'—तस्वीर को झपट कर खींच लिया दीवार से। पूर्ववत् बोली—'आत्म प्रवंचना! केवल आत्म-प्रवंचना!' इसके बाद तस्वीर को पटक दिया जमीन पर। उसके टुकड़े टुकड़े होने का झन-झन शब्द गूंज उठा।

इसके बाद क्रोधित दृष्टि से देखा पैरों की उस छाप की ओर। व्यंग के साथ मन ही मन बोली—'सुनती हूँ, यही सांत्वना है—शेष आश्रय।' गरज उठी वह—'झूठी बात है!' झपट कर खींच लाई उस छाप को—फाड़ कर टुकड़े कर डाला उसे। झनझना उठीं पूजा की सामग्रियां—धूप, नैवेद्य, फूल और फूलों की माला—बिखर गये सब जमीन पर।

इसके बाद क्रोधित दृष्टि से ढूंढ़ने लगी वह—और क्या करेगी—और किस मिथ्या-आश्रय को तोड़ फोड़ कर निश्चिह्न कर देगी।

'स्वप्न और कामनाएं।'........

अनगिनत स्वप्नों और कामनाओं का साक्षी है यह घर-यह परिधि, उसके सर्वांग में जैसे ज्वाला भड़क उठी।

दौड़ कर गयी और एक छोटे सूट केस को एक ही झटके में खोल डाला कितनी ही साड़ियां, कुर्ते निकाल लिये उस में से। हठात् उनमें से चटाक से एक फोटो गिर पड़ी जमीन पर। जलती आँखों से देखा कल्याणी ने उसे। नरेन की तस्वीर थी वह। उसके हंसते मुख की ओर निर्निमेष देख उसे लगा जैसे आज भी वह कह रहा है—मुक्ति—तुम्हारी

आर्थिक मुक्ति ! तुम्हारी मर्यादा, तुम्हारा आनंद !....ये बातें आज उसके हृदय पर आघात पहुँचाती हैं। दाँत कटकटाती हुई कल्याणी पुनः बोल उठी—'मुक्ति ! आनंद ! जंजीर से बंधे कुत्ते का आनंद !' फोटो को चीर-फाड़ कर टुकड़े-टुकड़े कर डाला उसने। उसके बाद जल्दी-जल्दी सूटकेश को ठीक करने लगी !

इस घर में उसका दम घुटता जा रहा है। अपने स्वप्नों और कामनाओं के कठोरतर विद्रूप के साथ यहां जैसे वह एक मुहूर्त भी जीवित नहीं रह सकती। यहां से भाग कर ही वह जिन्दा रह सकती है।

❋❋❋❋❋❋❋❋❋❋❋❋❋❋❋❋❋❋❋❋❋❋
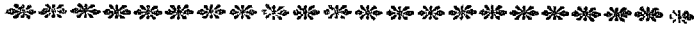
:३३:

अवनी ठेला गाड़ी मंगाकर घर के सामानों को उस पर लाद रहा था कि इसी समय महल्ले के एक लड़के ने खबर दी—शान्ता ने गले में रस्सी बाँधकर फाँसी लगा ली।

'शान्ता!' अवनी स्तब्ध होकर खड़ा हो गया।

सुधा डरती-डरती बोली—'कल्याणी दीदी?'.

लड़का कुछ बोल न सका।

अवनी ने हताश आँखों से देखा सुधा की ओर। अस्फुट स्वर में बोला—'सुधा!'

'चलो जल्दी चलें, सामान सब छोड़ दो यहीं। टैक्सी बुलाओ पहले।' सुधा ने कहा—'कल के आघात को सहन न कर सकी शान्ता। यह सब बातें तुम्हें पीछे बताऊँगी। जाओ जल्दी-जल्दी-मुझे अब कल्याणी दीदी के लिए कैसा-कैसा डर लग रहा है।'

अवनी ने बड़े रास्ते पर से एक टैक्सी बुला ली।

उन्मुख आग्रह से सुधा दरवाजे पर खड़ी थी। टैक्सी के पहुँचते ही उसमें जा बैठी। दम खींच कर बोली—'जल्दी-जल्दी चलने को कहो।'

कलकत्ता शहर अब भी अच्छी तरह जागा नहीं था। उस सूने रास्ते की ओर देखकर अतीत के कई महीनों की घटनाएं जैसे सुधा और अवनी की आँखों में नाचने लगीं तीव्र वेग से। दोनों प्राणी मौन हैं। किसी मुँह में भी कोई बात नहीं। दोनों के ही हृदयों पर बार-बार आघात पहुँचा रहा है शान्ता का मुख। आघात पहुँचा रही हैं कल्याणी की बातें भी। वह अपनी कामनाओं और स्वप्नों के साथ कहीं की भी न रही अन्त में। इन सब का आघात आज अवनी को बेहद मर्माहत कर रहा है। निर्मम काल जैसे अपने समस्त दुखों और दुर्भावनाओं के साथ उसे घेर लेता है—उस सब के बीच में पड़ वह जैसे व्याकुल आँखों से देखता रह जाता है। ना, उसके वश थी भी तो कोई बात नहीं! केवल आशा के अतिरिक्त, हृदय के गुप्त गंभीर स्वप्नों के अतिरिक्त और क्या संबल है।

अवनी के होंठ हिले वह बोल उठा—'अन्त में शान्ता ऐसा कर बैठेगी?.......'

सुधा स्थिर स्वर में बोली—'मन ही मन उसने बड़ी-बड़ी आशाएँ कर रखी थीं। नरेन बाबू ने उसे हताश कर दिया है। ये सारी बातें पीछे कहूँगी। लड़कियों को पागल बनाने वाली अंधी ईर्ष्या के बारे में तुम कुछ भी नहीं जानते।'

उस बहुत दिनों की पुरानी गली के मोड़ पर आकर टैक्सी रुक गयी! यह आज बड़ी करुण दिखाई पड़ रही है—दरिद्रता, दुख, मृत्यु—जैसे इसी तरह की अनेक बातों से यह गली भी डरावनी हो उठी है। इसी गली से सुधा और अवनी दौड़ पड़े दम खींचे।

घर के बाहरी दरवाजे के पास पहुँचते ही दोनों एक दूसरे के मुख को देखकर चौंक उठे। सुनाई पड़ा—घर के अन्दर मिलू-मिलू चिल्ला-चिल्ला कर रो रहे हैं:—

'दी दी'.........दी दी,.........कहाँ हो तुम.........'

अवनी दौड़कर घर में जा घुसा। देखा—लम्बे बरामदे के उस ओर से कल्याणी तेजी के साथ आ रही है—हाथ में एक छोटा-सा सूट-केस है। मिलू मिलू डर के मारे पीछे से चिल्ला रहे हैं:—दीदी, दीदी तुम कहाँ जा रही हो दीदी।'

अवनी ठिठक कर खड़ा हो गया—पीछे सुधा है। कल्याणी की रुखी-सूखी मूर्ति की ओर देखते रह गये वे।

उसकी आँखो में मृत्यु की विभीषिका नहीं है, नहीं है किसी वेदना का आभास। उल्टे न जाने कैसी एक प्रखर ज्योति झिलमिल-झिलमिल कर रही है।

कल्याणी अब उनके सामने आ पहुँची है। अवनी घर के बाहरी दरवाजे को रोककर खड़ा हो गया।

कल्याणी कठोर स्वर में बोली—'रास्ता छोड़ दो।'

'कहाँ जा रही हो?' अवनी ने पूछा।

'नहीं जानती, रास्ता छोड़ दो।' अवनी को एक हाथ से ठेलकर कल्याणी आगे बढ़ गयी।

अवनी ने उसका एक हाथ पकड़ लिया—'सुनो, कहाँ जाओगी?'

'व्यर्थता के इस श्मशान में अब नहीं रहूँगी, यह मृत्यु, यह नरक—आत्म-प्रवंचना का यह जंजाल। उत्तेजना से कल्याणी का गला रुद्ध हो गया। क्षण भर बाद ही फिर बोल उठी—'छोड़ो-छोड़ो मुझे।'

अवनी ने कहा—'अरे मैं जो दौड़ा आया हूँ यह सोच कर कि नये ढंग से पुनः जीवन आरंभ करूँगा। कहाँ खो दिया अपने उन स्वप्नों को, अपनी उन आशाओं, कामनाओं और आनंद को!'

'एक नारी का स्वप्न! आशा और आनंद!' अवनी की बातों का विद्रूपपूर्ण अनुकरण करती हुई कल्याणी ने तीव्र स्वर में कहा—'यह सब सार्थक होगा तुम पुरुषों के खरीद-बिक्री के बाजार में। इन मीठी

बातों के फेर में बहुत धोखा खा चुकी हूँ। अपना सम्मान, अपनी मर्यादा, स्वप्न और कामनाएँ—बहुत खो चुकी हूँ—अब नहीं।'

इसी बीच मिलू-मिलू ने आकर दीदी को कसकर पकड़ लिया है। सुधा ने भी आगे बढ़कर उसका एक हाथ पकड़ लिया। रोती हुई बोली—'मुझे छोड़कर तुम कहाँ जाओगी? यही करना था तो फिर मुझे क्यों एक दिन अंध दुर्भाग्य के हाथ से बचाया था? कल्याणी दीदी जानती हो, तुम मेरे जीवन की कितनी बड़ी प्रकाश-किरण हो? इसी प्रकाश-किरण की आशा पर तो मैं दौड़ी आयी थी!'

'बचोगी! तुम क्या इस देश की नारी नहीं हो?' कल्याणी ने लह-कती आँखों से उसकी ओर देखा—मर्माहत होकर बोली—'फिर मरेगी कौन? दुर्भाग्य की बलि-बेदी पर शांता की ही तरह तुम नहीं मरोगी? यदि तुम्हारे हृदय में स्वप्न हैं, आशाएँ हैं, कामनाएँ हैं—तो उनके साथ तिल-तिल करके मेरे ही समान तुम नहीं मरोगी? जिन्दा रहना चाहती हो?'

अवनी ने लम्बी सांस खींच कर कहा—'इसी तरह तुम मेरे समस्त विश्वासों, सारी आशाओं पर पानी फेर दोगी कल्याणी? दोनों ने एक दिन एक साथ स्वप्न देखे थे, आशाएँ की थीं अपार। असफल हो गयी हो इसीलिये यह सब मिथ्या हरगिज नहीं। तुम जानती नहीं हो, मुझे नवीन रूप में विश्वास प्राप्त हुआ है।'

'नहीं मानती, इन मिथ्या बातों पर अब मुझे विश्वास नहीं है।' दाँत पीसती हुई कल्याणी बोली—'बचपन से ही देखती आ रही हूँ पिता जी की शिक्षा का अभिमान—आत्म-प्रवंचना की बातें—और माँ की दकियानूसी, शान्ता की यह मिथ्या सुख-दुख की धारणा और नारी की मुक्ति की अनगिनत धोखेबाजियां। अच्छी तरह समझ लिया है—माँ की उस सती के पैरों की छाप की तरह—जिसकी कानी कौड़ी के बराबर भी कीमत नहीं है। विश्वास नहीं करती, मैं अब किसी चीज पर विश्वास नहीं करती।'

नरेन न जाने कब से आकर बाहरवाले कमरे में प्रतीक्षा कर रहा था। अधीर होकर वह भी बरामदे की ओर बढ़ आया। उसे देखते ही कल्याणी की आँखें जैसे दुगुने वेग से जलने लगीं। हठात् जैसे याद हो आयीं इस आदमी की अनेक लुभावनी बातें। तीव्र विद्रूप के साथ फिर वह बोल उठी—'आर्थिक मुक्ति, आत्ममर्यादा, जीवन का आनंद···!'··· सिसक-सिसक कर बोली – 'जंजीर में बंधे कुत्ते का आनंद....रुपये के मूल्य से खरीदी मनुष्य-रूपी वस्तु! इस धोखेबाजी के फेर में अब नहीं पड़ूँगी—नहीं भूलूँगी।'

'मत भूलो कल्याणी।' नरेन स्थिर कंठ स्वर में बोला—'जो मिथ्या है, उस पर हरगिज विश्वास मत करना। जिसे परम सत्य समझा है, उसी के द्वारा स्थापित करो अपना घर। मैं आया हूँ, तुम्हारे चार सौ सहकर्मियों के हृदय का मनोबल लेकर, साहस लेकर। इस बार तुम्हीं इस घर की नींव कायम कर दो—जहाँ तुम्हारे पिता की आत्म-वंचना नहीं होगी, मा का मिथ्या संस्कार नहीं होगा, शान्ता के समान मिथ्या दुख-सुख की धारणाएँ नहीं रहेंगी। जिस घर के लिए इन्सान हजारों वर्षों से प्रतीक्षा करता आ रहा है—उस घर की भित्ति स्थापित करो तुम।'

नरेन बढ़ आया और आगे। एकबारगी उसके सामने। आँखें उठाकर देखा कल्याणी ने—उसकी आँखों में वही क्रोधित दीप्ति, वही उत्तेजना, होंठ काँप रहे हैं उसके, साँस चल रही है तीव्र वेग से। अविचलित नरेन ने और आगे बढ़ कर उसका एक हाथ कस के पकड़ लिया अपनी मुट्ठियों में। उसके मुख की ओर स्थिर दृष्टि से देखकर बोला—'मुझे क्षमा करो—बहुतों को बहुत कुछ दिया है तुमने, मुझे ही कुछ नहीं दिया है। आज मैं समय-असमय कुछ नहीं मानूँगा,—दोनों हाथ पसारे तुम्हारे सामने खड़ा हूँ। अपने सारे दुखों, सारी यंत्रणाओं का भागीदार मुझे बनाओ, अपने स्वप्नों और कामनाओं का भागीदार मुझे बनाओ कल्याणी!'

नरेन की ओर एकटक देखते-देखते उसकी आँखों की ज्वाला—दीप्ति जैसे वाष्प बन गयी—उसकी आँखें सजल हो उठीं, आँसू छलछला उठे आँखों के कोनों में। हृदय में, प्राणों में निहित वेदना का पहाड़ जैसे काँप उठा। इस कंपित वेग से भूमिकंप के समान काँप उठा उसका मन। हठात् स्मृति जाग उठी—आँखों के सामने जैसे सारी पृथ्वी डोल उठी। इसके बीच में स्थिर, आतुर खड़ा है एक व्यक्ति-खड़ा है अपने उपग्रहों के समान पूरे जीवन को आलोकित कर। हाथ पसार कर खड़ा है वह भिक्षुक के समान। उसे लौटा देने की शक्ति आज उसमें नहीं है। दोनों हाथों से आँखें ढक कर कल्याणी रो पड़ी। गिरने ही जा रही थी कि नरेन ने दोनों हाँथों से थाम लिया।

महामाया भगवान की मूर्ति के सामने माथा पीट रही थीं। और कल्याणी का कमरा उसके असफल अतीत के समान अस्त-व्यस्त हो उठा है। कमरे भर में छितराये पड़े हैं कागज के टुकड़े, तस्वीरों के टूटे-फूटे टुकड़े, तस्वीरों के टूटे-फूटे फ्रेम और उन्हीं सबके बीच में धूप-दीप-नैवेद्य तथा फूलों की माला भूलुंठित पड़ी हैं। पड़े हुए हैं जहाँ-तहाँ बक्सों के टूटे फूटे टुकड़े, छिन्न-भिन्न हो गये घर ससार की ही तरह। उन्हीं के बीच पड़ी है शान्ता की चिट्ठी।

अचानक हवा का एक तेज झोंका घुस आया घर में। इस झोंके से उड़ने लगे कागज के टुकड़े। उन्हीं के साथ नाचने लगी शान्ता की चिट्ठी—जैसे किसी प्रेत का परवाना हो। उड़-उड़ कर इधर से उधर हो रही है—इस कोने से कोने में पथभ्रष्ट क्षुधार्त प्रेतात्मा की तरह।

:३४:

स्तब्धता केवल एक दिन के लिए है। शून्यता केवल एक आदमी के लिए है। इस शहर के तीव्रगामी जीवन के बीच न जाने कहाँ खो गयीं-भूल गयीं उसकी बातें। दुर्योग का कुहासा फटकर विलीन हो गया। पुनः अवनी के परिवार में भोर मुस्कुरा उठा—भोर मुस्कुरा उठा पुनः इस गली में, इस शहर के लाखों मनुष्यों के हृदयों पर।

★

दस बजते न बजते खाली हो जाते हैं इस गली के मकान-घर। गली को छोड़कर निकल पड़ती है कर्मव्यस्त मनुष्यों की भीड़। केवल पुरुष ही नहीं—युग-युगान्त को पार कर गयी इस गली से निकल पड़ती हैं लड़कियाँ और बहुएँ भी।

सबसे पहले खाली हुआ कल्याणी का कमरा। नरेन और उसके आफिस के कितने ही सहकर्मी आकर अपने साथ ले गये कल्याणी को। उसका कमरा शून्य हो गया—स्तब्ध। उसकी पतली-पतली ईंटों की शिराओं से

सुदूर अतीत की शताब्दी ने जैसे शीतल आँखों को उठाकर देखा, अन्त में इस मकान की यह लड़की भी गयी नौकरी की लड़ाई लड़ने।

रह गयीं केवल महामाया। उनके कमरे में भी निस्तब्धता छा गयी है। स्मृतियों के समक्ष सुदूर अतीत को पसार कर पाषाण की तरह एक समान वह बैठी रह गयीं। पूरा मकान निस्तब्ध, शान्त। उनके शीतल पैरों के नीचे दोपहर की निस्तब्ध जनहीन पूरी गली भर ही है। वह भी अपनी छाया के समान काली-काली आँखें उठा जैसे महामाया के ही समान—युग-युगान्तर को पार गये पुराने मकान के समान ही देख रही है सामने एकटक—निर्निमेष, विलीयमान, अदृश्य, स्वप्न के समान अतीत की ओर। कभी-कभी किसी फेरी वाले की आवाज सुनाई पड़ती है, क्षण भर में ही पूरी गली जैसे चकित हो उठती है। इसके बाद पुनः ऊँघने लगती है शताब्दी के पुराने, नोन लगे मकानों की छाया के साथ।

इसी रास्ते से एक दिन पालकी पर चढ़ कर आयी थी न वह आठ वर्ष की एक बहू।.......लाल चोली पहने, ललाट पर चंदन का तिलक और हाथ में कजरौटा लिये। आयी थी आम के बगीचों की शीतल छाया के बीच से होकर। गाँव तब भी शहर नहीं बन गये थे, पैदल चलनेके रास्तों पर तब भी ईंट, पत्थर, काठ नहीं बिछे थे, नहीं लगे थे। इसीलिये दक्षिण की एक पोखरी के किनारे झांक कर उसने देखा था—पाँच-छ वर्ष बीतते न बीतते वह सती लक्ष्मी बहू रानी एक दिन स्वयं ही उस पोखरी के पास आकर खड़ी हो गयी! पुनः जैसे उसका शृङ्गार किया है दुलहिन की तरह। माथे पर भर दिया है सिंदूर, पावों में महावर। आँखों के आसुओं को पोंछते-पोंछते सफेद कागज के ऊपर न जाने किसने उसके पैरों की छाप लेकर माथे से लगा ली। इसके बाद वह चली गयी पोखरी के उस पार—श्मशान में। पोखरी इस पार खड़े होकर एहवातियों ने शंख-ध्वनि की। इसके बाद देखी थीं उसने चिताग्नि की

शिखाएँ । ढोलक, झाल, करताल के शब्दों से भी जो दब न सकी ऐसी एक दिगन्तभेदी चीत्कार से हठात् वह काँप उठी थी उसके दोनों तरफ के आम के बगीचों की हवा । सती लक्ष्मी बहू रानी वही जो गयी--फिर किसी दिन लौटकर नहीं आयी !........

इसके बहुत-बहुत दिनों बाद इस घर में पुनः एक दुलहिन आयी । खिलते कमल के समान नवयुवती । विवाह हुआ था बूढ़े वर के साथ । स्वामी की उम्र तब पचास के करीब । फिर भी उसके मुख पर तनिक भी असंतोष की छाया न थी । किसी गाँव की कोई अभागिनी लड़की---अवि-वाहिता का नाम मिट गया, यही उसका भाग्य । साल बीतते न बीतते गोद भर गया--बालक से । इसके बाद प्रत्येक वर्ष एक संतान--किसी किसी वर्ष दो-दो । पति जीवित था दस वर्ष तक । इन दस वर्षों में कुल तेरह सन्तानें । इस आम के बगीचे की छाया में प्रजा की अनेक बस्तियाँ । फिर भी वह रोती थी---क्यों, कौन बतावे ? इसी आम के बगीचे की छाया से होकर वह आती जल ले जाने के लिए--अंजलि में भर-भर कर जल पीती । इसके बाद जल से भरी कलसी लिए आँखों का पानी पोछते-पोछते घर लौट जाती-थकी, भूखी-सन्तानभारातुरा । इस के बाद एक दिन उसका वृद्ध पति मर गया । तब पेट में थी तेरहवीं सन्तान । लोग-बाग पति की मृत देह उठा ले गये पोखरी के उस पार-श्मशान में । अपनी तेरह सन्तानों को लेकर यह क्षीण-काया नारी हाय-हाय करती इस रास्ते की धूल में जी भर कर रोई है । इसके बाद क्या हुआ एक दिन कौन जाने-यह नारी रोती-रोती नदी के तट पर गयी । शाम हो गयी, रात आ गयी । एक-एक कर सभी चले गये जल लेकर । किन्तु वहाँ से वह तो फिर लौट कर आई नहीं ।........

इसके बाद बीत गये और भी कितने दिन । कितना परिवर्तन हो गया इस मिट्टी की गंध से पूरित पैदल चलनेवाले रास्तों के दोनों तरफ । आम का बगीचा काट डाला गया, इधर उधर निकल गये पेचदार रास्ते-

पक्के रास्ते। खड़ी हो गयीं दोनों तरफ कोठियाँ। काफी दिनों बाद इस मकान में एक दिन आयी एक और नारी। कितने स्वप्न देखे उसने इस गली में आते-जाते। उसके इन स्वप्नों के साथ कितनी कामनाएँ, कितनी पुरानी आकांक्षाएं मिली हुई थीं-घर संसार करेगी, बच्चे-बच्चियाँ होंगे, एक समान कट जायगा -जीवन अतीत के दिनों के समान। किन्तु साध पूरी नहीं हुई। इस युग के लोगों ने एक दिन उस के बीस वर्षीय यौवन पुञ्जित शरीर को अर्थी से उतारा और लेकर चले गये श्मशान में।

पूरी गली दोपहरी की निस्तब्धता में ऊंघती है और स्वप्न देखती है, कहाँ, वह भी तो लौट कर नहीं आयी फिर।.......

छोटी गली की थोड़ी ही दूरी पर गुंजायमान राजपथ के दोनों तरफ नगर का तीव्रगामी जीवन है—और है दीप्त सूर्य-प्रकाश।

समाप्त